शेठ हीरजी खेतशीनी कुां. नी
जैन ग्रंथमाळा पुस्तक १ लुं.

श्रीमान् देवेंद्रसूरि विरचित

धर्म रत्न प्रकरण.

(मूळ अने गुजराती भाषांतर)

तृतीय भाग.

शेठ हीरजी खेतशीनी कुां. नी सहायथी
छपावी प्रसिद्ध करनार

श्री जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्ग—पालीताणा.

संवत १९६२ सने १९०६.

प्रथमावृत्ति प्रत १०००

पालीताणा—शंभु प्रिंटिंग प्रेस.

किंमत रु. १

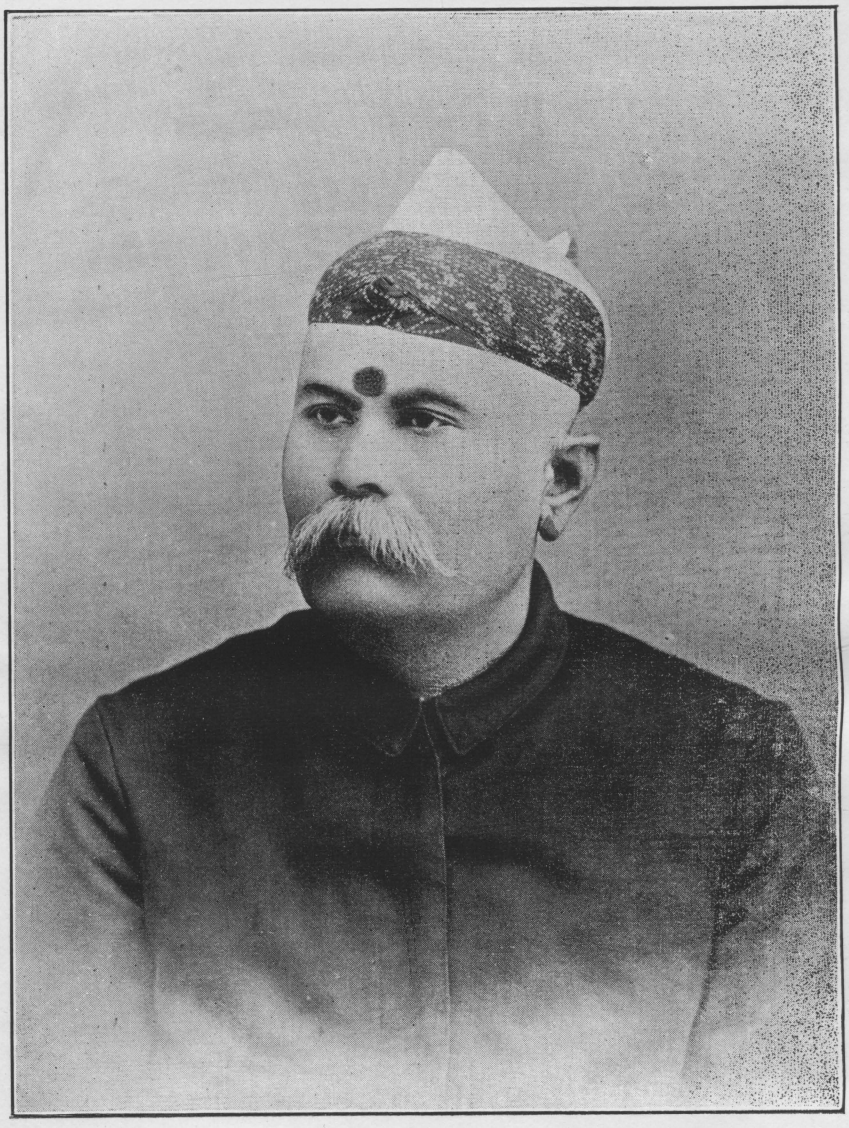

શેઠ ખેતશી ખીઅશી.

अर्पण पत्रिका.

श्राद्धगुण सुशोभित, स्वज्ञातिहित धारक,

श्रेष्टिवर्य खेतसी वीअसी.

आप

श्रीमान् गृहस्थ

मानव जीवननी मह-

त्ता शेमां छे ? ए वात समजो

छो, अने ते साथे पूर्व कृत सत्कर्मनी

श्रेष्टताने सानंदपणे अनुभवो छो, ते

उपरथी आपे निश्चय कर्यो छे के, साधर्मि

बंधुओनी उन्नतिनुं उंचामां उंचुं शिखर ज्ञान छे,

अने ए ज्ञान केटलोक समय थया सुप्त निधानमां अस्त-

व्यस्त थइ पडेलुं छे, तेने शुद्धि तथा अर्थनी

शोभाथी सुशोभित करी प्रगट करवुं, एज खरेखरुं

साधर्मि वात्सल्य छे. आवा उत्तम निश्चयथी

आप प्राचीन ग्रंथरत्नोनो उद्धार करो

छो, तेथी आपना जेवा उत्तेजक

श्रावक रत्नने आ धर्म रत्न ग्रंथ

अर्पण करी अमे अमारा

कर्त्तव्यने पूर्ण थयेलुं

समजीए

छीए.

प्रसिद्ध कर्त्ता.

प्रस्तावना.

धर्म रत्न प्रकरण ग्रंथनी आ त्रीजा भागमां समाप्ति थाय छे. ग्रंथकारे आ महान् ग्रंथमां एवा एवा उपयोगी विषयोनुं ग्रंथन कर्युं छे के जे जैन वर्गनी प्रत्येक व्यक्तिने पठन, पाठन अने मनन करवा योग्य छे.

आ त्रीजा भागमां भावसाधुनुं स्वरुप बताव्युं छे, अने ते प्रसंगे जुदीजुदी कथाओ आपी मूळ विषयने ग्रंथकारे सारो पल्लवित करेलो छे. हमेशां निर्वाणने साधनारा, योगने सेवनारा अने सर्व जीव उपर समदृष्टि राखनारा, शांति विगेरे गुणोथी विभूषित अने सदाचारमां प्रमाद रहित एवा भावसाधुनां लक्षणो कही, तेनां सात लिंगो दर्शाव्यां छे. मार्गानुसारी क्रिया करवी, धर्म उपर उत्कृष्ट श्रद्धा राखवी, सरलपणाथी प्रज्ञापनीयपणुं धारण करवुं, क्रियामां प्रमाद न राखवो, जे अनुष्ठान पोताथी थइ शके तेनो आरंभ करवो, गुण उपर अनुराग करवो अने गुरुनी आज्ञानुं पूर्ण रीते आराधन करवुं–आ सात लिंगो जेनामां होय, ते खरेखरो भावसाधु कहेवाय छे. ते सात लिंग अने तेना भेदो उपरज आ त्रीजा भागनी बधी रचना करवामां आवी छे, अने ते उपर प्रसंगे प्रसंगे घणी रसिक दृष्टांतरुप कथाओ आपवामां आवी छे.

मार्गानुसारिणी क्रिया ए भावश्रावकनुं पहेलुं लिंग दर्शावतां तेनी अंदर भावयतिए केवा मार्गने अनुसरती क्रिया आचरवी जोइए, ए बाबत घणुं सारुं व्यान करेलुं छे. ते पछी भावसाधुना बीजा लिंग श्रद्धानुं विवेचन करतां विधिसेवा, अतृप्ति, शुद्ध देशना अने स्खलित-

शुद्धि—ए चार श्रद्धानां लिंगो उपर सारुं विवेचन करेलुं छे. ते पछी भावसाधुना त्रीजा प्रज्ञापनीयपणाना लिंगनुं वर्णन करेलुं छे, जेमां मूढ जेवा शिष्यने प्रज्ञापनीय–एटले गुरुए सूत्रार्थना बोधने लायक गणवो जोइए, ए वात साबीत करी छे, अने ते उपर कांपिल्य नगरनो राजा मुनंद के जे आखरे राजर्षि थयो हतो, तेनी रसिक कथा आपवामां आवी छे. ते पछी " क्रियामां प्रमाद न राखवो " ए भावसाधुना चोथा लिंगनुं यथार्थ स्वरुप बतावेलुं छे, अने ते दृष्टांत आपी सारी रीते सिद्ध करेलुं छे. ते पछी " जे अनुष्ठान पोताथी थइ शके तेनो आरंभ करवो " ए भावसाधुना पांचमा लिंगनी व्याख्या करी, ते उपर घणुं सुबोधक विवेचन करेलुं छे. ते पछी गुण उपर अनुराग करवारुप भावसाधुनुं छठुं लिंग वर्णवेलुं छे. गुण उपर अनुराग करवाथी केवा केवा लाभ थाय छे, ते दृष्टांतपूर्वक सिद्ध करेलुं छे. त्यारबाद गुरुनी आराधना करवारुप सातमा लिंगनुं स्वरुप दर्शाव्युं छे. ए स्वरुपने अंगे बीजा घणा उपयोगी विषयोनुं ज्ञान आपी ग्रंथकारे भावसाधुनां साते लिंगोनी समाप्ति करी छे, अने ते सात लिंगने धारण करनार भावसाधु परिपूर्ण चारित्री बने छे, अने ते परंपराए केवो लाभ मेळवे छे ? तेने माटे नीचेनी सदा स्मरणीय एवी गाथा लखी ग्रंथकार ए विषयनी समाप्ति करे छे.

इय सत्तलक्खणधरो–होइ चरित्ती तओ य नियमेण ।
कल्लाणपरंपरलाभ–जोगओ लहइसिवसुक्खं ॥ १ ॥

" ए रीते सात लिंगने धारण करनार चारित्री थाय छे, अने तेज कल्याणनी परंपराना लाभना योगे करीने अवश्य शिवसुखने पामे छे. "

महाफलने सूचवनारुं आ पद्य खरेखर मनन करवा योग्य छे. जो बराबर भावसाधुनां सात लक्षणोनुं अनुकरण करवामां आवे, तो उपरना पद्यमां कहेल महा फळ मळे तेमां कांइपण आश्चर्य नथी.

ग्रंथकारे ते भावसाधुनां सात लिंगोने सिद्ध करवा घणी रमणीय दृष्टांत कथाओ आपेली छे. कथाओनो ऊपन्यास घणे भागे मागधी भाषामां करेलो छे, अने कोइ कोइ भाग संस्कृतमां पण आपेलो छे. ते उपरथी ग्रंथकारनी बंने भाषानी विद्वत्ता सारी रीते चळकती जणाइ आवे छे. ग्रंथकारे आ बधा लेखनो उद्देश एवो लीधेलो छे के, जेनामां एकवीश गुण होय, तेज पुरुष आ ग्रंथमां वर्णवेला धर्म रत्नने योग्य थाय छे. तेनी योग्यता सिद्ध करवाने धर्म रत्नना अर्थी देश चारित्री, तथा सर्व चारित्रीनां जे चिन्हो तत्वज्ञ पुरुषोए सिद्धांतमां कहेलां छे, ते बधां ते ते विषयने प्रसंगे ग्रंथकारे विवेचनपूर्वक दर्शाव्यां छे. जैन सिद्धांतरुप महासागरमां भिन्न भिन्न स्थळे दर्शावेला उपयोगी विषयो वर्त्तमान काळना अल्पायु अने अल्प बुद्धिवाळा जीवो समजी शके तेम नथी, ते माटे पोतानो तथा परनो अनुग्रह करवाथी इच्छा राखनारा प्राचीन आचार्योए आवा उपयोगी ग्रंथो लखी खरेखर जैन प्रजानो महान् उपकार करेलो छे.

विद्वच्छिरोमणि आ ग्रंथना कर्त्ता देवेंद्रसूरिए ग्रंथने अंते पोतानी प्रशस्ति आपेली छे. तेमां तेओ पोतानी गुरुपरंपरा विषे सारुं स्पष्टीकरण करे छे. श्रीवीरप्रभुथी गौतम, सुधर्मा अने जंबूस्वामी थया. तेमनाथी परंपराए चित्रवाल गच्छमां भुवनचंद्रसूरि थया. तेमना शिष्य देवभद्रगणी अने तेमना जगत्विख्यात जगच्चंद्रसूरि थया हता. तेमने बे शिष्यो थया, देवेंद्रसूरि अने विजयचंद्रसूरि. ते देवेंद्रसूरिए धर्म रत्ननी टीका रचेली छे, अने तेनुं नाम सुखबोधा राखेलुं छे.

ग्रंथकारे प्रशस्तिमां कांइपण शक संवत् दर्शाव्यो नथी. पण तेओ एटलुं जणावे छे के, आ ग्रंथनी प्रत विद्यानंद नामना कोइ विद्वाने प्रथम लखी हती, अने हेमकळश उपाध्याय तथा पंडित धर्मकीर्ति विगेरेए तेने शोधी हती.

आवा समर्थ विद्वानोमां पण पूर्वे विनय गुण केवो हतो ? तेनो दाखलो आ प्रशस्तिमां सारो मळी आवे छे. तेओ छेवटे नीचेना बे श्लोक लखी बीजा विद्वानोनी पासे विनयपूर्वक शोधवानी विनंति करे छे, अने बधा जगतनुं शुभ इच्छे छे.

" यदूगदितमल्पमतिना सिद्धांतविरुद्धमिह किमपि शास्त्रे ।
विद्वद्भिस्तत्वज्ञैः प्रसादमाधाय तच्छोध्यम् ॥ १ ॥
बहुर्थमल्पशब्दं शास्त्रमिदं रचयता मया कुशलम् ।
यदवापि धर्मरत्न प्राप्तिर्जगतोऽपि तेनास्तु ॥ २ ॥ "

" आ ग्रंथमां अल्प बुद्धिने लइने जो मारायी कांइ पण सिद्धांत विरुद्ध लखाएलुं होय तो तत्वज्ञ विद्वानोए मेहेरबानी करी ते शोधी लेवुं. घणा अर्थवाळुं अने अल्प शब्दवाळुं आ शास्त्र रचतां मने जो कुशळता प्राप्त थइ होय तो तेनाथी बधा जगत्ने पण धर्म रत्ननी प्राप्ति थाओ. " १-२

आवा ग्रंथ रत्नो वांचवाथी भव्य प्राणीने घणो लाभ थाय, तेमां कांइ पण संशय नथी. कदि काळना प्रभावे करी पूर्वनी सर्वोत्तम स्थिति न मेळवी शकाय, पण तेवी भावना तो सारी रीते भावी शकाय छे; जे भावना भाववाने माटे आवा बोधक ग्रंथो भव्य प्राणीने पूरेपूरा धर्मना अधिकारी बनावे छे.

सिद्धांतना अर्थने विवेचन करनारा आवा ग्रंथो वांचवाथी भारे लाभ थाय छे. तेवा अर्थनी विचारणा करवाथी तेमां कहेली क्रियाओमां प्रवर्त्तन थाय छे. पछी प्रवर्त्तनने लइने क्षणे क्षणे उत्तरोत्तर शुभ अध्यवसाय वधे छे. ते वधेला अध्यवसायरुप निर्मळ नीरना पूरथी सर्व घाती कर्मनी कलुषता धोइ नाखवामां आवे छे. ज्यारे घातिकर्मनी कलुषता दूर थइ, एटले आ लोकालोकने जोइ शकाय तेवुं केवळज्ञान थाय छे. ते पछी शैलेषीकरणथी भवोपग्राही कर्मनी प्रकृतिओने खपावी शकाय छे. आवी स्थितिपर आवेलां भव्यप्राणीओ क्षेत्र, काळ, अने संघेण विगेरे समग्र भारे सामग्रीने लीधे परंपराए निर्वाण सुखने प्राप्त करे छे. आवा उत्तम प्रकारनो उद्देश आ ग्रंथथी सिद्ध थाय छे, ए वातने ग्रंथकार छेवटे नीचेनी गाथाथी जणावे छे—

इह धम्मरयणपगरण—मणुदियहं जे मणंति भावंति ।
ते गलिय कलिलपंका निव्वाणसुहाइं पावंति ॥ १ ॥

" जे पुरुषो आ धर्म रत्न प्रकरण ग्रंथ प्रतिदिवस वांचे, अने हृदयमां भावित करे, तेओ पापरुपी पंकने दूर करी, निर्वाण सुखने पामे छे. "

आ उपयोगी ग्रंथनो पूरेपूरो लाभ लेवा, तेमां आपेला धार्मिक विषयोनुं जो जैन बंधुओ वांचीने मनन करशे, तो अमे अमारा आ श्रमने सफळ मानी पूर्ण संतोष पामीशुं.

ग्रंथ शुद्धिने माटे बनतो प्रयास करवामां आव्यो छे, ते छतां मनुष्य प्रकृतिने सुलभ एवा प्रमाद तथा दृष्टि दोषने लइने जे कांइ स्खलना थइ होय, तेने माटे अमे विद्वद्वर्गनी क्षमा मागीए छीए, अने ते संबंधी सूचना आपवानी सविनय प्रार्थना करीए छीए.

सात क्षेत्रोमां ज्ञान क्षेत्रनो प्रभाव दिव्य छे, तेना प्रभावथी चर्म चक्षु पण दिव्य चक्षु थइ जाय छे, तेवा सर्वोत्तम क्षेत्रने पुष्टि आपवामां जेनुं द्रव्य उपयोगी थाय, ते द्रव्यवाळा गृहस्थना जीवितने सहस्रवार धन्यवाद घटे छे. तेवा धन्यवादने पात्र थएला कच्छी दशा ओशवाळ ज्ञातिना शिरोमणिरुप शेठ खेतशी खीअसी छे. तेमना उत्तम आश्रयथी आ ग्रंथरत्न बाहेर पडेलो छे. प्राचीनकाळे जैन वर्ग उपर उपकार करनारा ग्रंथकारोए जे श्रम कर्यो छे, ते श्रमने सफळ करवो, ए ज्ञानक्षेत्रने पुष्टि आपनारा धनवंतोनो मुख्य धर्म छे. अने ते धर्म आवा ग्रंथ रत्नो प्रकट करावबा एमांज चरितार्थ छे.

कार्त्तिक पूर्णिमा,
संवत् १९६२.

श्री जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्ग.
पालीताणा.

विषयानुक्रमणिका.

विषय.	पृष्ठ.
भावसाधुनां सात लिंगो.	२
भावसाधुना पहेला लिंग मार्गानुसारिणी क्रियानुं स्वरुप.	४
ते उपर आर्यरक्षितसूरि अने दुर्बलिका पुष्पमित्रनी कथा.	१७
भावसाधुना बीजा लिंग श्रद्धानुं स्वरुप.	३४
ते श्रद्धानां चार प्रकारनां नाम.	३५
विधिसेवारुप श्रद्धानुं पहेलुं लक्षण.	३६
ते उपर श्री संगमसूरिनी कथा.	४०
श्रद्धाना अतृप्ति नामे बीजा प्रकारनुं स्वरुप.	४८
ते उपर अचलमुनिनी कथा.	५०
श्रद्धानी शुद्ध देशना नामे त्रीजा प्रकारनुं स्वरुप.	६२
ते उपर निर्ग्रंथमुनिनी कथा.	६७
देशनानुं दान केवा पात्रने आपवुं.	७६
देशना अपात्रने आपी होय तो शुं थाय ?	७८
उपदेश आपवाने अयोग्य अने योग्य कोण ?	७८
श्रद्धाना स्खलित परिशुद्धि नामे चोथा प्रकारनुं लक्षण.	८६
ते उपर शिवभद्र मुनिनी कथा.	८८
तेमां बतावेल आलोचनानो विधि.	९२
भावसाधुना त्रीजा लिंग प्रज्ञापनीयपणानुं स्वरुप.	१०४
तेमां बतावेलां सूत्रोना जुदाजुदा प्रकार.	१०५
ते उपर सुनंद राजर्षिनी कथा.	११०
क्रियामां अप्रमाद राखवारुप भावसाधुना चोथा लिंगनुं स्वरुप.	१२४
ते उपर आर्यमंगुनी कथा.	१२८
प्रमादने निषेध करवानी बीजी युक्ति.	१३२
शक्य अनुष्ठाननो आरंभ करवारुप भावसाधुना पांचमा लिंगनुं स्वरुप.	१३८
ते उपर आर्यमहागिरिनी कथा.	१४३
शक्य अनुष्ठानना आरंभ विषे वधारे खुलासो.	१४८
ते उपर शिवभूतिनी कथा.	१५०

ते प्रसंगे बतावेला पांच कल्पना साधुओनां लक्षणो. १५६
गुण उपर अनुराग करवारुप भाव साधुना छठ्ठा लिंगनुं स्वरुप. १६६
ते उपर पुरुषोत्तम-श्रीकृष्णनुं चरित्र. १६८
गुण उपर अनुराग करवानां बीजां लिंगो. १७७
गुण उपर अनुराग करवानुं फळ. १८२
गुरुनी आज्ञानुं आराधन करवारुप भाव साधुना सातमा लिंगनुं स्वरुप. १८३
गुरुना छत्रीश गुण. १८५
गुरुना छत्रीश गुणनो बीजो प्रकार. १८७
गुरुना छत्रीश गुणनो त्रीजो प्रकार. १९२
ते प्रसंगे दश प्रकारना प्रायश्चित्तनुं स्वरूप. १९४
अढार हजार शीलांग रथनी स्थापना. १९७
पिंड विशुद्धिनुं स्वरूप. १९९
ते प्रसंगे शबर राजानी वार्त्ता. २०२
गुरुनी आज्ञा माननारनी विशेष प्रशंसा. २०६
कुंतल देवीनुं दृष्टांत. २०८
केवा गुरुने सेववा जोइए ? तेनुं विवेचन. २११
शैलक पंथकनी कथा. २१८
संयममांथी लथडता गुरुने पण बराबर सेववाथी थता लाभ. २२३
एवा गुरुने नहि सेववाथी थती हानि. २२६
पांच निर्ग्रंथनुं स्वरुप. २२८
गुरुनी अवज्ञा करनार शिष्यने थता अनर्थ विषे आगमनुं प्रमाण. २३३
शिष्य गुणी थतां गुरुनुं गौरव थाय छे, ए उपर वज्रस्वामीनी कथा. २३६
उपर कहेलां सात लिंगने धारण करनार भावसाधु थाय छे, ए वातनो उपसंहार. २४३
प्रथम कहेल एकवीश गुणनी संपत्तिवाळो पुरुष धर्म रत्नने योग्य थाय, ते विषे विवेचन. २४४
ते उपर श्रीप्रभ महाराजानी कथा. २४५

श्रीमान् देवेंद्रसूरि विरचित,

श्री

धर्म रत्न प्रकरण.

भाग ३ जो.

सटीक.

कीदृशः पुनर्भावसाधुर्भवतीति ?

उच्यते—

निर्वाणसाधकान्योगान्–यस्मात्साधयतेऽनिशं ।
सर्वश्च सर्वभूतेषु–तस्मात्साधुरुदाहृतः ॥ १ ॥

श्रीमान् देवेंद्रसूरि विरचित,

श्री धर्म रत्न प्रकरण.

ત્રીજો ભાગ.

સટીક.

ભાવ સાધુ કેવો હોય ?

જવાબ.

જે નિરંતર નિર્વાણ સાધક યોગ [વ્યાપાર] સાધતો હોય, અને સર્વ ભૂતો [જીવો] ઉપર સમ (સરખી નજર રાખનાર) હોય, તે સાધુ કહેવાય છે.

क्षांत्यादिगुणसंपन्नो–मैत्र्यादिगुणभूषितः ।
अप्रमादी सदाचारे–भावसाधुः प्रकीर्त्तितः ॥ २ ॥

इति.

कथं पुनच्छद्मस्थैरयं ज्ञायते ?

लिंगैः

कानि पुनस्तानीत्याह.

[मूलं]

एयस्स उ लिंगाइं–सयला मग्गाणुसारिणी किरिया[1] ।
सद्धा पवरा धम्मे[2]–पन्नवणिज्जत्त मुजुभावा[3] ॥ ७८ ॥
किरियासु अप्पमाओ[4]–आरंभो सक्कणिज्जणुट्ठाणे[5] ।
गुरुओ गुणाणुराओ[6]–गुरुआणाराहणं परमं[7] ॥ ७९ ॥

શાંતિ વગેરે ગુણોથી યુક્ત હોય, મૈત્રિ વગેરે ગુણોથી ભૂષિત હોય, અને સદાચારમાં અપ્રમત્ત હોય, તે ભાવ સાધુ કહેલો છે.

આ ભાવ સાધુ છે, એમ છદ્મસ્થો કેમ જાણી શકે ?

લિંગોવડે કરીને.

તે લિંગો કયાં ? તે કહે છે :—

મૂળનો અર્થ.

એનાં લિંગ આ છેઃ—બધી ક્રિયા માર્ગાનુસારિણી, ધર્મમાં ઉત્કૃષ્ટ શ્રદ્ધા, સરળ ભાવ હોવાથી પ્રજ્ઞાપનીયપણું, ક્રિયામાં અપ્રમાદ, શક્યાનુષ્ઠાનનોજ પ્રારંભ, ભારે ગુણાનુરાગ, અને ગુરૂની આજ્ઞાનું પૂર્ણપણે આરાધન, એ સાત લિંગ છે. ૭૮-૭૯

द्वारगाथाद्वयं.

(टीका)

एतस्य पुनर्भावसाधोर्लिंगानि चिह्नानि—सकला समस्ता मार्गानुसारिणी मोक्षाध्वानुपातिनी क्रिया प्रत्युपेक्षणादिका चेष्टा [१] तथा श्रद्धा करणेच्छा प्रवरा प्रधाना धर्मे संयमविषये (२) तथा प्रज्ञापनीयत्वमसदभिनिवेशत्यागित्वमृजुभावादकौटिल्येन (३) तथा क्रियासु-विहितानुष्ठानेऽप्रमादोऽशैथिल्यं [४] तथा आरंभः प्रवृत्तिः शकनीये शक्त्यनुरुपेऽनुष्ठाने तपश्चरणादौ [५] तथा गुरुर्महान् गुणानुरागो गुणपक्षपातः (६) तथा गुर्वाज्ञाराधनं धर्माचार्यादेशवर्त्तित्वं परमं सर्व-गुणप्रधान [७] मिति सप्त लक्षणानि भावसाधोरिति द्वारगाथासम्मासार्थो—व्यासार्थं तु सूत्रकारः स्वयमेवाहः—

આ બે દ્વાર ગાથા છે.

ટીકાનો અર્થ.

એની વ્યાખ્યાઃ—એ ભાવ સાધુનાં લિંગ-ચિન્હ આ છેઃ—સકળ—સમસ્ત માર્ગાનુસારિણી એટલે મોક્ષના માર્ગને અનુસરતી પ્રત્યુપેક્ષણાદિક ક્રિયા, તથા ધર્મ એટલે સંયમના વિષે પ્રવર શ્રદ્ધા એટલે કરવાની ઇચ્છા, તથા ઋજુ ભાવથી એટલે અકુટિલપણાથી પ્રજ્ઞાપનીયપણું, એટલે ખોટા ખોટા અભિનિવેશનો ત્યાગ, તથા ક્રિયા એટલે વિહિત કરેલાં અનુષ્ઠાનમાં અપ્રમાદ એટલે અશિથિલપણું, તથા શક્ય એટલે શક્તિ મુજબના તપશ્ચરણાદિક અનુષ્ઠાનમાં આરંભ એટલે પ્રવૃત્તિ, તથા મોટા ગુણાનુરાગ એટલે ગુણ પક્ષપાત, તથા ગુર્વાજ્ઞારાધન એટલે ધર્માચાર્યના આદેશ પ્રમાણે વર્ત્તન, એ સર્વ ગુણમાં પ્રધાન; એમ ભાવ સાધુનાં સાત લક્ષણ છે. આ દ્વાર ગાથાઓનો સંક્ષેપાર્થ છે. વિસ્તારે અર્થ તો સૂત્રકાર પોતેજ કહે છેઃ—

॥ मूलं ॥

मग्गो आगमनीई-अहवा संविग्गबहुजणाइन्नं, ।
उभयाणुसारिणी जा-सा मग्गणुसारिणा किरिया ॥ ८० ॥

[टीका]

मृग्यतेन्विष्यतेभिमतस्थानावाप्तये पुरुषैर्यः स मार्गः—सच द्रव्यभावभेदाद्द्वेधा,—द्रव्यमार्गो ग्रामादे, र्भावमार्गो मुक्तिपुरस्यास्य सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूपः क्षायोपशमिकभावरूपो वा—तेनेहाधिकारः—स पुनः कारणे कार्योपचारादागमनीतिसिद्धांतभणिताचारः, अथवा संविग्नबहुजनाचीर्णमिति द्विरूपोऽवगंतव्य इति.

तत्रागमो वीतरागवचनं—

મૂળનો અર્થ.

માર્ગ તે આગમ નીતિ, અથવા સંવિગ્ન બહુ જને આચરેલું તે. એ બેને અનુસરતી જે ક્રિયા, તે માર્ગાનુસારિણી છે. (૮૦)

ટીકાનો અર્થ.

ઇચ્છિત સ્થાને પહોંચવા માટે જેને માગીએ–શોધીએ તે માર્ગ. તે દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકારે છે. ત્યાં દ્રવ્ય માર્ગ તે ગ્રામાદિકનો જાણવો, અને ભાવ માર્ગ તે મુક્તિપુરનો માર્ગ. તે જ્ઞાન, દર્શન ચારિત્રરૂપ, અથવા ક્ષાયોપશમિક ભાવરૂપ છે. તે ભાવ માર્ગજ અહીં લેવાનો છે. એ માર્ગ તે કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરતાં આગમ નીતિ એટલે સિદ્ધાંતમાં કહેલો આચાર જાણવો, અથવા ઘણા સંવિગ્ન પુરૂષોએ મળીને આચરેલ આચાર એમ બે રૂપનો માર્ગ છે,

उक्तंच,

आगमो ह्याप्तवचन—माप्तं दोषक्षयाद् विदुः
वीतरागो नृतं वाक्यं—न ब्रूयाद्धेत्वसंभवात्.
तस्य नीतिरुत्सर्गापवादरुपः शुद्धसंयमोपायः समार्गः—

उक्तंच,

यस्मात् प्रवर्त्तकं भुवि–निवर्त्तकं चांतरात्मनो वचनं ।
धर्मश्चैतत्संस्थो–मौनींद्रं तदिह नः परमं ॥ १ ॥
अस्मिन् हृदयस्थे सति–हृदयस्थस्तत्वतो मुनींद्र इति ।
हृदयस्थिते च तस्मि–न्नियमात्सर्वार्थसंसिद्धिः [इति]

तथा संविग्ना मोक्षाभिलाषिणो ये बहवो जना अर्थाद्गीतार्था–इतरेषां संवेगायोगा—त्तैर्यदाचीर्णमनुष्ठितं क्रियारूपं—इहचाऽसंविग्नानां बहूनामप्यप्रमाणतां दर्शयति—यद्व्यवहारः,

---

ત્યાં આગમ એટલે વીતરાગનું વચન. જે માટે કહેલું છે કે, આગમ તે આપ્ત વચન છે. જેના દોષ ક્ષય થયા હોય, તે આપ્ત છે; કેમકે જે વીતરાગ હોય, તે જૂઠું નજ બોલે; કેમકે તેમ કરવાનું તેને કંઇ કારણ રહેલું નથી.

તેની નીતિ એટલે ઉત્સર્ગાપવાદરૂપ શુદ્ધ સંયમ પાળવાનો ઉપાય તે માર્ગ. જે માટે કહેલું છે કે, જગતમાં અંતરાત્માનું વચનજ પ્રવર્ત્તક અને નિવર્ત્તક છે, અને ધર્મ પણ એના આધારે છે; માટે અમોને તે મુનીંદ્ર પ્રવચનજ પરમ પ્રમાણ છે. ૧

જો એ પ્રવચન હૃદયમાં હોય, તો પરમાર્થે મુનીંદ્રજ હૃદયસ્થ ગણાય, અને તે હૃદયસ્થ હોય, તો નિયમે સકળ અર્થની સિદ્ધિ થાય છે.

વળી સંવિગ્ન એટલે મોક્ષના અભિલાષી, જે ઘણા જણ અર્થાત્ ગીતાર્થ પુરૂષો—કારણ કે, બીજાઓને સંવેગ ન હોય—તેમણે જે ક્રિયા આચરી તે પણ માર્ગ છે. આમ કહ્યાથી ઇહાં અસંવિગ્ન ઘણા હોય, તોપણ તેમની અપ્રમાણતા જણાવી. જે માટે વ્યવહાર

जं जीय मसोहिकरं–पासत्थपमत्तसंजयाईहिं–
बहुएहिवि आयरियं–न पमाणं सुद्धचरणाणं (ति)

बहुजनग्रहणं संविग्नोप्येकोनाभोगानवबोधादिभिर्वितथमप्याचरेत्ततः सोपि न प्रमाणमित्यतः संविग्नबहुजनाचरितं मार्ग इत्यतएवाह–उभयानुसारिणीयागमाबाधया संविग्नव्यवहाररूपा सा मार्गानुसारिणी क्रियेति.

आह—आगमएवमार्यो वक्तुं युक्तो,—बहुजनाचीर्णस्य पुनर्मार्गीकरणमयुक्तं—शास्त्रांतरविरोधा—दागमस्य चाप्रामाण्यापत्तेः

तथाहि—

बहुजणपवित्तिमित्तं–इच्छंतेहि इह लोइओ चेव।
धंमो न उज्झियव्वो—जेण तहिं बहुजणपवित्ती ॥ १ ॥

સૂત્રના ભાષ્યમાં કહેલું છે, કે જે જીત અશુદ્ધિકારક અને પાર્શ્વસ્થ પ્રમાદી સંયતોએ આચરેલું હોય, તે ઝાઝાએ આચર્યું હોય, તોપણ શુદ્ધ ચારિત્રવાળાને અપ્રમાણ છે.

બહુ જન એટલા માટે કહ્યા કે, એકાદ સંવિગ્ન વખતે અનાભોગ, અને અનવબોધ વગેરેથી વિતથ (ખોટું) પણ આચરે, માટે તે એકલો પ્રમાણ ન ગણાય, એટલા માટે સંવિગ્ન બહુ જનાચરિત હોય, તે માર્ગ છે; એકલા માટે કહે છે કે, ઉભયાનુસારિણી અર્થાત્ આગમની અબાધાએ સંવિગ્નોએ આચરાતી જે ક્રિયા, તે માર્ગાનુસારિણી ક્રિયા છે.

[પૂર્વ પક્ષ]

આગમનેજ માર્ગ કહેવો યુક્ત છે. બાકી બહુ જનાચીર્ણને માર્ગ ઠેરવવો સયુક્ત છે. કેમકે તે શાસ્ત્રાંતર સાથે વિરોધ પડે છે, તથા આગમ અપ્રમાણભૂત થઇ પડે છે.

તે એ રીતે કે, જો બહુ જન પ્રવૃત્તિ માત્રનેજ કબુલ રાખીએ, તો લૌકિક ધર્મ છોડવા યોગ્ય નહિ થશે; કેમકે તેમાં ઘણા જણ પ્રવર્તે છે, માટે જે આજ્ઞાને અનુસરતું

ता आणाणुगयं जं—तंचेव वुहेण इहो कायव्वं ।
किमिह बहुणा जणेणं—हंदि न सेयत्थिणो बहुया ॥ २ ॥

तथा.

जिट्ठंपि विज्जमाणे–उचिए अणुजेट्ठ पूयण मजुत्तं,
लोयाहरणंपि तहा–पयडे भयवंतवयणंमि.

आगमस्तु केवलिनापिनाप्रमाणीक्रियते, यतः–

आहासुओवउत्तो–सुयनाणी जइविगिण्हइ असुद्धं,
तं केवलीवि भुंजइ–अपमाण सुयं भवे इहरा.

किंच, आगमे सत्यप्याचरितस्य प्रमाणीकरणे तस्य लघुतास्फुटैवेति.

नैतदेवं.

अस्य सूत्रस्य शास्त्रांतराणां च विषयविभागापरिज्ञानात्

હોય, તેજ સમજી પુરૂષે કરવું. બહુ જનનું શું કામ છે. બહોળા કંઇ કલ્યાણાર્થી હોતા નથી. ૧–૨

વળી જ્યાં લગણ ઉચિત જ્યેષ્ટ વિદ્યમાન હોય, ત્યાં સુધી અનુજ્યેષ્ટને પૂજવું, એ અયુક્ત ગણાય, તેમ ભગવાનનું પ્રગટ વચન મળી આવે, ત્યાં સુધી લૌકિક ઉદાહરણ આપવું એ પણ અયુક્તજ છે.

અને આગમને તો કેવળી પણ અપ્રમાણ કરતા નથી. જે માટે કહેવાય છે કે—

શ્રુતના અનુસારે ઉપયોગવંત રહીને શ્રુતજ્ઞાની જો અશુદ્ધ આહાર લઇ આવે તો, તેને કેવળી પણ ખાય છે. અન્યથા આગમ અપ્રમાણ થઇ પડે છે.

વળી આગમ કાયમ છતાં, પણ આ ચરિતને પ્રમાણ કરીએ તો, આગમની ખુલ્લી રીતેજ લઘુતા થાય છે.

ઉત્તર.

એ વાત એમ નથી. કેમકે એ સૂત્ર અને શાસ્ત્રાંતરના વિષય વિભાગ તમે સમજેલા નથી.

तथाहि.

इहसूत्रे संविग्नगीतार्था आगमनिरपेक्षंनाचरंति, किंतर्हि–

दोसा जेण निरुज्झंति–जेण खिज्जंति पुव्वकम्माइं ।
सो सो मुक्खोवाओ–रोगावत्थासु समणं व—

इत्याद्यागमवचनमनुस्मरंतो द्रव्यक्षेत्रकालभावपुरुषाद्यौचित्यमालोच्य संयमवृद्धिकार्येव किंचिदाचरंति—तच्चान्येपि संविग्नगीतार्थाः प्रमाणयंतीति स मार्गोभिधीयते.

भवदुच्चारितशास्त्रांतराणि पुनरसंविग्नगीतार्थलोकमसमंजसप्रवृत्तमाश्रित्य प्रवृत्तानि. ततः कथं तैः सह विरोधसंभवः

तथागमस्यापि नाप्रमाणतापत्ति, रपितु सुष्टुतरं प्रतिष्ठा—

यस्मादागमेप्यागमश्रुताज्ञाधारणाजीतभेदात् पंचधा व्यवहारः प्ररूप्यते–

વિષય વિભાગ એમ છે કે, આ સૂત્રમાં એમ કહેવાનું છે કે, સંવિગ્ન ગીતાર્થે આગમથી નિરપેક્ષ આચરતા નથી. કિંતુ " જેનાવડે દોષો અટકાવાય, અને પૂર્વનાં કર્મ ક્ષય થાય, તે તે મોક્ષનો ઉપાય છે. દાખલા તરીકે શમન [ઔષધ] રોગની અવસ્થા પ્રમાણે જુદાં જુદાં અપાય છે. " આ વગેરે આગમ વચન યાદ કરીને દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવ, તથા પુરૂષાદિકની યોગ્યતા વિચારીને સંયમની વૃદ્ધિ કરનારૂંજ જે હોય, તે આચરે છે, અને તેને બીજા સંવિગ્ન ગીતાર્થો પ્રમાણ કરે છે, તે માર્ગ કહેવાય.

તમે ઉચ્ચારેલાં શાસ્ત્રનાં પ્રમાણો તો અસંવિગ્ન અને અગીતાર્થ લોકો જે કંઇ અસમંજસ આચરે છે, તેને આશ્રીને કહેલાં છે, માટે તેમની સાથે શો વિરોધ સંભવે ?

વળી એ રીતે આગમ અપ્રમાણ થતો નથી, પણ ઉલટી તેની મજબુત સ્થાપના થાય છે.

જે માટે આગમમાં પણ આગમ શ્રુત, આજ્ઞા, ધારણા અને જીતના ભેદથી પાંચ પ્રકારે વ્યવહાર પ્રરૂપેલા છે. જે માટે શ્રી સ્થાનાંગમાં કહ્યું છે કે—

यत उक्तं श्रीस्थानांगे,—

पंचविहे ववहारे पन्नते, तंजहा—आगमववहारे[१], सुयववहारे[२], आणाववहारे[३], धारणाववहारे[४], जीयववहारे[५].

जीताचरितयोश्चानर्थांतरत्वादाचरितस्य प्रमाणत्वे सुतरामागमस्य प्रतिष्ठासिद्धिः

तस्मादागमाविरूद्धमाचरितं प्रमाणमिति स्थितं—अतएवेदमाह,—

[मूलं]

अन्नह भणियंपि सुए—किंची कालाइकारणाविक्खं,—
आइन्न मन्नहच्चिय—दीसइ संविग्गगीएहिं ॥ ८१ ॥

(टीका)

अन्यथा प्रकारांतरेण भणितमप्युक्तमपि श्रुते पारगतगदितागमे किंचिद्वस्तु कालादिकारणापेक्षं दुःषमादिस्वरूपालोचनपूर्वकमाचीर्णं व्य-

---

વ્યવહાર પાંચ છેઃ— આગમ વ્યવહાર, શ્રુત વ્યવહાર, આજ્ઞા વ્યવહાર, ધારણા વ્યવહાર અને જીત. હવે જીત અને આચરિત એ એકજ છે, માટે આચરિતને પ્રમાણ કરતાં આગમ પ્રમાણજ થયો, માટે આગમથી અવિરૂદ્ધ આચરિત હોય, તે પ્રમાણ છે, એ નક્કી થયું, એથીજ કહે છે કેઃ—

મૂળનો અર્થ.

શ્રુતમાં અન્યથા કહેલું છતાં કાળાદિક કારણની અપેક્ષાથી સંવિગ્ન ગીતાર્થોએ કાંઇક અન્યથાજ આચરેલું દીસે છે. (૮૧)

ટીકાનો અર્થ.

શ્રુત એટલે સર્વજ્ઞ પ્રણીત આગમ, તેમાં અન્યથા એટલે બીજા પ્રકારે કહેલી કોઇ

बहूतमन्यथैव–चियशब्दस्यावधारणार्थत्वाद्–दृश्यते साक्षादुपलभ्यते संविग्नगीतार्थैरूक्तस्वरूपैरिति.

किंतदित्याह.

॥ मूलं ॥

कप्पाणं पावरणं—अग्गोयरचाउ झोलियाभिक्खा, ।
ओवग्गहियकडाहय–तुंबयमुहदाणदोराई ॥ ८२ ॥

(टीका)

कल्पानामात्मप्रमाणायामसार्द्धद्विहस्तविस्तराणामागमप्रतीतानां प्रावरणं परितोवेष्टनं प्रतीतमेव–तेहि किल कारणव्यतिरेकेण भिक्षाचर्यादौ गच्छता संवृताः स्कंधत एव बोढव्या इत्यागमाचारः–संप्रति प्राव्रियंते,–

બાબત, કાળાદિક કારણની અપેક્ષાએ એટલે દુષમ કાળ વગેરેનું સ્વરૂપ વિચારીને સંવિગ્ન ગીતાર્થોએ બીજી રીતે આચરેલી પ્રત્યક્ષ દેખાય છે.

તે બાબતો કઇ કઇ છે, તે કહે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

કલ્પોનું પ્રાવરણ, અગ્રાવતારનો ત્યાગ, ઝોળીવડે ભિક્ષા, અને કટાહક, તુંબક મુખદાન, દોરૂં ઔપગ્રહિક ઉપકરણો. [૮૨]

ટીકાનો અર્થ.

કલ્પો એટલે સાડા ત્રણ હાથ લાંબાં અને અઢી હાથ પહોળાં આગમમાં જણાવેલાં વસ્ત્રોનું પ્રાવરણ એટલે ચોમેર વીંટાળીને પેહેરવું. આગમમાં એમ કહેલું છે કે, કારણ યોગે ગોચરીએ જતાં તે વસ્ત્રો વીંટેલાંજ ખાંધે રાખવાં, પણ હમણાં તેઓ પહેરાય છે.

अग्गोयर त्ति अग्रावतारः परिधानविशेषः साधुजनप्रतीतस्तस्य त्यागः कटीपट्टकस्यान्यथाकरणं,—

तथा झोलिका ग्रंथिद्वयनियंत्रितपात्रबंधरूपा तया भिक्षा—आगमेहिं पात्रबंधांचलद्वयं मुष्ट्या ध्रियते कूर्परसमीपगमेव बध्यते इति व्यवस्था,—

तथौपग्रहिककटाहकतुंबकमुखदानदवरकादयः सुविदिता एव, साधूनामाचरिताः संप्रतीति गम्यते.

तथा

(मूलं)

सिक्किगनिक्खवणाई-पज्जोसवणाइतिहिपरावत्तो ।
भोयणविहिअन्नत्तं-एमाई विविह मन्नंपि ॥ ८३ ॥

અગ્રાવતાર એટલે એક જાતનું નીચે પહેરવાનું વસ્ત્ર, કે જે સાધુ જનમાં પ્રસિદ્ધ છે, તેનો ત્યાગ. અર્થાત્ ચોળપટ્ટા માટે કરવામાં આવેલો ફેરફાર, તથા ઝોળી એટલે બે ગાંઠ વાળીને પાત્રાં બાંધવાં તે, તેનાવડે ભિક્ષા. આગમમાં પાત્ર બાંધના બે છેડા મૂઠે પકડવાના, તથા બેકોણીની પાસે બાંધવાના કહેલ છે, તથા ઔપગ્રહિક ઉપકરણ રાખવાં. જેવાં કે, કટાહક, તુંબડાનું ઢાંકણ, તથા દોરા વગેરે એ બધાં પાધરાંજ છે. એ બધાં હમણાં સાધુઓનાં આચરિત છે.

વળી,

મૂળનો અર્થ.

સીકામાં પાત્ર નિક્ષેપ કરવો વગેરે, પર્યુષણાદિક તિથિઓનો ફેરફાર, ભોજન વિધિનો ફેરફાર, એ વગેરે બીજી ઘણી બાબતો [આચરિત થએલી છે.] [૮૩]

(ટીકા)

सिक्किको दवरकरचितो भाजनाधारविशेषः तत्र निक्षेपणं बंधनमर्थात् पात्राणामादिशब्दाद्युक्तिलेपेन पात्रलेपनादि,—

तथा पर्युषणादितिथिपरावर्त्तः पर्युषणा सांवत्सरिकमादिशब्दाच्चातुर्मासकपरिग्रह—स्तयोस्थितिपरावर्त्तस्तिथ्यंतरकरणं—सुप्रतीतमेतत्, तथा भोजनविधेरन्यत्वं यतिजनप्रसिद्धमेव,—एमाइ त्ति प्राकृतशैल्यैवंशब्दे वकारलोप—स्तत एवमादिग्रहणेन षट्जीवनिकायामप्यधीतायां शिष्य उत्थाप्य इत्यादि गीतार्थानुमतं विविधमन्यदप्याचरितं प्रमाणभूतमस्तीत्यवगंतव्यं.

तथाच व्यवहारभाष्यं—

सत्थपरिन्ना छक्काय—संजमो पिंड उत्तरज्झाए,
रुक्खे वसहे गोवे—जोहे सोहीय पुक्खरिणी ॥ १ ॥

ટીકાનો અર્થ.

સીક્કા એટલે દોરાનો બનાવેલો ભાજનનો આધાર. તેમાં નિક્ષેપણ કરવું, અર્થાત્ પાત્રાં બાંધી રાખવાં. આદિ શબ્દથી યુક્તિ લેપથી [હમણાંના ગોઠવેલા લેપથી] પાત્રાં લીંપવાં વગેરે, તથા પર્યુષણાદિ તિથિ પરાવર્ત્ત —ત્યાં પર્યુષણા એટલે સંવચ્છરી પર્વ અને આદિ શબ્દથી ચાતુર્માસક લેવું, તે એનો તિથિ પરાવર્ત્ત એટલે તિથિ ફેર, કે જે પાધરોજ છે તે. તથા ભોજન વિધિનું અન્યત્વ (ફેરફાર), કે જે પણ યતિ જનમાં પ્રસિદ્ધજ છે તે. એ વગેરે એટલે કે, છજ્જીવણી અધ્યયન શીખી રહેતાં, પણ શિષ્યને વડી દીક્ષા આપવી, વગેરે. ગીતાર્થોએ કબુલ રાખેલી બીજી વિવિધ આચરણાઓ પ્રમાણ ભૂતજ છે, એમ સમજવું.

જે માટે વ્યવહારના ભાષ્યમાં કહેલું છે કે, શસ્ત્ર પરિજ્ઞાના બદલે છકાય સંજમ, પિંડેષણાના બદલે ઉત્તરાધ્યયન, તથા વૃક્ષ—વૃષભ—ગોપ—યોધ—શોધિ અને પુષ્કરિણીનાં દૃષ્ટાંત આપ્યાં છે. આ ગાથાનો ટુંકામાં અર્થ આ પ્રમાણે છે:—

अस्या अयमर्थलेशः

शस्त्रपरिज्ञाध्ययने सूत्रतोर्थतश्चावगते भिक्षुरुत्थापनीय इत्यप्रमेयप्रभावपारमेश्वरप्रवचनमुद्रा,—जीतं पुनः षट्कायसंयमो—दशवैकालिकचतुर्थाध्ययने षट्जीवनिकाख्ये ज्ञाते भिक्षुरुत्थाप्यत इति.

तथा पिंडैषणायां पठितायामुत्तराध्ययनान्यधीयंते स्म,—संप्रति तान्यधीत्याचार उद्दिश्यते.

पूर्वं कल्पपादपालोकस्य शरीरास्थितिहेतवोऽभूव,—न्विदानीं सहकारकरीरादिभिर्व्यवहारः

तथा वृषभाः पूर्व मतुलबला धवलवृषभा बभूवुः,—संप्रति धूसरैरपि लोको व्यवहरति.

तथा गोपाः कर्षकाश्चक्रवर्त्तिगृहपतिरत्नवत् तद्दिनएव धान्यनिष्पादका आसन्,—संप्रति तादृगभावेपीतरकर्षकैर्लोको निर्वहति.

શસ્ત્ર પરિજ્ઞા, અધ્યયન, સૂત્ર, અને અર્થથી જાણ્યા બાદ ભિક્ષુને વડી દીક્ષા આપવી, એમ મહા પ્રભાવવાળા જિન પ્રવચનની મર્યાદા હતી. તે બદલે જીત એવું ચાલે છે કે, ષટ્કાયનો સંયમ અર્થાત્ દશ વૈકાલિકનું છજ્જીવણિયા નામે ચોથું અધ્યયન જાણી લેતાં ભિક્ષુને વડી દીક્ષા આપવી.

વળી પિંડેષણા અધ્યયન શીખ્યા બાદ ઉત્તરાધ્યયન શીખાતું, તે બદલે હમણાં ઉત્તરાધ્યયન શીખીને પિંડેષણા શીખાય છે.

પૂર્વે કલ્પવૃક્ષો લોકના શરીરનો ટકાવ કરતા હતા, હાલ આંબા અને કરડોથી પણ કામ ચાલે છે. વળી પૂર્વે બળદો બહુ બળવાન્ અને ધોળા હતા, ત્યારે હાલમાં ભાંખરા બળદોથી પણ લોકો કામ ચલાવી લીએ છે, તથા ગોપ એટલે ખેડુતો પૂર્વે ચક્રવર્ત્તિના ગૃહપતિ રત્નની માફક તેજ દિને ધાન્ય પેદા કરી શકતા. ત્યારે હાલ તેવા નહિ છતાં સાધારણ ખેડુતોથી પણ લોકો નભાવી લીએ છે, વળી પૂર્વે સહસ્ર યોદ્ધી [એકી વેળાએ

तथा पूर्वं योधा सहस्रयोधादयः समभवन्,—संप्रत्यल्पबलपराक्रमै रपि राजानः शत्रूनाक्रम्य राज्यमनुपालयंति.

तद्वत् साधवोपि जीतव्यवहारेणापि संयममाराधयंतीत्युपनयः

तथा शोधिः प्रायश्चित्तं,—षाण्मासिकयामप्यापत्तौ जीतव्यवहारे द्वादशकेन निरूपितमिति.

पुष्करिण्योपि प्राक्तनीभ्यो हीना अपि लोकोपकारिण्यएवे ति—दार्ष्टांतिकयोजना पूर्ववत्.

एव मनेकधा जीतमुपलभ्यत इति अथवाकिंबहुना,

॥ मूलं ॥

जं सव्वहा न सुत्ते-पडिसिद्धं नेव जीववहहेउ,
तं सव्वंपि पमाणं-चारित्तधणाण भणियं च ॥ ८४ ॥

હજાર માણસની સાથે લડનારા] યોદ્ધા હતા, ત્યારે હાલ થોડાં બળ પરાક્રમવાળા યોદ્ધાઓથી પણ રાજાઓ શત્રુઓને જીતી રાજ્ય પાળે છે.

એ રીતે સાધુઓ પણ જીત વ્યવહારથી પણ સંયમને આરાધી શકે છે. એ ઉપરના દૃષ્ટાંતોનો ઉપનય છે.

વળી શોધિ એટલે પ્રાયશ્ચિત પૂર્વ છમાસીનું આવતું, તે ઠેકાણે જીત વ્યવહારમાં બારસ [પાંચ ઉપવાસ]નું કહ્યું છે.

હાલની વાવડીઓ પણ પ્રથમની કરતાં હલકી છતાં લોકોને કામ આવે છે. ઇહાં પણ પૂર્વની માફક દાર્ષ્ટાંતિક જોડી લેવું.

એમ અનેક પ્રકારે જીત દેખાય છે—ઝાઝું શું કહીએ ? ટુંકામાં.

મૂળનો અર્થ.

જે સૂત્રમાં સર્વથા વિષેધ્યું ન હોય, અને જીવવધનો હેતુ ન હોય, તે સર્વ ચારિત્રવંતોને પ્રમાણ છે. જે માટે કહેલું છે કેઃ—(૮૪)

ટીકા.

यत्तु सर्वथा सर्वप्रकारैर्नैव सूत्रे सिद्धांते प्रतिषिद्धं निवारितं–मैथुनसेवनवत्,

उक्तंच.

नय किंचि अणुन्नायं–पडिसिद्धंवावि जिणवरिंदेहिं,
मोत्तुं मेहुणभावं–न तं विणरागदोसेहिं [ति]

नापि जीववधहेतु–राधाकर्ममग्रहणवत्, तदनुष्ठानं सर्वमपि प्रमाणं–चारित्रमेव धनं येषां तेषां चारित्रधनानां चारित्रिणामागमानुज्ञातत्वाद्, भणितमुक्तंच पूर्वाचार्यैरिति.

यद्भणितं तदेवाह.

ટીકાનો અર્થ.

જે સર્વથા સર્વ પ્રકારે સૂત્રમાં—સિદ્ધાંતમાં પ્રતિષિદ્ધ એટલે નિવારિત કર્યું ન હોય મૈથુન સેવવાની માફક.

જે માટે કહેલું છે કેઃ—

જિનેશ્વરે એકાંતે કંઇ અનુજ્ઞાત નથી કર્યું, તેમ મૈથુન છોડીને એકાંતે કંઇ પ્રતિષિદ્ધ પણ નથી કર્યું. કારણ કે, મૈથુન તો રાગ દ્વેષ વિના થઇ શકેજ નહિ. તેથી તેને એકાંતે નિષેધ્યું છે.

વળી જે આધાકર્મ લેવા માફક જીવવધનું કારણ પણ નહિ હોય, તેવું સર્વે અનુષ્ઠાન ચારિત્રને ધન ગણનારા ચારિત્રિયા સાધુઓને પ્રમાણ છે. કેમકે તે રીતે આગમની અનુજ્ઞા છે, જે માટે પૂર્વાચાર્યોએ કહેલું પણ છે.

જે કહેલું છે, તે બતાવે છેઃ—

॥ मूलं ॥

अवलंबिउण कज्जं-जंकिंपि समायरंति गीयत्था ।
थोबावराहबहुगुण-सव्वेसिं तं पमाणं तु ॥ ८५ ॥

(टीका)

अवलंब्याश्रित्य कार्यं संयमोपकारि यत्किमपि समाचरंति संगतं सिद्धांतानुयाय्याचरंत्यासेवंते गीतार्था विदितागमतत्वास्तोकापराध मल्पदोषं-निःकारणपरिभोगत्वेन प्रायश्चित्तापत्तेः-बहुगुणं गुरुग्लानबाल-वृद्धक्षपनकादीनामुपष्टंभेन बहूपकारं-मात्रकादिपरिभोगवत्, सर्वेषामपि चारित्रिणां तत् प्रमाणमेव-तु शब्दस्यैवकारार्थत्वा, दार्यरक्षितसूरिसमाचरितं दुर्बलिकापुष्पमित्रस्येव.

भूળનો અર્થ.

કાર્યને અવલંબીને ગીતાર્થો જે કંઇ થોડા અપરાધ અને બહુ ગુણવાળું કામ આચરે તે સર્વેને પ્રમાણ રહે છે. [૮૫]

ટીકાનો અર્થ.

સંયમોપકારી કામને આસરીને આગમના જાણુ પુરૂષો જે કંઇ સમાચરે છે, એટલે સિદ્ધાંતના અનુસારે સંગતપણે આસેવે છે, તે કેવું કે, સ્તોકાપરાધ એટલે જેને સેવતાં અલ્પ દોષ લાગે એવું, કેમકે નિઃકારણે સેવે, તો પ્રાયશ્ચિતજ આવે, વળી બહુ ગુણ એટલે ગુરૂ, ગ્લાન, બાળ, વૃદ્ધ, ક્ષપણુક, વગેરાને ટેકો આપનાર હોવાથી વધારે ફાયદાવાળું હોય, જેમકે માત્રકનો પરિભોગ (વપરાશ), તે સર્વે ચારિત્રવંતોને પ્રમાણુજ રહે છે, આર્યરક્ષિતસૂરિએ જે આચર્યું, તે દુર્બલિકા પુષ્પમિત્રે કબુલ રાખ્યું, તે માફક.

तथाहि.

इह दसपुरनयरे सोम–देववरविप्प वंसनहतरणी । अक्खुद्दरुद्दसो-मा–तणुसरसीरायहंससमो ॥ १ ॥ पाडलिपुरा चउद्दस–विज्जाठाणाणि पढिय संपत्तो । तुट्ठेण निवेण पुरे–पवेसिओ गुरुविभूईए ॥ २ ॥ आ-णंदियनयरजणो–जणणीवयणेण दिट्ठिवायसुयं । पढिउं सिरितोसलिपुत्त–सूरिपासंमि पव्वइओ ॥ ३ ॥ सिरिवइरसामि गणहर–पयमूले गहियसद्ध-नवपुव्वो । दिक्खिय लहुबंधवफग्गु–रक्खिवजणणिप्पमुहलोओ ॥ ४ ॥ बहुविहउवायगाहियचरित्तुपिउमुणिविदिन्नकडिदोरो । सिरिअज्जरक्खियप-हु–अहेसि सूरी जुगप्पवरो ॥ ५ ॥

तस्स त्थि तिन्नि सीसा–विणीयविणया विसिट्ठलद्धिजुया । धय-वत्थपूसमित्ता–दुब्बलियापुस्समित्तो य ॥ ६ ॥ तस्स घयपूसमित्तस्स–अत्थि लद्धी इमा कयचमक्का । दव्वे घय माणेयं खित्ते उज्जेणि नय-

---

આર્યરક્ષિતસૂરિ અને દુર્બલિકા પુષ્પમિત્રની કથા આ છે.

ઇહાં દશપુર નગરમાં સોમદેવ બ્રાહ્મણના વંશમાં સૂર્ય સમાન અને ગંભીર બુદ્ધિ-વાળી રૂદ્રસોમાની કૂખરૂપ તલાવડીમાં રાજહંસ સમાન. [૧]

પાટલી પુત્રથી ચૌદ વિદ્યા ભણીને આવેલો, અને તેથી તુષ્ટ થએલા રાજાએ ભારે આડંબરથી નગરમાં પ્રવેશિત કરાવેલો. (૨) નગર જનને આનંદિત કરનાર, માતાનાં વાકયથી દ્રષ્ટિવાદ શ્રુતને ભણવા માટે શ્રી તોસલીપુત્ર સૂરિ પાસે દીક્ષા લેનાર. (૩) શ્રી વૈર સ્વામિ પાસે સાડા નવ પૂર્વ શીખનાર, પોતાના લઘુ બાંધવ ફલ્ગુ રક્ષિત અને માતા પ્રમુખ લોકોને દીક્ષા અપાવનાર. [૪] તથા ઘણા ઉપાયો કરીને બાપને ચા-રિત્ર લેવરાવનાર, અને તેણેજ જેને કેડમાં દોરો બાંધેલ, એવા શ્રી આર્યરક્ષિત નામે યુગ પ્રધાન આચાર્ય હતા. [૫] તેમને વિનયમાં કેળવાયલા, અને વિશિષ્ટ લબ્ધિવાળા ત્રણ શિષ્યો હતા, તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છેઃ—ઘૃત પુષ્પમિત્ર, વસ્ત્ર પુષ્પમિત્ર, ને દુર્બલિકા પુષ્પમિત્ર. (૬)

રીએ ॥ ૭ ॥ काले जिट्ठासाढे–सुभावओ नियडपसवसमयाए । दिन्नं दरिद्दइत्थीइ–भावओ गच्छपरिमाणं ॥ ८ ॥ एसा पुण लद्धी वत्थ–पूसमित्तस्स अत्थि जह दव्वे । वत्थं आणेयव्वं–खित्ते महुराइ नयरीए ॥ ९ ॥ कालंमि सिसिरकाले–भावंमि दरिद्दविहवमहिलाए । दिन्नं परिमाणे पुण–पडिपुन्नं सयलगच्छस्स ॥ १० ॥ दुब्बलियपूसमित्तो–नवपुव्वाइं पढित्तु ताइं सया । परियट्टइ तव्वसओ–अईव सो दुब्बलो जाओ ॥ ११ ॥

तस्सय दसपुरनयरे–दस बलभत्ता समत्थि बहुसयणा । ते कोउगेण गुरुणो–पासं पत्ता इय भणंति ॥ १२ ॥ तुम्हाण नत्थि झाणं–झाणपरा अम्ह भिक्खुणो सययं । जंपंति गुरु झाणं–अम्हंचिय नणु अइपहाणं ॥ १३ ॥ जं एस तुम्ह नियगो झाणेणं चेव दुब्बलो जाओ । ते बिंति इमो गेहे–निद्धाहारेहि आसि बली ॥ १४ ॥ संपइ पुण तय-

---

તેમાંના ઘૃત પુષ્પમિત્રની એવી ચમત્કાર કરનારી લબ્ધિ હતી કે, દ્રવ્યથી ઘી લાવવું, ક્ષેત્રથી ઉજ્જેણીમાંથી, કાળથી જેઠ, અષાડમાં, ભાવથી નજીકમાં જણનારી દરિદ્ર સ્ત્રીએ દીધેલું ગચ્છને ખપે તેટલું. [૭–૮] વસ્ત્ર પુષ્પમિત્રની એ લબ્ધિ હતી કે, દ્રવ્યથી વસ્ત્ર લાવવું, ક્ષેત્રથી મથુરા નગરીમાંથી લાવવું, કાળથી શિશિર ઋતુમાં, અને ભાવથી દરિદ્ર વિધવાના હાથે આખા ગચ્છને પૂરું થાય, તેટલા પ્રમાણનું. (૯–૧૦) દુર્બલિકા પુષ્પમિત્રની એ લબ્ધિ હતી કે, તે નવ પૂર્વ ભણીને તેમને હમેશાં પરાવર્તન કરતા, તેને લીધે તે અતિશય દુર્બળ થયા હતા. (૧૧)

તે દુર્બલિકા પુષ્પમિત્રના દશપુર નગરમાં દશબળ [શુદ્ધ]ના ભક્ત ઘણા સગા હતા, તેઓ કૌતુકથી ગુરૂ પાસે આવી કહેવા લાગ્યા. (૧૨) તમારામાં ધ્યાન નથી, અમારા ભિક્ષુઓ હમેશાં ધ્યાનમાં તત્પર રહે છે. ત્યારે ગુરૂ બોલ્યા કે, ધ્યાન તો અમારામાંજ અતિ પ્રધાન છે. [૧૩] જે માટે આ તમારો સગો ધ્યાનથીજ દુર્બળ થઇ ગયો છે. ત્યારે તેઓ બોલ્યા કે, આ ઘરમાં હતો, ત્યારે સ્નિગ્ધ આહાર કરતો, તેથી

भावा–जाओ दुब्बलतणू, तओ गुरुणो। जंपंति कयावि इमो–नेहेणविणा न भुंजइ ॥ १५ ॥ कत्तो तुम्हं नेउ त्ति–तेहि वुत्ते भणंति मुणिपहुणो। घयपूसाउ इमाओ–तहावि नहु पत्तियंति इमे ॥ १६ ॥

तो, पडिबोहणहेउं–पेसंति तयं गुरु गिहे ताण। ते दिंति निद्ध-पेसल–आहारे सोवि गिण्हइ ॥ १७ ॥ भुंजेवि तयणु पुव्वे–सरमाणो हवइ तारिसो चेव। गाढतरं दिंति तओ–तहवि झरंतो किसो एसो ॥ १८ ॥ ते निव्विन्ना दाउं–विंति गुरू पुसमित्त इत्ताहे। मा झरसु क-इवि दिवसे–आहारसु अंतपंताइं ॥ १९ ॥ तहचेव कए एसो–बलियस-रीरो फुरंततेयभरो। पडिपुन्नगलकवोलो–थोवदिणेहिंपि संजाओ ॥ २० ॥ तं दट्ठु महच्छरियं–ते बुद्धा बुद्धमग्ग मुज्झेउं। रक्खियपहुपयमूले–गिहत्थधम्मं पवज्जंति ॥ २१ ॥

બળવાન્ રહેતો. (૧૪) પણ હમણાં તેને તે નહિ મળવાથી દુર્બળ થએલ છે. ત્યારે ગુરૂ બોલ્યા કે, એ તો ઇહાં પણ ક્યારે પણ ઘી વગરનું ખાતોજ નથી. [૧૫] તેઓ બોલ્યા કે, તેની તમને કોના પાસેથી ખબર મળે છે ? ત્યારે ગુરૂએ કહ્યું કે, આ ઘૃતપુષ્પ પાસેથી—છતાં તેઓએ એ વાત માની નહિ. [૧૬]

ત્યારે તેમને સમજાવવા માટે ગુરૂ તેને ત્યાં મોકલવા લાગ્યા. હવે તેઓ તેને સ્નિગ્ધ અને સુંવાળો આહાર આપતા, અને તે ગ્રહણ કરતો. (૧૭) બાદ તેને ખા-ઇને તે પૂર્વોને સંભારતો, તેથી તે તેવોજ ગસતો રહ્યો. ત્યારે તેઓ તેને તે કરતાં, પણ મજબુત આહાર દેવા લાગ્યા, છતાં પણ આ તો ઘસાતો થકો કૃશજ રહ્યો. [૧૮] ત્યારે તેઓ આપતાં આપતાં થાકયા, એટલે ગુરૂએ કહ્યું કે, હે પુષ્પમિત્ર ! આજથી કૃથ-કૃશ થતો ના, અને થોડા દિવસ અંતપ્રાંત [હલકું] ખાતો રહે. (૧૯) તેમજ કરતાં તેનું શરીર બળવાન્ અને તેજસ્વિ થવા લાગ્યું, અને થોડા દિવસમાંજ તેના ગાલ અને કપોળ [લમણા] લોહીથી ભરાઈ આવ્યાં. (૨૦) તે મહા આશ્ચર્ય જોઇને તેઓ પ્રતિબોધ પામી શુદ્ધધર્મ છોડીને રક્ષિત સ્વામિ પાસેથી ગૃહસ્થ ધર્મ સ્વીકારવા લાગ્યા. [૨૧]

तग्गच्छे दुब्बलिया-पुस्सो विज्झो य फग्गुरक्खी य । गुट्ठामाहिलनामा-चत्तारि जणा पहाण त्ति ॥ २२ ॥ तत्थय विज्झो विज्झो व्व समयसुत्तत्थहत्थिआहारो । कइयावि साहुनाहं-भत्तीए विन्नवेइ इमं ॥ २३ ॥ पहु सुत्तमंडलीए-परिवाडीए समेइ सुचिरेण । आलावगो तओ मह-देह पुढोवायणायरियं ॥ २४ ॥ गुरुणावि पूसमित्तो-तो दिन्नो तस्स वायणायरिओ । सो दाउ वायणं कइवि-वासरे भणइ इय सूरिं ॥ २५ ॥ दिंतस्स वायणाओ-अणुपेहावज्जिणो य सयणगिहे । पहु अज्झरि पंचमज्झं-नवमं पुव्वं पणिस्सिहिइ ॥ २६ ॥

तं सोउ चिंतइ गुरु-अइमेहाविस्स इय झरंतस्स । जइ एयस्सवि नस्सइ-ता नट्ठंचेव इयराण ॥ २७ ॥ अइसयकओवओगो-मइमेहाधारणाइपरिहीणे । नाउण सेसपुरिसे-खित्तं कालाणुभावं च ॥ २८ ॥ सविसय मसद्दहंता-नयाण तम्मत्तगं च गिण्हंता । मन्नंता य विरोहं-अपरी-

---

તે ગચ્છમાં દુર્બલિકા પુષ્પમિત્ર, વિંધ્ય, ફલ્ગુરક્ષિત, અને ગોષ્ઠામાહિલ એ ચાર જણ પ્રધાન [પ્રસિદ્ધ કે મોટા] હતા (૨૨) ત્યાં વિંધ્યાચળની માફક સ્વ સમયના સૂત્રાર્થરૂપ હાથીઓનો આધાર વિંધ્ય, એક વેળા આચાર્યને ભક્તિ સાથે આ રીતે વિનવવા લાગ્યો. [૨૩] કે હે પ્રભુ ! સૂત્ર મંડળીમાં તો વારા ફરતો લાંબા વખતે મને આ લાવો મળે છે, માટે મને જુદો વાચનાચાર્ય આપો. [૨૪] ત્યારે ગુરૂએ તેને પુષ્પમિત્ર વાચનાચાર્ય આપ્યો. હવે તે કેટલાક દિવસ લગી વાચના દઇને ગુરૂને કહેવા લાગ્યો કે [૨૫] હે પ્રભુ ! વાચના દેતાં, અને સગાના ઘેર રહેતાં હું અનુપ્રેક્ષા કરી શકતો નથી, તેથી હું પાંચ વસ્તુ ભૂલી ગયો છું, અને હવે નવમું પૂર્વ પણ રખેને ભૂલી જાઉં. (૨૬)

તે સાંભળીને ગુરૂ વિચારવા લાગ્યા કે, આવા મહા બુદ્ધિવાનને પણ આ રીતે જ્યારે વીસરી જાય છે, ત્યારે બીજાને તો નષ્ટ થયું જ માનવું. (૨૭) બાદ તેમણે અતિશય ઉપયોગ કરીને જોયું, તો શેષ પુરૂષો તેમને મતિ, મેધા અને ધારણા વગેરેથી તદ્દન હીન જણાયા, તથા ક્ષેત્ર અને કાળ પણ હીન જણાયા, તેથી તેમણે વિચાર કર્યો

णामाइपरिणामा ॥ २९ ॥ मा मिच्छत्तं गच्छिज्ज इय विचिंतिय इमो समणनाहो । सुनिगूहियनयमग्गे–पुड्ढोणुओगे इय करेसि ॥ ३० ॥

तथाहि

चरणकरणाणुओगे–कालियसुयछेयसुत्तमाईणि । धम्मकहाअणुओगे–ठवेइ इसिभासियाइसुयं ॥ ३१ ॥ रविससिपन्नत्तीओ—करेइ गणियाणुओगविसयाओ । सव्वोवि दिट्ठिवाओ—ठविओ दव्वाणुओगंमि ॥३२॥

तथा

दसपुरनगरच्छुघरे—ठिओ मुणीणं कयावि दयहेउं । मत्तगपरिभोगंपिहु अणुजाणइ वरिसयालंपि ॥ ३३ ॥ आलोयणवयदाणं—छेयसुयं संजईण वारेइ । आगमभणियंमि इमो—काले भावं च आसज्ज ॥ ३४ ॥

जं निरवज्जं एमाइ –तेण असढ्ढेण पभाणियं तइया । मग्गाणु-

કે, અપરિણામી અને અતિ પરિણામી લોકો નયોનો સ્વવિષય શો છે ? તે નહિ જાણતાં પ્રકત નય માત્ર પકડીને વિરોધ માની લઇ રખેને મિથ્યાત્વમાં પડી જાય, માટે તેઓ મિથ્યાત્વમાં મ પડો, એમ વિચારીને તે આચાર્યે ગૂઢ નયવાળા અનુયોગને જુદો પાડી નાખ્યો. [૨૮–૨૯–૩૦]

તે આ રીતે કે:—

તેમણે કાલિકશ્રુત [અગાર અંગ] તથા છેદ સૂત્ર વગેરાને ચરણ કરણાનુયોગમાં સ્થાપ્યા, ઋષિ ભાષિત, વગેરાને ધર્મ કથાનુયોગમાં સ્થાપ્યા, સૂરપન્નતિ અને ચંદ્રપન્નતિને ગણિતાનુયોગમાં સ્થાપી, અને આખા દ્રષ્ટિવાદને દ્રવ્યાનુયોગમાં સ્થાપ્યો. (૩૩૧–૩૨)

વળી,

દશપુર નગરમાં સેલડીના વાઢમાં તેઓ એક વેળા રહ્યા હતા, ત્યારે તેમણે સાધુઓને વર્ષા કાળમાં પાણી રાખવા માટે માત્રક [માટો] વાપરવાની અનુજ્ઞા કરી. [૩૩] વળી તેમણે સાધ્વીઓને આલોચના, વ્રત સ્થાપના (વડી દીક્ષા), તથા છેદસૂત્ર શીખવાની બાબતો આગમમાં જણાવેલી છતાં, પણ કાળ અને ભાવ જોઇને બંધ કરી. (૩૪)

सारिबुद्धीण—अणुमयं तं परेसिंपि ॥ ३५ ॥ पसरंतबहुलअन्नाण—धंत-हीरंतजंतु सुपईवो । कइयावि अज्जरक्खिय—सामी महुराउरिं पत्तो ॥ ३६ ॥ तत्थय भूयगुहाए—वंतरभवणे ठिओ सपरिवारो । सीमंधर-पहुपासे-इओ निगोए हरी सुणिउं ॥ ३७ ॥ पुच्छइ भयवं भरहेवि-कोवि एए जिए वियारेइ । साहइ सामी रक्खिय—अज्जो अहमिव वियारेइ ॥ ३८ ॥ सक्को बंभणरूवं काउ मिहागम्म पुच्छइ निगोए । गोला य असंखिज्जा—इच्चाइ गुरूवि साहेइ ॥ ३९ ॥

पुण भणइ हरी भयवं-वुड्ढत्ता काउ इच्छिमो णसणं । भण मह कित्तिय माउं-सुयउवओगा तओ सूरी ॥ ४० ॥ जा पिच्छइ दो अयरे-किंचूणे तस्स आउ भणइ गुरू । इंदो भवं ति सक्को-तो काउ सरूव मिय थुणइ ॥ ४१ ॥ निरइसएवि हु काले-नाणं विप्फुरइ निम्मलं ज-

---

તે અશઠ આચાર્યે તે વેળા એ વગેરે જે કાંઇ નિરવદ્ય કહ્યું, તે બીજા માર્ગાનુસારિ બુદ્ધિવાળા બીજા પુરૂષોએ પણ અનુમત રાખ્યું. [૩૫] પસરતા ભારે અજ્ઞાનરૂપ અંધારાથી હરાઇ જતાં જંતુઓને બચાવવા ઉત્તમ દીવા સમાન તે આચાર્ય એક વેળા મથુરાપુરીમાં આવ્યા. (૩૬) ત્યાં તેઓ ભૂત ગુફામાં એક વ્યંતરના ભવનમાં સપરિવાર રહ્યા. એવામાં સીમંધર સ્વામિ પાસે ઇંદ્ર નિગોદનો વિચાર સાંભળીને પૂછવા લાગ્યો કે, હે સ્વામિન્! ભરતક્ષેત્રમાં પણ કોઇ નિગોદના જીવને વિચારે છે ? ભગવાને કહ્યું કે, રક્ષિતાર્ય મારા માફક જ વિચારે છે. [૩૭-૩૮] ત્યારે ઇંદ્ર બ્રાહ્મણનું રૂપ કરીને અહીં આવી નિગોદની વાત પૂછવા લાગ્યો, એટલે ગુરૂએ અસંખ્યાતા ગોળા વગેરે સઘળું વર્ણન કર્યું. [૩૯]

ફરીને ઇંદ્ર બોલ્યો કે, હે ભગવાન્! વૃદ્ધપણાથી હવે અણસણ કરવા ઇચ્છું છું, માટે મારૂં આયુષ્ય કેટલું છે, તે કહો ? ત્યારે શ્રુતના ઉપયોગથી સૂરિ જોવા લાગ્યા તો, કાંઇક ઉણા બે સાગરોપમ આયુષ્ય જણાયું, ત્યારે તે બોલ્યા કે, તું ઇંદ્ર છે, તે સાંભળી ઇંદ્ર પોતાનું મૂળરૂપ પ્રગટાવી આ રીતે સ્તવવા લાગ્યો. (૪૦-૪૧) અતિશય વગરના

स्स । विम्हाइयतेलुक्क-तस्स नमो होउ तुह नाह ॥ ४२ ॥ जय जिण आगम अणुमय-सुद्ध समायारआयरणावित्त । जय रागदोसजलरासि-सोसकुंभुब्भव मुणिंद ॥ ४३ ॥ इय थुणिय जा सट्ठाणं-इंदो गच्छइ गुरुहिंवो भणिओ । पडिवालसु खण मेगं-जा विहरिय इंति इह मुणिणो ॥ ४४ ॥

दट्ठूण तुमं वासव-अज्जवि सीलंगसंगसुभगमणे । हरिणोवि नमंति मुणी-इय थिरया हवइ ते सिंपि ॥ ४५ ॥ सक्कोवि आह मुणिपहु-ते मं दट्ठुं विसिट्ठरूवधरं । काहंति अप्पसत्ता-नियाण मिय जामि सट्ठाणं ॥ ४६ ॥ इय जंपिय तस्स उवसयस्स काऊण दार मवरमुहं । नमिय मुणिंदं पत्तो-पुरंदरो नियसट्ठाणंमि ॥ ४७ ॥ ता तत्थ मुणी पत्ता-कओ दुवारं ति बिंति तो गुरुणा । वाहरिया एह इओ-सिट्ठं तह सक्कआगमणं ॥ ४८ ॥ ते आहु किं न धरिओ-खणमेगं, तो क-

---

કાળમાં પણ જેને ત્રણ જગતને વિસ્મય પમાડનાર નિર્મળ જ્ઞાન સ્ફુરે છે, એવા હે નાથ! તમને નમસ્કાર થાઓ. [૪૨] જિનાગમને અનુસરતા શુદ્ધ સમાચાર આચરવામાં વર્ત્તનાર, અને રાગ દ્વેષરૂપ જળરાશિ શોષવા અગસ્ત્ય ઋષિ સમાન, હે મુનીંદ્ર! તું જયવાન રહે. [૪૩] એમ સ્તવીને ઇંદ્ર જેવો સ્વસ્થાને જવા લાગ્યો, એટલે ગુરૂએ કહ્યું કે, થોડો વખત ઠેરી જાઓ, કે જેટલામાં મુનિઓ ભિક્ષા લાવીને અહીં આવે. (૪૪)

કેમકે હે ઇંદ્ર! તમને જોઇને આજ પણ શીલાંગના સંગથી સુભગ મનવાળા મુનિઓને ઇંદ્ર નમે છે, એમ વિચારી તેમને સ્થિરતા થશે. (૪૫) ત્યારે ઇંદ્ર બોલ્યો કે, હે મુનિનાથ! તે અલ્પ સત્વો મને વિશિષ્ટ રૂપવાળો જોઇને નિયાણા કરશે, માટે હું મારા સ્થાને જતો રહું છું. [૪૬] એમ કહી તે ઉપાશ્રયનો દ્વાર કે જે પૂર્વ મુખ હતો, તેને પશ્ચિમ મુખ કરીને મુનીંદ્રને નમી, ઇંદ્ર સ્વસ્થાને પહોંચ્યો. [૪૭] તેવામાં ત્યાં મુનિઓ આવી પહોંચ્યા. તેઓ બોલ્યા કે, દરવાજો કયાં છે? ત્યારે ગુરૂ બોલ્યા કે, આ બાજુથી આવો. બાદ ઇંદ્રના આગમનની વાત કહી. [૪૮] તેઓ બોલ્યા કે, થોડી વાર તેને

हंति गुरुणोवि । तं वुत्तंतं सयलंपि-पाडिहेरावसाणं ति ॥ ४९ ॥

अन्नदिणे विहरंता-ते भयवंतो गया दस पुरंमि । पवलो नाहिय-वाई-महुराइ समुट्ठिओइत्तो ॥ ५० ॥ सिरि अज्जरक्खियाणं-जुगप्पहाणा-गमाण पासंमि । संघेण सुगुणसंघेण-पेसिओ साहुसंघाडो ॥ ५१ ॥ तेहिवि गुट्ठामाहिल-नामा नियमाउलो तहिं पहिओ । गुरूवायलद्धिणा तेण-झत्ति सो निज्जिओ वाई ॥ ५२ ॥ सो तयणु सावगेहिं-धरिओ वासासु दिट्ठचित्तेहिं । रक्खिय पहुणा इत्तो-अइथोवं आउ नाउ नियं ॥ ५३ ॥ को गणहरो ठविज्जइ-इय चिंतंतेण निउणबुद्धीए । आयरिय-ठाणजुग्गो-समिक्खिओ दुब्बलिय पूसो ॥ ५४ ॥

जे पुण से सयणजणा-तेसिं किर फग्गुरक्खिओ समणो । माउ-लओ वा भिमओ-तो ते वुत्ता इमं गुरुणा ॥ ५५ ॥ निप्फावतिल्ल-

---

અટકાવ્યો કાં નહિ ? ત્યારે ગુરૂએ વસતિનો દ્વાર ફેરવવા સુધીનો સઘળો વૃત્તાંત કહી બતાવ્યો. [૪૯]

એક વેળા તે ભગવાન્ વિચરતા વિચરતા દશપુરમાં ગયા, તેવામાં આણીમેર મથુરામાં એક પ્રબળ નાસ્તિક વાદી ઉઠ્યો. [૫૦] ત્યારે સદ્‌ગુણના સંઘ [સંઘાત] સમાન સંઘે તે આર્યરક્ષિત યુગપ્રધાનાગમના પાસે સાધુનો સંઘાડો મોકલાવ્યો. [૫૧] ત્યારે તેમણે ગોષ્ઠામાહિલ નામના પોતાના મામાને ત્યાં મોકલાવ્યો. તે ભારે વાદલબ્ધિવાળા હોવાથી તેમણે તે વાદીને ઝટ જીતી લીધો. (૫૨) તેથી ત્યાંના શ્રાવકોએ હર્ષિત થઇને તેને ત્યાં ચોમાસુ કરવા અટકાવ્યો. આણીમેર રક્ષિતસૂરિએ પોતાનું આયુષ્ય અતિ થોડું જાણીને, નિપુણ બુદ્ધિથી વિચાર્યું કે, ગણધર (ગચ્છનાયક) કોને કરવો ? ત્યારે દુર્બલિકા પુષ્પમિત્ર તેમને આચાર્યના સ્થાનને યોગ્ય જણાયા. [૫૩-૫૪]

પરંતુ તેમના જે સગાવહાલા હતા, તેમને ફલ્ગુરક્ષિત મુનિ, અથવા તેમનો મામો વધારે અભિમત હતો; તેથી તેમને ગુરૂએ આ પ્રમાણે કહ્યું. (૫૫] અહીં તલ, તેલ,

घयगाण इह कुडेसुं अहोमुहकएसु । सव्वेवि नेंति तिल्ला–तिल्लं पुण लग्गए किमावि ॥ ५६ ॥ लग्गइ सुबहुंपि घयं—एमेव अहंपि सुत्तअत्थेहिं । निप्फावकुडसमाणो—दुब्बलियं पइ महाभागा ॥ ५७ ॥ तह फग्गुरक्खियमुणिं—गुट्ठामाहिलमुणिंच आसज्ज । तिल्लंघयघडु व्व कमा–अहयं इयकारणा भद्दा ॥ ५८ ॥ सुत्तत्थतदुभयधरो—सद्धासंवेगसंगओ सुमई । सक्किरियाकरणरओ–रायकरंडगसमाणगुणो ॥ ५९ ॥

ससमयपरसमयविउ—दुब्बलिओ एस होउ तुम्ह गुरू । तेवि तहत्ति पडिच्छंति–सीस वीसंतकरकमला ॥ ६० ॥ वुड्ढो गणहरसद्दो–गोयममाईहिं धीरपुरिसेहिं । जो तं ठवइ अपत्ते–जाणंतो सो महापावो ॥ ६१ ॥ इय चिंतिऊण गुणपक्ख–राइणा सूरिणा समयविहिणा । ठविऊण पूसमित्तो–आयरियपए इमं वुत्तो ॥ ६२ ॥ जह फग्गुरक्खिए माहिले य इह वट्टिओ अहं वच्छ । तह वट्टिज्ज तुमंपि हु–तह त्ति तं

અને ઘીના કુટ (ઘડા) ઉંધા વાળીએ તો, બધા ઢોળાઇ જાય, તેલ થોડુંક ચોટેલું રહે, અને ઘી ઘણું રહે. એ રીતે દુર્બલિકા પુષ્પમિત્ર પ્રત્યે સુત્રાર્થ ઢોળવામાં હું તલના ઘડા જેવો છું, ફલ્ગુરક્ષિત પ્રત્યે તેલના ઘડા જેવો છું, અને ગોષ્ટામાહિલ પ્રત્યે ઘીના ઘડા જેવો છું. એ કારણથી હે ભદ્રો ! (૫૬–૫૭–૫૮–] સુત્ર, અર્થ અને તદુભયને ધરનાર, શ્રદ્ધાસંવેગ સહિત, સુમતિવાન્, સત્ક્રિયા કરવામાં રક્ત, રાજકરંડક સમાન ગુણવાળો. [૫૯]

અને સ્વસમય પરસમયનો જાણુ આ દુર્બલિકા પુષ્પમિત્ર તમારો ગુરૂ થાઓ. ત્યારે તેઓએ પણ મસ્તકે અંજલિ જોડી તે વાતને તેમજ સ્વીકારી [૬૦] ગણધર એ શબ્દ ગૌતમાદિક ધીર પુરૂષોએ વહેલો છે, માટે જે જાણતો થકો તેને અપાત્રમાં સ્થાપે તે મહાપાપી ગણાય છે. [૬૧] એમ ચિંતવીને ગુણના પક્ષપાતી આચાર્યે શાસ્ત્રની વિધિએ પુષ્પમિત્રને આચાર્ય પદે સ્થાપી આ રીતે શિક્ષા આપી. (૬૨) હે વત્સ ! ફલ્ગુરક્ષિત અને ગોષ્ટામાહિલ તરફ હું જે રીતે વર્ત્યો છું, તેજ રીતે તું પણ વર્ત્તજે. ત્યારે તેણે પણ તે વાત કબુલ રાખી. (૬૩) સ્વજનોને તેણે કહ્યું કે, જેમ તમો મારી તરફ હમેશાં

મિણ્હઇ ઇમોવિ ॥ ૬૩ ॥ સયણા ઉ ઇમં વુત્તા—જહ તુબ્ભે વટ્ટિયા મઇ સયાવિ । એયંમિવિ મુણિનોહ—તહ વટ્ટિજ્જેહ વિણયપરા ॥ ૬૪ ॥

અવિય અહં અકએ વા કએવિ વા નેવ રૂસિઓ કઇયા । એસો ઉણ નહુ ખમિહી–તા વટ્ટિજ્જેહ સુટ્ઠુયરં ॥ ૬૫ ॥ એવં દુન્નિવિ વગ્ગે–અપ્પાહિય હિયકરેહિ વયણેહિં । ભત્તં પચ્ચક્ખાઇત્તુ–સૂરિણો સગ્ગ મણુપત્તા ॥ ૬૬ ॥ દુબ્બલિયપૂસમિત્તોવિ–ગણહરો હરિયસયલસંદેહો । મગ્ગાણુસારિકિરિયા–નિરઓ કયભવિયજણહરિસો ॥ ૬૭ ॥ દપ્પિટ્ઠદુટ્ઠકુગ્ગહ–નિમ્મહિયજણાભિમાણદાણપવણો । વિહિયનિયગચ્છસુત્થા–કપ્પેણ સુહભાયણં જાઓ ॥ ૬૮ ॥

શ્રુત્વેતિ વૃત્તંત્રિજગત્પવિત્રં—
શ્રીપુષ્પમિત્રસ્ય મુનીશ્વરસ્ય ।
મુમુક્ષવઃ સંતુ કૃતપ્રયત્ના—
માર્ગાનુસારિપ્રવરક્રિયાયાં ॥ ૬૯ ॥

॥ઇતિ દુર્બલિકાપુષ્પમિત્રકથા સમાપ્તા ॥ " છ "

વર્ત્યા છો, તેમ આ મુનિનાથ તરફ વિનયવાન્ થઇ વર્ત્તજો. [૬૪]

વળી હું તમે (મારો વિનય) કરતા કે નહિ કરતા, છતાં કયારે પણ રૂઠયો નથી; પણ આ તે નહિ ખમી શકશે, માટે એના તરફ બરોબર થઇને વર્ત્તજો. (૬૫) એમ બે વર્ગને હિતકારક વચનોવડે રાજી કરીને ભક્ત પ્રત્યાખ્યાન કરી આચાર્ય સ્વર્ગે પહોંચ્યા. [૬૬] બાદ દુર્બલિકા પુષ્પમિત્ર ગણધર સઘળા સંદેહ હરતા થકા માર્ગાનુસારી ક્રિયામાં તત્પર રહી, ભવ્ય જનોને હર્ષ કરતા થકા, અતિ અનિષ્ટ અને દુષ્ટ કદાગ્રહથી હણાયલા લોકોના અભિમાનરૂપ વાદળાને પવનની માફક તોડતા રહી પોતાના ગચ્છની સ્વસ્થતા સાચવી, અનુક્રમે સુખભાજન થયા. [૬૭–૬૮] આ રીતે શ્રીપુષ્પમિત્ર મુનીશ્વરનું ત્રિજગતમાં પવિત્ર વૃત્તાંત સાંભળીને મુમુક્ષુ જનો માર્ગાનુસારી ક્રિયામાં પ્રયત્નવાન્ બનો. (૬૯)

આ રીતે દુર્બલિકા પુષ્પમિત્રની કથા છે.

अत्र कश्चिदेवमाह.

नन्वेवमाचरितं युष्माभिः प्रमाणीकृतेस्माकं पितृपितामहादयो नानारंभमिथ्यात्वक्रियाप्रवृत्तयोऽभूव—ततोस्माकमपि तथैव प्रवर्त्तितुमुचितं.

इत्यत्रोच्यते,—

सौम्यमार्गेणापि नीयमानोमोन्मार्गेण गमः;—यतो स्माभिः संविग्नाचरितमेव स्थापितं, न सर्वपूर्वपुरुषाचरित,–मित्यतएवाह,—

॥ मूलं ॥

जं पुणपमायरूवं–गुरुलाघवचिंताविरहियं सवहं ।
सुहसीलसढाइन्नं–चरित्तिणो तं न सेवंति ॥ ८६ ॥

અહીં કોઇક એમ બોલે છેઃ—

જો આ રીતે આચરિતને તમે પ્રમાણ કરો છો, તો અમારા બાપદાદાઓ અનેક આરંભ અને મિથ્યાત્વની ક્રિયામાં પ્રવૃત્તિ કરનાર હતા; માટે અમારે પણ તેમજ પ્રવર્ત્તવું જોઇએ.

અહીં આ રીતે જવાબ છેઃ—

હે સૌમ્ય! સીધે રસ્તે દોરતાં અવળે રસ્તે મ જા. એ માટે અમે તો સંવિગ્ન જનના આચરિતનેજ સ્થાપ્યું છે, કંઇ સર્વે પૂર્વ પુરૂષોનાં આચરિતને સ્થાપ્યું નથી. એજ કારણથી કહે છે કેઃ—

મૂળનો અર્થ.

જે સુખશીળ જનોને ગુરૂ લાઘવ વિચાર્યા વગર પ્રમાદરૂપે હિંસાવાળું કામ આચરેલું હોય, તેને ચારિત્રવાન્ પુરૂષો સેવતા નથી. (૮૬)

[ટીકા]

यत् पुनराचरितं प्रमादरूपसंयमबाधकत्वात् अतएव गुरुलाघवचिंताविरहितं सगुणमपगुणंवेति पर्यालोचनवर्जितमतएव सवधं यतनाभावात् सुखशीला इहलोकप्रतिबद्धाः शठा मिथ्यालंबनप्रधानास्तैराचीर्णं समाचरितं चारित्रिणः शुद्धचारित्रवंतस्तं न सेवंते नानुतिष्ठंतीति.

अस्यैवोल्लेखं दर्शयन्नाह,—

(मूलं)

जह सड्ढेसु ममत्तं-राढाइ असुद्धउवहिभत्ताई ।
निद्दिज्जवसहितूली-मसूरमाईण परिभोगो ॥ ८७ ॥

ટીકાનો અર્થ.

જે આચરિત સંયમને બાધા કરનાર હોવાથી પ્રમાદરૂપ હોય, અને તેથીજ ગુણ લાઘવ ચિંતા રહિત હોય, એટલે કે સગુણ છે કે, નિર્ગુણ છે, એવી પર્યાલોચનાથી વર્જિત હોય, અને એથીજ યતના હોવાના લીધે સવધ [હિંસાવાળું] હોય, અને સુખશીળ એટલે આ લોકનાજ સુખમાં પ્રતિબદ્ધ રહેલા, તથા શઠ એટલે ખોટા આલંબન લેનારા જનોએ આચરેલું હોય, તેને શુદ્ધ ચારિત્રવાળા સેવતા નથી.

આ વાતનાજ નમુના બતાવે છે.

મૂળનો અર્થ.

જેમકે શ્રાવકોમાં મમત્વ કરવી, શરીર શોભા માટે અશુદ્ધ વસ્ત્ર, પાત્ર, તથા આહાર ગ્રહણ કરવાં, કાયમપણે દીધેલી વસ્તિ કબૂલ રાખવી, તથા ગાદલાં, તકીયા વગેરે વાપરવાં, (એ બધો પ્રમાદ છે.) [૮૭]

(ટીકા)

यथेत्युपदर्शने श्राद्धेषु श्रावकेषु ममत्वं ममकारं मदीयोयं श्रावक इति गाढाग्रहं—

" गामे कुलेवा नगरे व देसे-ममत्तभावं न कहिंचि कुज्जा. "

इत्यागमनिषिद्धमपि केचित् कुर्वंति,—

तथा राढया शरीरशोभाकाम्ययाऽशुद्धोपधिभक्तादि केचन गृह्णंति,—तत्राशुद्धमुद्गमोत्पादनादिदोषदुष्टं, उपधिर्वस्त्रपात्रादि—भक्तमशनपानखाद्यस्वाद्यादि—आदिशब्दादुपाश्रयग्रहण—मेतान्यप्यागमेऽशुद्धानि निषिद्धान्येव.

यत एवमार्षं—

पिंडं सिज्जं च वत्थं च-चउत्थं पाय मेवय,
अकप्पियं न इच्छिज्जा-पडिगाहिज्ज कप्पियं (इति)

ટીકાનો અર્થ.

જેમકે દાખલા તરીકે શ્રાવકોમાં મમત્વ—મમકાર એટલે કે, આ શ્રાવક મારોજ છે, એવો સખત આગ્રહ તે આગમમાં નિષેધેલો છે. જે માટે કહેલું છે કે—

" ગામ, કુળ, નગર કે દેશ, એમાંના કોઇમાં પણ મમત્વ ભાવ ન કરવો. "

આમ છતાં પણ કેટલાકએક તે મમત્વ કરે છે.

વળી રાઢા એટલે શરીર શોભા તેની ઇચ્છાએ અશુદ્ધ. ઉપધિ અને ભક્ત વગેરે કેટલાક લે છે. ત્યાં અશુદ્ધ એટલે ઉદ્ગમ ઉત્પાદનાદિ દોષથી દુષ્ટ, ઉપધિ એટલે વસ્ત્ર, પાત્ર વગેરે અને ભક્ત એટલે અશનપાન, ખાદિમ સ્વાદિમ વગેરે, આદિ શબ્દથી ઉપાશ્રય લેવો. એ બધાં અશુદ્ધ લેવા આગમમાં નિષેધ્યાંજ છે.

જે માટે આગમ આ રીતે છે કે, પિંડ, શય્યા, વસ્ત્ર, અને ચોથું પાત્ર, એ અકલ્પનીય નહિ લેવાં, કિંતુ કલ્પનીય હોય તે લેવાં.

इह च राढाग्रहणं पुष्टालंबनेन दुर्भिक्षाक्षेमादौ पंचकपरिहाण्या किंचिदशुद्धमपि गृह्णतो न दोष इति ज्ञापनार्थं—यतोभाणि पिंडनिर्युक्तौ—

एसो आहारविही—जह भणिओ सव्वभावदंसीहिं ।
धम्मावस्सगजोगा—जेण न हायंति तं कज्जा ॥ १ ॥

तथा,

कारणपडिसेवा पुण–भावेणासेवणत्ति दट्ठवा,
आणाइ तीइ भावे—सो सुद्धो मुक्खहेउ त्ति.

तथा निद्दिज्ज त्ति पत्रलेखनेनाचंद्रकालिकं प्रदत्ता वसतिर्गृहमेषापि साधूनामकल्पनीया–अनगारत्वहानेः—भग्नसंस्थापनादौ कायवधसंभवात्,

---

અહીં શરીર શોભાના માટે એમ કહ્યું, તે પુષ્ટાલંબને દુર્ભિક્ષ અને મરકીમાં પંચક પરિહાણિએ કંઇ અશુદ્ધ લે તોપણ તેને દોષ લાગતો નથી, એમ જણાવવા માટે છે.

જે માટે પિંડ નિર્યુક્તિમાં કહ્યું છે કે—

આ આહારની વિધિ જે સર્વ ભાવદર્શી જીનેશ્વરે કહેલી છે, તે જેમ ધર્મ અને આવશ્યક વ્યાપારમાં ખલલ ન આવે તેમ પાળવી. (૧) વળી કારણે દોષ સેવવો પડે, તે ભાવે કરી અનાસેવનાજ જાણવી કેમકે આત્માએ કરીને તેમ કરતાં તેનો ભાવ શુદ્ધજ રહે છે, અને તેજ મોક્ષ હેતુ છે. (૨)

વળી નિર્દેય એટલે ખત લખી આપીને ચંદ્ર સુરજ લગી આપેલી વસતિ એટલે જગ્યા, તે પણ સાધુઓને અકલ્પનીય છે. કેમકે તે લેતાં અનગારપણાની હાનિ થાય છે, તથા ભાંગી તૂટી સુધારતાં જીવઘાત થવાનો પણ સંભવ રહે છે. જે માટે કહેવાય છે કેઃ— જીવોને માર્યા સિવાય ઘરની સારસંભાળ અને સાચવણી કેમ થઇ શકે ? અને તેમ કરનારા જનો અસંયતના માર્ગમાં પડે છે.

तथाच पठ्यते—

अविकत्तिउण जीवे—कत्तो घरसरण गुत्ति संठप्पं,
अविकत्तियाय तं तह—पडिया अस्संज्याण पहे.

एतद्ग्रहणमप्येकैराचर्यते.

तथा तूलीमसूरके प्रतीते—आदिशब्दात्तूलिकाखल्लककांस्यताम्रपात्रादीनां परिग्रहः—एतान्यपि यतीनां न कल्पंते इति.

अथ प्रस्तुतमुपसंहरन्नाह—

[मूलं]

इच्चाई असमंजस-मणेगहा खुद्दचिट्ठियं लोए,।
बहुएहिवि आयरियं-न पमाणं सुद्धचरणाणं ॥ ८८ ॥

(टीका)

इत्याद्येवंप्रकारमसमंजसं वक्तुमप्यनुचितं शिष्टानामनेकधानेक

એનું ગ્રહણ પણ કેટલાએક કરે છે.

તથા તૂળી અને મશરિયાં, (ગાદલાં તકીયા) પ્રસિદ્ધજ છે, આદિ શબ્દથી ગાદી, ખરલ, કાંસા તાંબાના વાસણ, વગેરે લેવાં, એ પણ યતિઓને નહિ કલ્પે.

હવે ચાલતી વાતનો ઉપસંહાર કરતા થકા કહે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

ઇત્યાદિક અનેક પ્રકારનું શુદ્ધ જનોએ અસમંજસ ચેષ્ટિત આ લોકમાં ઘણા જણાએ આચર્યું હોય, તોપણ તે શુદ્ધ ચારિત્રવાળાને પ્રમાણ નથી. (૮૮)

ટીકાનો અર્થ.

ઇત્યાદિક એટલે એવી જાતનું અસમંજસ એટલે શિષ્ટ જનોને [સુપરેલા જનોને]

प्रकारं क्षुद्राणां तुच्छसत्त्वानां चेष्टितमाचरितं लोके लिंगिजने बहुभिरप्यनेकैरप्याचीर्णं न प्रमाणं नालंबनहेतुः शुद्धचरणानां निष्कलंकचारित्रिणां.

अप्रमाणता पुनरेतस्य–सिद्धांतनिषिद्धत्वात्, संयमविरूद्धत्वादकारणप्रवृत्तत्वाच्चसम्यगालोचनीयेति.

एवमानुषंगिकमभिधाय प्रस्तुतोपसंहारमाह.

॥ मूलं ॥

गीयत्थपारतंता–इय दुविहं मग्ग मणुसरंतस्स ।
भावजइत्तं जुत्तं–दुप्पसहंत्तं जओ चरणं ॥ ८९ ॥

(टीका)

गीतार्थपारतंत्र्यादागमविदाज्ञयेत्युक्तनीत्या द्विविधमागमनीत्या

બોલવાને પણ અનુચિત અનેક પ્રકારનું શુદ્ધ એટલે હીનસત્ત્વ જનોનું ચેષ્ટિત એટલે આચરિત લોકમાં એટલે લિંગિ જનોમાં ઘણાઓએ આચર્યું હોય, તોપણ નિષ્કલંક ચારિત્રવાન્ જનોને પ્રમાણ એટલે આલંબન હેતુ નથી.

એ અપ્રમાણ એટલા માટે છે કે, તે સિદ્ધાંતમાં નિષેધેલ છે, સંયમને વિરૂદ્ધ છે, અને નિષ્કારણે ચાલેલ છે, એ રીતે બરોબર વિચારી લેવું.

આ રીતે આનુષંગિક કહીને હવે પ્રસ્તુતનો ઉપસંહાર કરે છે.

મૂળનો અર્થ.

ગીતાર્થની પરતંત્રતામાં રહીન, એ રીતે બે જાતના માર્ગને અનુસરનારને ભાવયતિપણું યુક્ત છે. જે માટે દુઃપ્રસહ પર્યંત ચારિત્ર [કહેલું છે] (૮૯)

ટીકાનો અર્થ.

ગીતાર્થની પરતંત્રતાએ એટલે આગમના જાણનાર પુરૂષની આજ્ઞામાં રહીને, એ

गमानुगतवृद्धसमाचारभेदेन द्विप्रकारं मार्गमनुसरतस्तदनुसारेणव्यवहरतः साधोरिति गम्यते भावयतित्वं सुसाधुत्वं युक्तमुचितं वक्तुमिति शेषः—किमित्यतआह—दुःप्रसहांतं दुःप्रसहनामधेयाचार्यपर्यंतं यतो यस्माच्चरणं चारित्रं–सिद्धांते श्रूयत इतिशेषः

अयमभिप्रायो—यदि मार्गानुसारिक्रियाकरणसारं यतमानाश्चारित्रिणोनाभ्युपगम्यंते, ततस्तदन्येषामनुपलंभाद्व्यवच्छिन्नं चारित्रं–तद्व्यवच्छेदात्तीर्थं चेत्यायातं.—एतच्च प्रत्यक्षीभूतभूतभवद्भाविभावस्वभावजिननाथ–प्रणीतसिद्धांतेन सह विरुद्धमिति न प्रेक्षापूर्वकारिणः प्रतिपद्यंते—

तथाच व्यवहारभाष्यं.

केसिंचिय आएसो—दंसणनाणेहि वट्टएतित्थं ।
वोच्छिन्नं च चरित्तं–वयमाणे भारिया चउरो ॥ १ ॥

રીતે એટલે કહેલી નીતિએ બે પ્રકારના માર્ગને એટલે આગમ નીતિ, અને આગમાનુસારો વૃદ્ધ સમાચાર એ બે ભેદવાળા માર્ગને અનુસરનાર એટલે તેના અનુસારે ચાલનાર સાધુને ભાવયતિપણું એટલે સુસાધુપણું યુક્ત છે, એટલે કહી શકાય તેમ છે. કેમકે દુઃપ્રસહ નામના આચાર્ય પર્યંત ચારિત્ર હશે, એમ સિદ્ધાંતમાં સંભળાય છે.

તાત્પર્ય આ છે કે, જો માર્ગાનુસારી ક્રિયા કરવામાં યત્ન કરનારાઓને ચારિત્રવાન્ ન માનિએ, તો તેમના વિના બીજા તો કંઇ દેખાતા નથી; એટલે ચારિત્રજ વિચ્છિન્ન થયું. અને તેમ થતાં તીર્થ પણ વિચ્છિન્ન થયું; એ વાત આવી. હવે એ વાત તો ભૂત, વર્ત્તમાન, ભવિષ્યત્ના ભાવને પ્રત્યક્ષપણે જાણનાર જિનેશ્વરના કહેલા સિદ્ધાંત સાથે વિરૂદ્ધ પડે છે, માટે તેને સમજવાન્ જનો સ્વીકારતા નથી. જે માટે વ્યવહાર ભાષ્યમાં કહેલું છે કે, —

કેટલાએકનો એવો આદેશ [મત] છે કે, જ્ઞાન દર્શનથી તીર્થ વર્ત્તે છે, બાકી ચારિત્ર વિચ્છિન્ન થયું છે; પણ એમ બોલનારને ચતુર્ગુરૂ પ્રાયશ્ચિત આપવું. [૧]

जो भणइ नत्थि धम्मो–नय सामइयं नचेवय वयाइं।
सो समणसंघबज्झो–कायव्वो समणसंघेण ॥ २ ॥

इत्याद्यागमप्रामाण्यान्मार्गानुसारिक्रियाकारिणो भावयतय इति स्थितं.

उक्तं सकलमार्गानुसारिणी क्रियेति भावसाधोः प्रथमं लिंगं संप्रति श्रद्धा प्रवरा धर्मे इति द्वितीयमाह—

॥ मूलं ॥

सद्धा तिव्वाभिलासो–धम्मे पवरत्तणं इमं तीसे, ।
विहिसेव[1] अतित्ती[2] सुद्धदेसणा[3] स्खलियपरिसुद्धी ॥ ९० ॥

જે એમ કહે છે કે, ધર્મ નથી, સામાયિક નથી, અને વ્રત નથી, તેને શ્રમણસંઘે પોતાના શ્રમણસંઘથી [સાધુઓના ટોળાંથી] બાહેર કહાડવો. [૨]

આ વગેરે આગમના પ્રમાણથી માર્ગાનુસારી ક્રિયા કરનારા તે ભાવયતિ છે, એ વાત નક્કી થઇ.

આ રીતે સઘળી માર્ગાનુસારી ક્રિયા હોય, એ ભાવ સાધુનું પ્રથમ લિંગ કહ્યું. હવે ધર્મમાં પ્રવર શ્રદ્ધારૂપ બીજું લિંગ કહે છે.

મૂળનો અર્થ.

શ્રદ્ધા એટલે તીવ્રાભિલાષ, તેનું ધર્મમાં પ્રવરપણું, તે આ છેઃ—વિધિ, સેવા, અતૃપ્તિ, શુદ્ધ દેશના, અને સ્ખલિતની પરિશુદ્ધિ. (૯૦)

(ટીકા)

श्रद्धा प्रवरा धर्मे इति द्वितीयं लिंगमुक्तं तत्र श्रद्धा तीव्रः पटुरभिलाषः कर्मक्षयोपशमसज्ज्ञानप्रभवो नपुनर्विषयप्रतिभासमात्रं बालस्य रत्नग्रहणाभिलाषवत्—धर्मे श्रुतचारित्ररूपे—प्रवरत्वं प्रधानत्वं विशेषणीकृतमिदं वक्ष्यमाणं तस्याः श्रद्धायाः फलभूतं.

तद्यथा.

विधिसेवा [१] अतृप्तिः [२] शुद्धदेशना [३] स्खलितपरिशुद्धिः (४) इति लिंगानि श्रद्धायाः प्रवरत्वस्येति.—सूत्रे च " विहिसेवअतित्ती " इत्यत्र ह्रस्वत्वं प्राकृतत्वात्.

संप्रत्येतान्येव प्रत्येकंविभावयिषुः प्रथमं तावद्विधिसेवामधिकृत्याह.

ટીકાનો અર્થ.

ધર્મમાં પ્રવર શ્રદ્ધા, એ બીજું લિંગ કહેલું છે. ત્યાં શ્રદ્ધા એટલે તીવ્ર અભિલાષ એટલે કે કર્મની ક્ષયોપશમ અને સમ્યક્ જ્ઞાનથી થએલ ઇચ્છા, નહિ કે બાળકને રત્ન લેવાની મરજી થાય છે, તેના માફક. ફક્ત કોઇ પણ વિષય પકડવાનો ધરાદો. એટલા માટે કહ્યું કે, તીવ્ર અભિલાષ ધર્મમાં એટલે શ્રુત અને ચાસ્ત્રિરૂપ ધર્મમાં તેનું પ્રવરપણું, તે આ એટલે આગળ કહેવામાં આવતું, તે શ્રદ્ધાનું ફળરૂપ જાણવું.

તે આ રીતે કે, વિધિ સેવા, અતૃપ્તિ, શુદ્ધ દેશના અને સ્ખલિત પરિશુદ્ધિ એ શ્રદ્ધાનાં પ્રવરપણાનાં લિંગ છે. સૂત્રમાં " विहिसेव अति त्ती " એ પદમાં પ્રાકૃતપણાથી હ્રસ્વ કરેલું છે.

હવે એ દરેકને વર્ણવવા ખાતર પહેલાં વિધિ સેવાને આસરીને કહે છે.

॥ मूलं ॥

विहिसारंचिय सेवइ-सद्धालू सत्तिमं अणुट्ठाणं ।
दव्वाइदोसनिहओ वि-पक्खवायं वहइ तंमि ॥ ९१ ॥

(टीका)

विधिसारं विधिप्रधानमेव सेवतेनुतिष्ठति श्रद्धालुः श्रद्धागुणवान् शक्तिमान् सामर्थ्योपेतः सन्ननुष्ठानं प्रत्युपेक्षणैषणादिकं—श्रद्धालुत्वस्यान्यथानुपपत्तेः

यदि पुनः शक्तिमान्नस्यात्ततः कावार्तेत्याह.

द्रव्याण्याहारादीन्यादिशब्दात् क्षेत्रकालभावाः परिगृह्यंते—तेषां दोषः प्रतिकूलता—तेन निहतोपि गाढपीडितोपि पक्षपातं भावप्रतिबंधं वहति धारयति तस्मिन्नेव विध्यनुष्ठानएव—सावधारणत्वाद्वाक्यस्येति.

મૂળનો અર્થ.

શ્રદ્ધાળુ પુરૂષ શક્તિમાન્ હોય, ત્યાં લગણજ વિધિપૂર્વક અનુષ્ઠાન કરે છે, અને જો દ્રવ્યાદિકના દોષથી તેમ કરતાં અટકે, તોપણ પક્ષપાત તો વિધિ તરફજ રાખે છે. (૯૧)

ટીકાનો અર્થ.

વિધિસાર એટલે વિધિપ્રધાનજ સેવે એટલે કરે, કોણ ? તો કે શ્રદ્ધાળુ એટલે શ્રદ્ધાવાન્ હોય, તે શક્તિવાન્ એટલે સમર્થ હોય તો, શું સેવે ? તે કહે છે. અનુષ્ઠાન એટલે પ્રત્યુપેક્ષણા તથા ગવેષણાદિક ક્રિયા, નહિ તો શ્રદ્ધાળુપણું સિદ્ધ થાય નહિ.

જો કદાચ શક્તિમાન્ ન હોય, તો કેમ કરે છે તે કહે છે કે, દ્રવ્ય એટલે આહાર વગેરે અને આદિ શબ્દથી ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવ લેવાં. તેમની પ્રતિકૂળતાથી ખુબ પીડાયો થકો, પણ વિધિવાળા અનુષ્ઠાનમાંજ પક્ષપાત એટલે ભાવ રાખે.

कथं पुनरनुष्ठानाभावे पक्षपातसंभव इत्याह.

(मूलं)

निरुओ भुञ्जरसन्नू-किंचि अवत्थं गओ असुहमन्नं ।
भुंजंतंमि न रज्जइ-सुहभोयणलालसो धणियं ॥ ९२ ॥

(टीका)

नीरुजोज्वरादिरुजारहितो भोज्यानि खंडखाद्यादीनि तेषारसभास्वादविशेषं जानातीति भोज्यरसज्ञः कामप्यवस्थां दुःकालदारिद्र्यादिदशांगतः प्राप्तः सन्नशुभमनिष्टमन्नं भोजनं भुंजानो न तस्मिन्नशुभान्ने रंजयति गृद्धिमुपैति.

तथाहि,

संभवत्येतत् कदाचित्,

અનુષ્ઠાન ન કરે, તો પક્ષપાત કેમ સંભવે ? તે કહે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

નિરોગી, રસજ્ઞ કંઈ અધમ અવસ્થા પામતાં અશુભ અન્ન ખાએ તો, તેમાં તે રાજી રહેતો નથી, પણ તેને ખાસ કરીને શુભ ભોજનની લાલસા રહે છે. [૯૨]

ટીકાનો અર્થ.

નીરુજ એટલે જ્વરાદિ રોગ રહિત હોઈ, ખાંડ, ખાદ્ય વગેરા ભોજ્ય વસ્તુઓના રસનો જાણુ પુરૂષ કોઇ દુઃકાળ કે, દારિદ્ર્ય વગેરે અવસ્થામાં અનિષ્ટ અન્ન ખાતાં પણ તેમાં ગૃદ્ધિ નથી પામતો.

તે આ રીતે કે, કદાચ એમ બને છે ખરૂં કે સારાં ભોજન ખાનારો માણસ

सुहपत्तलालिओविहु-दुक्कालदरिद्दभिड्डुओ पुरिसो ।
भक्कइयभरुट्टाई-भुंजइ तह कंडुयं कंटिं ॥ १ ॥
कडुयरसं व गुयारं-अरणिदलाइं कुडिंङ्गराईयं ।
भुंजइ जणो छुहत्तो-तरुछल्ली हिल्लिञ्जिल्लाइ [त्ति]

नचासौ तेषु गृद्धिमाधत्ते शुभभोजनलालसो विशिष्टाहारलंपटो-लंघयाम्येतां कुदशां ततः सुभिक्षमप्राप्य पुनरपि शोभनमाहारंभोक्ष्ये इति मनोरथवान् धणियंति बाढमिति.

एवं दृष्टांतमभिधाय दार्ष्टांतिकयोजनामाह—

[मूलं]

इय सुद्धचरणरसिओ-सेवंतो दव्वओ विरुद्धंपि ।
सद्धागुणेण एसो-न भावचरणं अइक्कमइ ॥ ९३ ॥

પણ દુકાળ કે દરિદ્રતામાં સપડાતાં ભાખરી, ભરડકા, કંકુ, કંટી, કડવો ગુવાર, અરણિનાં પાંદડાં, કુલિંજર વગેરે તથા ઝાડની છાલ, અને લીલી ઝિલ વગેરે ભૂખે મરતાં ખાય, તોપણ તે તેઓમાં ગૃદ્ધિ નથી પામતો, કિંતુ શુભ ભોજન લાલસ એટલે વિશિષ્ટ આહારમાં લંપટ થઇનેજ રહે છે. અર્થાત્ આ દશા ઉલ્લંઘું, તો સુભિક્ષમાં ફરીને સારો આહાર ખાઇશ, એવા મનોરથને અતિશયપણે કરતો રહે છે.

આ રીતે દ્રષ્ટાંત કહીને, હવે દાર્ષ્ટાંતિકની યોજના કહે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

એ રીતે શુદ્ધ ચારિત્રનો રસિક પુરૂષ કદાચ દ્રવ્ય થકી કંઈ વિરૂદ્ધ વાતને પણ સેવતો હોય, તોપણ શ્રદ્ધાના ગુણથી તે ભાવ ચારિત્રને અતિક્રમે નહિ. (૯૩)

(ટીકા)

इत्येवं कुभक्तभोगदृष्टांतेन श्रद्धचरणरसिको निष्कंलकसंयमपालनोत्साहवान् सेवमानो द्रव्यतो बाह्यवृत्त्याविरुध्धमागमनिषिद्धं नित्यवासादिकं–अपिशब्दादेकाकित्वमपि–श्रद्धागुणेन संयमाराधनलालसत्वपरिणामेन न नैव भावचरणं पारमार्थिकचारित्रमतिक्रामति अतिचरति, श्रीसंगमसूरिवत्.

तथाओक्तं.

दव्वाइया न पायं–सोहणभावस्सहुंति विग्घकरा ।
बज्झकिरियाउ वि तहा–हवंति लोएवि सिद्धमिणं ॥ १ ॥
दइयाकन्नुप्पलताडनं व सुहडस्स निव्वुइं कुणइ ।
पहुणो आणाए पत्थियस्स कुंडंपि लग्गंतं ॥ २ ॥
जहचेव सदेसंपि–तह परदेसेवि चलइ नहु सत्तं ।

ટીકાનો અર્થ.

એ રીતે એટલે ખરાબ ભોજન ખાવાના દ્રષ્ટાંતે કરી શુદ્ધ ચરણ રસિક એટલે નિષ્કલંક સંયમ પાળવામાં ઉત્સાહવાળો પુરૂષ દ્રવ્યથી એટલે બાહ્ય વૃત્તિથી વિરૂદ્ધ એટલે આગમ નિષિદ્ધ નિત્ય વાસાદિક તથા અપિ શબ્દથી એકાદિપણાને સેવતો થકો, પણ શ્રદ્ધાના ગુણથી એટલે સંયમ આરાધવામાં લાલસપણાનાં પરિણામથી કરીને ભાવચરણને એટલે પારમાર્થિક ચારિત્રને અતિક્રમે નહિ શ્રી સંગમસૂરી માફક.

જે માટે કહેલું છે કેઃ—

શોભન ભાવવાળાને પ્રાયે દ્રવ્યાદિક વિઘ્નકારી થતાં નથી, તેમજ બાહ્ય ક્રિયા પણ સમજવી. લોકમાં પણ આવું કહેવાય છે કે—[૧]

સ્વામિની આજ્ઞાએ ચાલતા સુભટને કાંટો લાગે, તોપણ તે સ્ત્રીના મારેલા કર્ણોત્પલની માફક તેને આનંદિત કરે છે. [૨] ધીર પુરૂષોએ મનવંચ્છિત કામ શરૂ

मणवंछियंमि कज्जे-आरब्धे धीरपुरिसाणं ॥ ३ ॥
कालोविहु दुब्भिक्खाइ-लक्खणो नखलु दाणसूराणं ।
भिंदइ आसयरयणं-अवि अहिययरं विसोहेइ ॥ ४ ॥
एवंचिय भव्वस्सवि-चरित्तिणो नहि महाणुभावस्स ।
सुहसामायारिगओ-भावो परियत्तइ कयावि ॥ ५ ॥

किंच,

जो होज्जउ असमत्थो-रोगेण व पिल्लिओ झुरियदेहो ।
सव्वमवि जहाभणियं—कयाइ न तरिज्ज काउं जो ॥ ६ ॥
सोविय नियपरक्कम-ववसायधिईबलं अगूहंतो ।
मुत्तूण कूडचरियं-जई जयंतो अवस्सजई ॥ ७ ॥ [इति]

श्री संगमसूरिकथा पुनरेवं.

इह सिरिसंगमसूरी-दूरीकयसयलगुरुपमायभरो । अन्नाणदारुदारुण-

કરતાં જેમ સ્વદેશમાં તેમ પરદેશમાં પણ તેમની હિમ્મત હરાતી નથી. (૩) વળી દુર્ભિક્ષાદિ કાળ પણ દાનશૂર જનોના આશયરૂપ રત્નને ભેદી શકતો નથી, કિંતુ અધિક વિશુદ્ધ કરે છે. [૪] આજ રીતે મહાનુભાવ ભવ્ય ચારિત્રવંત પુરૂષને શુભ સામાચારી તરફ રહેલો ભાવ કદાપિ બદલી જતો નથી. (૫)

વળી જે રોગે પીડાયો, અથવા વૃદ્ધાપણાને લીધે અસમર્થ થઇ પડે, અને તેથી જેમ કહેલું છે, તેમ બધું કરી ન શકે, તોપણ તે જો પોતાના પરાક્રમ, ઉદ્યોગ, ધીરજ અને બળને નહિ છુપાવતાં, અને ઢોંગ નહિ કરતાં યતનાવાન્ રહે તો, તેને અવશ્ય યતિ ગણવો. [૬]

શ્રી સંગમસૂરિની કથા આ રીતે છે:—

ઇહાં શ્રી સંગમસૂરિ હતા, તેઓ સઘળા ભારે પ્રમાદને દૂર કરનાર હતા, અજ્ઞાન

दवहुयवहसरिससमयधरो ॥ १ ॥ पइसमयमुत्तरुत्तर—विसुध्धपरिणामहणियपावोहो । नगनगरगामपमाइसु—नवकप्प पकप्पियविहारो ॥ २ ॥

अइतिव्वपवरसद्धा—वसपरिणय सुद्धभावचारित्तो । जंघाबलपरिहीणो—कुल्लागपुरंमि विहियठिई ॥ ३ ॥ वट्टंते दुब्भिक्खे—कयजणदुक्खे कयावि सो भयवं । पवयणमाया परिपालणुज्जयं उज्जयविहारं ॥ ४ ॥ आहिंडिय बहुदेसं—अवधारिय सयलदेस बहुभासं । सीहं नामणगारं—गणाहिवत्ते निरूवेइ ॥ ५ ॥ भणइ य जइवि महायस—सयमवि तं पुणसि सयलकरणिज्जं । आयारु त्ति विचिंतिय—इय वुच्चसि तहवि अम्हेहिं ॥ ६ ॥ उल्लसिरपवरसद्धो—चरणभरं दुद्धरं धरिज्ज सया । सीयंतं सीसगणं—मिउ महुरगिराइ सारिज्जा ॥ ७ ॥

જઓ—

जीहाएवि लिहंतो—न भद्दओ जत्थ सारणा नत्थि । दंडेणवि

રૂપ લાકડાંને બાળવા દાવાનળ સમાન શાસ્ત્રના ધરનાર હતા. (૧) સમય સમય પ્રત્યે વિશુદ્ધિ થતા પરિણામથી પાપ સમૂહને હણનાર હતા, અને ગામ, નગર, પર્વત, વજેરામાં નવકલ્પી વિહાર કરતા હતા. [૨]

તે અતિ તીવ્ર પ્રવર શ્રદ્ધાના યોગે શુદ્ધ ચારિત્રના પરિણામવાળો છતાં, પણ જંઘાબળથી હીન થયો થકો કુલ્લાગપુરમાં સ્થિરવાસી રહ્યા. (૩) હવે ત્યાં લોકોને દુઃખ કરનાર દુકાળ પડયો, ત્યારે તે ભગવાને પ્રવચન માતા પાળવામાં ઉદ્યત ઉદ્યતવિહારી બહુ દેશ ફરીને સકળ દેશના અનેક ભાષાના જાણુ થએલા સિંહ નામના અનગારને ગણાધિપતિપણું સોંપ્યું. [૪-૫] બાદ તે તેમને કહેવા લાગ્યા કે, હે મહાશય ! તું પોતેજ સઘળું કર્ત્તવ્ય જાણે છે, તોપણ ચાલતી રીત પ્રમાણે અમે તને આ પ્રમાણે ભલામણ કરીએ છીએ. (૬) તારે હમેશાં ઉલ્લસતી પ્રવર શ્રદ્ધાથી ચારિત્રનો દુર્ધર ભાર ઉપાડવો, તથા સીદાતા શિષ્યોને કોમળ અને મીઠી વાણીથી સંભાળી લેવા. [૭]

જે માટે કહેલું છે કે, જ્યાં સારણા ન હોય, તે જીભે કરી પંપાળતો હોય, તોપણ ભલો

તાડંતો–સ ભદ્દઓ સારણા જત્થ ॥ ૮ ॥ જહ સીસાઇં નિકંતઇ—કોઈ સરણાગયાણ જંતૂણં । એવં સારણિયાણં—આયરિઉ અસારઓ ગચ્છે ॥ ૯ ॥

તથા

દવ્વાઇ અપડિબદ્ધો–અમમો વિહરિજ્જ વિવિહદેસેસુ । અનિયયવિ-હારયા જં–જઈણ સુત્તે વિણિદ્દિટ્ઠા ॥ ૧૦ ॥

તથાહિ

અનિએયવાસો સમુદાણ ચારિયા—અન્નાયઉંછં પયરિક્કયા ય । અપ્પોવહી કલહવિવજ્જણા ય–વિહારચરિયા ઇસિણં પસત્થા ॥ ૧૧ ॥ ઇચ્ચાઇ કહિય વુત્તો–સો એવં વચ્છ, વિહર અન્નત્થ । મા ઓમે ઇત્થ ઠિઓ–સીસગણો એસ સીઇજ્જા ॥ ૧૨ ॥ એગાગીવિ અહં પુણ–પહીણ-જંઘાબલો અબલદેહો । અનલો વિહરિઉ મન્નત્થ—તો ઇહં ચેવ ઠાઇસ્સં

નહિ, અને જ્યાં સારણા છે, તે લાકડીથી માર મારતો હોય, તોપણ સારો. (૮) જેમ કોઇ શરણાંગત જંતુઓનાં માથાં કાપે, તેમ ગચ્છમાં સંભારવા યોગ્ય શિષ્યોની સંભાળ નહિ લે તો, આચાર્ય પણ તેમનાં માથાંજ કાપતો જાણવો. (૯) તથા તું દ્રવ્યાદિકમાં અપ્રતિબદ્ધ રહી મમતા છોડી વિવિધ દેશમાં વિચરજે, કેમકે સૂત્રમાં યતિઓને અનિયત વિહાર કરવો કહેલ છે. [૧૦] તે આ રીતે કે, અનિત્ય વાસ, સમુદાન ચર્યા [ગોચરી], ઉંચ આ-હાર, નિર્મમપણું, અલ્પ ઉપધિ અને કલહ વિવર્જન, એ ઋષિઓની પ્રશસ્ત વિહાર-ચર્યા છે. [૧૧]

ઇત્યાદિક ભલામણ આપીને તેમણે તેને કહ્યું કે, હે વત્સ ! તું અન્ય સ્થળે વિચર, કેમકે નહિ તો અહીં અવમ કાળમાં રહેતાં આ શિષ્યો સીદાઇ પડશે. (૧૨) અને હું જંઘાબળથી રહિત અને દુર્બળ શરીરવાળો હોવાથી બીજા સ્થળે ચાલવા અશક્ત છું; માટે એકલો અહીંજ રહીશ (૧૩) એમ કહીને તેમણે મુનિઓને કહ્યું કે,

॥ ૧૩ ॥ इय भणिय मुणी वुत्ता–वच्छा सच्छासया सयाकालं । कुल-वहुनाएण इमं–मा मुंचिज्जह कयावि तुमे ॥ १४ ॥ तिन्नुच्चिय भव-जलही–एय पसाया सुहेण तुब्भेहिं । संपइ इमिणा सद्धिं–कुणह विहारं महाभागा ॥ १५ ॥ इह सुणिय सुमुणिवइणो—ते मुणिणो सूरिचरण ठवियसिरा । मुंचंता गुरुविरहुत्थ–सोय उप्पन्नअंसुभरं ॥ १६ ॥

पडिपुन्नमन्नुभररूद्ध–कंठउद्दिठत गग्गरगिरिल्ला । गुरूवयणं पडि-कूखिउ–मचयंता दुक्खसंतत्ता ॥ १७ ॥ कहमवि नमिउं गुरुणो–अवरा-हपए खमाविउं नियए । ओमाइ दोसरहिए–देसे पत्ता विहारेण ॥ १८ ॥ संगम गुरूवि खित्तं–नवभागी काउ कायनिरविक्खो । वीसुं वसहीगोयर–वियारभूमाइसु जएइ ॥ १९ ॥ सुद्धिक्खे गुरूपासे—कयावि सीहेण पेसिओ दत्तो । सो पुव्ववसहि संठिय–सूरिं दट्ठुं विचिंतेइ ॥ २० ॥

હે વત્સો ! તમે પણ હમેશાં સ્વચ્છ આશયવાળા રહીને કુળવધૂના પ્રમાણે આ ગુરૂને કયારે પણ છોડતા ના. (૧૪) એના પસાયથી તમારે સંસારસમુદ્ર સેહેલથી તરેલોજ માનવો; માટે હે મહાભાગો ! તમે હાલ એની સાથે વિહાર કરો. [૧૫] આ રીતે તે આચાર્યનાં વચન સાંભળીને તે મુનિઓ તેમના ચરણે મસ્તક સ્થાપી, ભારે વિરહથી થતા શોકને લીધે આંસુઓ પાડવા લાગ્યા. (૧૬)

તે મુનિઓ ભારે શોકને લીધે રૂંધાઈ ગયલાં ગળાંથી ગદ્‌ગદ્‌ વાણી બોલતા થકા દુઃખથી તપતા થકા પણ ગુરૂનું વચન ઉથલાવી શક્યા નહિ. (૧૭) તેઓ ગુરૂને નમીને પોતાના અપરાધ ખમાવી, જેમ તેમ કરીને અવમ [અશિવ] વગેરે દોષથી રહિત દેશમાં આવી પહોંચ્યા. [૧૮] પાછળ સંગમસૂરિ પણ શરીરમાં નિરપેક્ષ રહી, તે ક્ષેત્રના નવ ભાગ કરી, જૂદી જૂદી વસતિ, ગોચર ભૂમિ અને વિચાર ભૂમિમાં યતનાથી રહેવા લાગ્યા. (૧૯) હવે સિંહસાધુએ કોઈ વેળા દત્ત નામના સાધુને શુદ્ધિ ખાતર ગુરૂ પાસે મોકલાવ્યો. તે પ્રથમની વસતિમાંજ રહેલા ગુરૂને જોઈ વિચારવા લાગ્યો કે, કારણને લીધે જૂદા જૂદા

कारणवसा न कीरइ—खित्ते अवरावरे जइ विहारो । नवनववसहि विहारो-कीस एएहिं परिचत्तो ॥ २१ ॥

ता एस सिढिल चरणो-खणंपि न खमो इमेण संवासो । एवं चिंतिय वीसुं-समीववसहीइ सो ठाइ ॥ २२ ॥ भिक्खासमए गुरुणा—सह हिंडंतो विसिट्ठ माहारं । दुब्भिक्खवसा अलहंतओ य जाओ कसिणवयणो ॥ २३ ॥ तं तह निएवि सूरी-कम्मिवि ईसरगिहे गओ तत्थ । रेवइदोसेणेगो सया रुयंतो सिसू अत्थि ॥ २४ ॥ सो दाउं चप्पुडियं—गुरुणा भणिओ य बाल मा रूयसु । गुरुतेयं असहंती—झडत्ति सा रेवई नट्ठा ॥ २५ ॥ जाओ बालो सुत्थो-तज्जणगो गहिय मोयगे पत्तो । गुरुणा करुणानिहिणा-दवाविया तेउ दत्तस्स ॥ २६ ॥

अह मुणिपहुणा भणियं-तं गच्छसु दत्त संपयं वसहिं । अहयंपि आगमिस्सं-पडिपुन्नं काउ समुयाणं ॥ २७ ॥ सड्ढगिह मेग मिमिणा—

ક્ષેત્રમાં, જો કે વિચરી નહિ શકાય, તોપણ નવી નવી વસતિઓ બદલવાનું કાં એમણે છોડી દીધું છે ? [૨૦-૨૧]

માટે આ શિથિલ ચારિત્રવાળો લાગે છે, એથી કરીને એવા સાથે ક્ષણવાર પણ સહવાસ રાખવો ન જોઇએ, એમ વિચારી નજીકની વસતિમાં તે જૂદો રહેવા લાગ્યો. [૨૨] બાદ ભિક્ષા વેળાએ તે ગુરૂ સાથે ભમતો હતો, પણ દુર્ભિક્ષના યોગે સારો આહાર નહિ મળવાથી તેનું મુખ કરમાઇ કાળું થવા લાગ્યું. [૨૩] તેને તેવો થએલો જોઇ, આચાર્ય કોઇક પૈસાદારને ઘરે ગયા, ત્યાં તેનો એક છોકરો રેવતીના દોષથી હમેશાં રડતો હતો. તેને ગુરૂએ ચપટી વગાડી કહ્યું કે, હે બાળક ! રો માં. ત્યારે ગુરૂનું તેજ નહિ સહી શકતી રેવતી ઝટ દઇને નાશી. એટલે તે બાળક સ્વસ્થ થયો; તેથી તેનો બાપ લાડુ લઇ આવ્યો, તે કરૂણાનિધિ ગુરૂએ દત્તને દેવરાવ્યા. (૨૪-૨૫-૨૬)

હવે ગુરૂએ કહ્યું કે, હે દત્ત ! તું હવે અપાસરે જા, અને હું ગોચરી પૂરી કરીને આવું છું. (૨૭) ત્યારે દત્તે વિચાર્યું કે, લાંબા કાળે એણે મને ફક્ત એક શ્રદ્ધા-

मिराउ मह दंसियं सयं अहुणा । सेसेसु गमी दत्तो–इय चिंतंतो गओ वसहिं ॥ २८ ॥ गुरुणोवि अंतपंतं–गहिउं सुचिरेण आगया वसहिं । पन्नगबिल नाएणं–भुंजंति तयं समयविहिणा ॥ २९ ॥ आवस्सय वेलाए–आलोइय सूरिणो समुवविट्ठा । सो निसेयंतो गुरुणा–आलोइसु संम मिय वुत्तो ॥ ३० ॥ स भणइ तुब्भेहिंचिय—सह परिभमिओ म्हि किमिह विडयेपि । आह गुरू सिसु विसयं–सुहुमं नणु धाइपिंडं ति ॥ ३१ ॥

दत्तो तओ दुरप्पा–अणप्पसंकप्पकप्पणाभिहओ । बिंबुक्कडकडुयागि-राइ मुणिवरंपइ इमं भणइ ॥ ३२ ॥ राईसरिसवमित्ताणि–परच्छिद्दाणि पिच्छसि । अप्पणो बिल्लमित्ताणि–पासंतोवि न पाससि ॥ ३३ ॥ इय भणिय गओ एसो–नियवसहिं तयणु तस्स सिक्खत्थं । पुरदेवयाइ सिग्घं–विउव्वियं दुद्दिणं गरुयं ॥ ३४ ॥ फुडफुट्टमाणबंभंड–भंडरवविरसज-

---

वान् श्रावकनुं घर बताव्युं छे, अने पोते हवे बीजाओने त्यां जनार लागे छे, एम एम चिंतवतो थको अपासरे आव्यो. [२८] बाद गुरु अंतःप्रांत आहार लइने घणा मोडा त्यां आव्या. तेओए शास्त्रनी विधिए सर्प जेम बिलमां पेसे, ते रीते तेने खाधुं. [२९] हवे आवश्यक वेळाए आलोयणा लइने गुरु बेठा, एटले ते पण बेसवा लाग्यो. त्यारे गुरुए कहुं के, बरोबर आलोयणा कर. (३०) त्यारे ते बोल्यो के, तमारी साथेज फर्यो छुं, एटले शुं जणावुं ? गुरु बोल्या के, बाळकने कारणे मळेलुं ते सूक्ष्म धात्रीपिंड छे, तेने आलोव. (३१)

त्यारे दुरात्मा दत्त अनेक संकल्प अने कल्पनाओ करीने लींबडा जेवी कडवी वाणीथी गुरु प्रत्ये कहेवा लाग्यो के, तुं पराया राइ अने सरसव जेटला दोष जुवे छे, पण पोताना बीलुफळ जेवडा दोष जोतो थको पण नथी जोइ शकतो ? [३२–३३] एम कहीने ते पोताना मुकामे गयो. बाद तेने शिक्षा आपवा माटे नगरनी अधिष्ठायक देवीए ते दिवसे धमधोर दिवस बनाव्यो. तेमां ब्रह्मांडरूप भांड जाणे फुटतुं न होय, ते माफक भयंकर गर्जारव थवा लाग्यो. ते सांभळीने भयथी बोलतां अचकी पडतो थको ते गुरुने

लहरारावं । सो निसुणंतो भयभर-खलंतवयणो भणइ सूरिं ॥ ३५ ॥ भयवं बीहेमि अहं-आह गुरु एहि मम सयासंमि । स भणइ तिमिरभरेणं-दिसिविदिसिं नेव पिच्छामि ॥ ३६ ॥

दीवसिहं व जलंतिं-नयखेलेणं नियंगुलिं काउ । दंसेऊणय गुरुणा-सो वुत्तो वच्छ एहि इओ ॥ ३७ ॥ तं दट्ठु स दुट्ठप्पा-जंपइ दीवोवि अत्थि किं मिमस्स ? । तो पच्चक्खी होउं-एवं वुत्तो स देवीए ॥ ३८ ॥ हा दुट्ठसेह निस्नेह-देहगेहाइमुक्कपडिबंधे । मुणिनाहंमि इमंमिवि-एवं चिंतेसि निल्लज्ज ॥ ३९ ॥ वसहिविहारकमेणं-पुणोवि इत्थ दिट्ठयं सुगुरु मेयं । पाविट्ठ दुट्ठधम्मिट्ठ—मन्नसी सिढिलचारित्तं ॥ ४० ॥ हा अंतपंतभोयण-परंपि कप्पेसि मुद्ध रसगिद्धं । धिद्धी लद्धिसमिद्धंपि दीवजुत्तं पयंपेसि ॥ ४१ ॥

दव्वाइदोसवसओ-वीयपयठिएवि सुद्धसद्धाए । भावचरित्तपवित्ते-

કહેવા લાગ્યો કે, હે ભગવન્! હું બીહું છું. ત્યારે ગુરૂ બોલ્યા કે, બીતો હોય તો મારી પાસે આવ. તે બોલ્યો કે, અંધારામાં કઇ દિશા અને કઇ વિદિશા છે, તે જોઇ શકતો નથી. [૩૪-૩૫-૩૬]

ત્યારે ગુરૂએ પોતાના શ્લેષ્મથી દીવાની શિખા માફક પોતાની આંગળીને જળકતી કરીને તે બતાવી કહ્યું કે, હે વત્સ ! આ બાજુ આવ. [૩૭] તે જોઇને તે દુષ્ટાત્મા બોલ્યો કે, શું એના પાસે દીવો પણ છે કે ? ત્યારે દેવી પ્રત્યક્ષ થઇને તેને આ રીતે કહેવા લાગી— (૩૮) અરે નિઃસ્નેહી દુષ્ટ શિષ્ય ! દેહ ગેહાદિકમાં પ્રતિબંધ છોડનાર આ મુનિનાથની બાબતમાં પણ તું નિર્લજ્જ થઇ એવું ચિંતવે છે કે ? [૩૯] વળી વસતિ બદલવાના ક્રમે કરી ફરીને બહાં રહેલા ગુરૂને અરે પાપિષ્ટ, અને ભુંડી રીતે ધર્મિષ્ટ બનેલા ! શું શિથિળ ચારિત્રવાન્ માને છે કે ? અરે ! અંતઃપ્રાંત ખાનારને તું રસગૃદ્ધ કલ્પે છે ? છી, છી, અરે લબ્ધિવંતને દીવા સહિત છે, એમ બોલે છે કે ? (૪૦-૪૧)

किह अवमन्नसि इमे गुरुणो ? ॥ ४२ ॥ इय अणुसिट्ठो सो देवयाइ संजायगरुय अणुतावो । गुरुपयलग्गो खामइ-पुणोपुणो नियय मवराहं ॥ ४३ ॥ आलोइयाइयारो-दत्तो गुरुदत्तविहियपच्छित्तो । विणउज्जुओ सुनिम्मल-चारित्ताराहगो जाओ ॥ ४४ ॥ संगमसूरीवि चिरं-विहिसेवा-वल्लि पल्लवणमेहो । निरुवमसमाहिजुत्तो-मुगइं पत्तो गयकिलेसो ॥ ४५ ॥

इत्थं विशुद्धविधिसेवनतत्परस्य-
श्रीसंगमस्यसुगुरोश्चरितं निशम्य ।
द्रव्यादिदोषनिहता अपि साधुलोकाः-
श्रद्धां विधत्त चरणे प्रवरां पवित्रे ॥ ४६ ॥

॥ इति संगमसूरिकथा ॥

इत्युक्तं विधिसेवास्वरूपं प्रथमं श्रद्धालक्षणं संप्रत्यतृप्तिस्वरूपं द्वितीय-मभिधित्सुराह—

દ્રવ્યાદિ દોષે કરીને બીજા પદમાં રહેલા છતાં શુદ્ધ શ્રદ્ધાથી ભાવ ચારિત્રે કરી પવિત્ર આ ગુરૂની કેમ અવગણના કરે છે ? (૪૨) આ રીતે દેવતાએ તેને શિક્ષા આપતાં તે ભારે પશ્ચાતાપ પામી ગુરૂના પગે પગે પડી વારંવાર પોતાનો અપરાધ ખમાવવા લાગ્યો. (૪૩) તેણે અતિચાર આલોવ્યા, એટલે ગુરૂએ પ્રાયશ્ચિત આપ્યું, તે કરીને દત્ત મુનિ વિનયમાં ઉદ્યુક્ત રહી નિર્મળ ચારિત્રનો આરાધક થયો. [૪૪] સંગમસૂરિ પણ ચિરંકાળ વિધિ સેવારૂપ વેલડીને વધારવા મેઘ સમાન રહીને નિરૂપમ સમાધિથી કલેશ ટાળી સુગતિએ પહોંચ્યા. (૪૫) એ રીતે વિશુદ્ધ વિધિ સેવવા તત્પર શ્રી સંગમસૂરિનું ચરિત્ર સાંભળીને દ્રવ્યાદિક દોષથી હણાયા છતાં, પણ હે સાધુ જનો ! તમે પવિત્ર ચારિત્રમાં ઉત્તમ શ્રદ્ધા રાખો. [૪૬]

આ રીતે સંગમસૂરિની કથા છે.

એ રીતે વિધિ સેવારૂપ શ્રદ્ધાનું પહેલું લક્ષણ કહ્યું, હવે અતૃપ્તિરૂપ બીજું લક્ષણ કહેવાની ઇચ્છાથી કહે છેઃ—

॥ મુલં ॥

તત્તિં નચેવ વિંદઇ–સદ્ધાજોગેણ નાણચરણેસુ ।
વેયાવચ્ચતવાઇસુ–જહવિરિયં ભાવઓ જયઇ ॥ ૯૪ ॥

ટીકા.

તૃપ્તિં સંતોષં કૃતકૃત્યોહમેતાતૈવેત્યેવંરૂપં ન ચૈવેતિ–ચ શબ્દસ્ય પૂરણત્વા–ન્નૈવ વિંદતિ પ્રાપ્નોતિ શ્રદ્ધાયા યોગેન સંબંધેન જ્ઞાનચરણયોર્વિષયે જ્ઞાને પઠિતં યાવતા સંયમાનુષ્ઠાનં નિર્વહતીતિ સંચિંત્ય ન તદ્વિષયે પ્રમાદ્યતિ, કિંતર્હિ–નવનવશ્રુતસંપદુપાર્જને વિશેષતઃ સોત્સાહોભવતિ.

તથાચોક્તં.

જહ જહ સુય મવગાહઇ–અઇસયરસપસરસંજુય મપુવ્વં,
તહ તહ પલ્હાઇ મુણી–નવનવસંવેગસદ્ધાએ.

ભળનો અર્થ.

જ્ઞાન અને ચરણમાં શ્રદ્ધાના યોગે કરીને કદાપિ તૃપ્તિ ન પામે, અને વૈયાવૃત્ય તથા તપ વગેરેમાં પોતાના વીર્ય પ્રમાણે યત્ન કરે. (૯૪)

ટીકાનો અર્થ.

તૃપ્તિ એટલે આટલેથી હું કૃતકૃત્ય છું, એવા રૂપનો સંતોષ શ્રદ્ધાના કારણે જ્ઞાન અને ચારિત્રના વિષે નજ પામે. ત્યાં જેટલાથી સંયમાનુષ્ઠાન ચાલે, તેટલું મેં ભણી લીધું છે, એટલે બસ છે, એમ ચિંતવીને જ્ઞાનમાં પ્રમાદી નહિ થાય, કિંતુ નવી નવી શ્રુત સંપદા ઉપાર્જવામાં વિશેષે કરીને ઉત્સાહવાળો રહે.

જે માટે કહેલું છે કે—

જેમ જેમ અતિશય રસ પસરવાની સાથે અપૂર્વ શ્રુત અવગાહે, તેમ તેમ મુનિ નવનવા સંવેગ અને શ્રદ્ધાથી રાજી થયા કરે.

तथा

अत्थो जस्स जिणुत्तमेहि भणिओ जायंमि मोहक्खए—
बध्धं गोयममाइएहि सुमहाबुध्धीहि जं सुत्तओ,
संवेगाइगुणाण बुध्धिजणगं तित्थेसनामावहं—
कायव्वं विहिणा सया नवनवन्नाणस्स संपज्जणं.

तथा चारित्रविषये विशुध्धविशुध्धतरसंयमस्थानावाप्तये सद्भावनासारं सर्वमनुष्ठानमुपयुक्तमेवानुतिष्ठति–यस्मादप्रमादकृताः सर्वेपि साधुव्यापारा उत्तरोत्तरसंयमकंडकारोहणेन केवलज्ञानलाभाय भवंति.

तथाचागमः

जोगे जोगे जिणसासणंमि दुक्खक्खया पउंजंते,
इक्किक्कंमि अणंता–वट्टंता केवली जाया.

तथा वैयावृत्त्यतपसी प्रतीते—आदिशब्दात् प्रत्युपेक्षणाप्रमार्जनादि

વળી જેનો અર્થ મોહક્ષય થયા બાદ જીનેશ્વર ભગવાને કહ્યો છે, અને જે સૂત્રથી ગૌતમાદિક મહા બુદ્ધિવંતોએ ગૂંથ્યું છે, તે સંવેગાદિક ગુણોની બુદ્ધિ ઉપજાવનાર, અને તીર્થંકર નામ કર્મ બાંધવાનું કારણભૂત, નવનવા જ્ઞાનનું સંપાદન વિધિપૂર્વક હમેશ કરતા રહેવું જોઇએ.

વળી ચારિત્રની બાબતમાં વિશુદ્ધ વિશુદ્ધતર સંયમ સ્થાન પામવા માટે સદ્ભાવનાપૂર્વક સઘળું અનુષ્ઠાન ઉપયોગ સહિતજ કરે. કારણ કે, અપ્રમાદે કરેલા સાધુના સઘળા વ્યાપાર ઉત્તરોત્તર સંયમ કંડકે ચડાવીને કેવળ જ્ઞાન પમાડે છે. જે માટે આગમમાં કહેલું છે કેઃ— જિન શાસનમાં દુઃખને ખપાવવા કરવામાં આવતા દરેક યોગમાં વર્ત્તતાં અનંતા કેવળી થયા છે.

વળી વૈયાવૃત્ય અને તપ તો પાવરાજ છે, તથા આદિ શબ્દથી પ્રત્યુપેક્ષણ પ્રમાર્જન વગેરે લેવાં, તે બધામાં યથા વીર્ય એટલે સામર્થ્ય પ્રમાણે ભાવથી એટલે સદ્ભાવપૂર્વક પ્રયત્ન કરે. અચળ મુનીશ્વરની માફક.

परिग्रह-स्तेषु यथावीर्यं सामर्थ्यानुरूपं भावतः सद्भावसारं यतते प्रयत्नवान् भवति, अचलमुनीश्वरवत्.

तच्चरितं चैवं.

भयरहिए निभयपुरंमि-पुन्नजणविहियगरुयहरिसोवि । रायासि रामचंदो-सलक्खणो रामचंदु व्व ॥ १ ॥ तस्स गुरुगउरवपयं-अयलो नामेण अत्थि सामंतो । नयसच्च सोय सोडीरयाइगुणरयणरयणनिही ॥ २ ॥ कइयावि सो नरिंदो-सभागओ भूरिसारपरिवारो । दुक्ख भरसूइगाए-गिराइ पउरेहि इय भणिओ ॥ ३ ॥ देव न दीसइ चोरो-नय खत्तो नविय चरणसंचारो । केणवि तहवि मुसिज्जइ-अदिट्ठरूवेण पुरमेयं ॥ ४ ॥

तं सोउं कुविएणं-भणियं रन्ना अहो सुहडसंघा । किं कोवि तक्करं तं-निग्गहिउं मे समत्थु त्ति ? ॥ ५ ॥ जो किपि न विंति भडा-

---

અચળ મુનિનું ચારિત્ર આ રીતે છે:—

ભય રહિત નિર્ભયપુર નગરમાં પવિત્ર જનોને ભારે હર્ષ આપનાર રામચંદ્ર નામે નામે રાજા હતો, કે જે સલક્ષ્મણ [લક્ષ્મણ સહિત] રામચંદ્રની માફક સલક્ષણ (લક્ષણવંત) હતો. (૧) તેનો ભારે ગૌરવનું સ્થાન અચળ નામે સામંત હતો. તે ન્યાય, સત્ય, શૌચ, શૌંડીર્ય વગેરે ગુણ રત્નોનો રત્નાકર હતો. [૨] હવે એક વેળા તે ઘણા પરિવાર સાથે સભામાં બેઠો હતો, તેવામાં ભારે દુઃખની સૂચક વાણીથી તેને નગરલોકો કહેવા લાગ્યા કે, હે દેવ ! ચોર નથી દેખાતો, ખાતર પાડ્યું નથી દેખાતું, અને પગલાં પણ નથી દેખાતાં, છતાં કોઇ અદ્રષ્ટરૂપ આ નગરને લુંટે છે. (૩-૪)

તે સાંભળીને કોપેલા રાજાએ કહ્યું કે, અહો સુભટો ! તમારામાં કોઇ તે ચોરને પકડવા સમર્થ છે કે ? [૫] તેઓ કંઇ બોલ્યા નહિ, એટલામાં અચળ બોલ્યો કે, હે

ता अयलो आह देव महदेसु । आएसं नणु किंत्तिय—मित्तं एसो व-
राओ त्ति ॥ ६ ॥ रन्ना सहत्थतंबोल–दाणपुव्वं पयंपिओ स इमं ।
तह कुणसु भद्द सिग्घं–जह लब्भइ तक्करो एसो ॥ ७ ॥ जइ पक्खं तो
चोरं न लहेमि अहंवि सामि तो जलणं । इय काउ पइन्नं सो–विणि-
ग्गओ रायभवणाओ ॥ ८ ॥ परिभमिओ पुरमज्झे–सिंघाडगतिग चउ-
क्क माईसु । लद्धो न कोवि चोरो—नीहरिओ तयणु नयराओ ॥ ९ ॥

करकलियखग्गदंडो–निव्विडीकयपरियरो दढपइन्नो । सो रयणिपढ-
मपहरे–पत्तो कुंडाभिहमसाणे ॥ १० ॥ तत्थ अइकडुयकक्खड–रडंत घूय-
डकुडुंबदुप्पिच्छे । भल्लुक्कचक्करिमुक्क–पिक्कपिक्कारवेवरुद्दे ॥ ११ ॥ एग-
त्थ कालवेयाल–जालसंजणियकिलिकिलारावे । अन्नत्थ मुक्कपुट्टट्टहासपरि-
भमिरभूयउले ॥ १२ ॥ जा अक्खुहिओ अयलो–अयलो इव जाइ किं-
पि भूभागं । ता साहगगहणपरं–पिसाय मेगं स पिच्छेइ ॥ १३ ॥ तं

દેવ ! મને હુકમ આપો. એ રાંકને પકડવો, એમાં શું છે ? (૬) ત્યારે રાજાએ પો-
તાના હાથે તેને તાંબુલ આપીને કહ્યું કે, હે ભદ્ર ! તેમ કર, કે જેમ એ ચોર જલદી
મળી આવે. [૭] ત્યારે અચળે પ્રતિજ્ઞા કરી કે, જો એક પક્ષની અંદર ચોર નહિ
પકડું તો, મારે અગ્નિમાં પેસવું, એમ કહી તે રાજભુવનથી નીકળ્યો. [૮] તે શહે-
રમાં શૃંગાટક, ત્રિક, ચોક, વગેરા સ્થળે ભટકયો, પણ કોઇ ચોર મળ્યો નહિ, ત્યારે તે
નગરથી બાહેર નીકળ્યો. [૯]

તે હાથમાં તરવાર લઇ કમ્મર કસી દ્રઢ પ્રતિજ્ઞા લઇ રાતના પહેલા પહોરે
કુંડ નામના મ[illegible] આવ્યો [૧૦] ત્યાં કોઇક સ્થળે અતિ કટુક અને કર્કશ સ્વરે
ઘુવડોનાં [illegible] હતાં [illegible] કોઇક સ્થળે શીયાળનાં ટોળાં ચીંચીયારીઓ પાડતાં હતાં, કોઇક
સ્થળે કાગડા વેતાળો [illegible] કરતા હતા, અને કોઇક સ્થળે ભોકળા પેટે અટ્ટહાસ્ય
કરતી ભૂતાવળો ભમતી હતી (૧૧-૧૨) તેમાં અચળ [પર્વત]ની માફક ક્ષોભ્યા
વિના અચળ જેવો કોઇક આગળ ચાલ્યો કે, તેણે એક પિશાચને પોતાના સાધકને પકડતો

पइ भणइ महायस–साहगपुरिसं हणेसि किं एयं । आह पिसाओ इमिणा–पसाइओ हं दिणे सत्त ॥ १४ ॥

संपइ अइछुहिएणं–मए इमो मग्गिओ महामंसं । न तरइ दाउं खुद्दो–ता एयं लहु हणिस्सामि ॥ १५ ॥ परउवयारपहाणो–अयलो पबाह मुंच नर मेयं । तुह देमि महामंसं–अह मियं मन्नइ पिसाओ वि ॥ १६ ॥ तो छुरियाए छित्तुं–नियगमंसं स तस्स वियरेइ । असइ पिसाओ वि अहो अभुत्तपुव्वं ति जंपंतो ॥ १७ ॥ उक्कत्तिऊण जहजह–अयलो से देइ मंसखंडाइं । तह तह दिव्वोसहिविहि कच व वुड्ढिं छुहा जाइ ॥ १८ ॥ नीसेसमंसवियलं–निएवि सयलं कलेवरं अयलो । अह जीवियनिरविक्खो–सीसंपि हु छित्तु मारद्धो ॥ १९ ॥

थरिऊण पिसाएणं–दाहिणहत्थेण सत्ततुट्ठेण । भणिओ सो अलमेएणं—साहसेणं, वरेसु वरं ॥ २० ॥ अयलो भणेइ साहग इट्ठं प-

---

જોયો. ત્યારે તે તેને કહેવા લાગ્યો કે, હે મહાયશ ! આ સાધકને તું કાં હણે છે ? ત્યારે તે બોલ્યો કે, એણે મને સાત દિન લગી પ્રસાદ ખવરાવ્યો. (૧૩–૧૪)

પણ હમણાં મેં અતિ ક્ષુધાતુર થઇને એની પાસેથી મહા માંસ માગ્યું, તે એ ક્ષુદ્ર આપી શકતો નથી, તેથી હું એને જલદી મારીશ. [૧૫] ત્યારે પરોપકાર પરાયણ અચળ બોલ્યો કે, એને મૂકી દે. હું તને મહા માંસ આપું છું, તે વાત પિશાચે પણ કબુલ રાખી. [૧૬] ત્યારે તે છરીથી પોતાનું માંસ કાપીને તેને આપવા લાગ્યો, અનેં પિશાચ પણ આવું તો, મેં કોઇ વાર ખાધુંજ નથી. એમ બોલતો તે ખાવા લાગ્યો. (૧૭) હવે જેમ જેમ અચળ તેને માંસના કટકા કાપીને દેવા લાગ્યો, તેમ તેમ તેણે જાણે કોઇ દિવ્ય ઔષધ પીધું હોય, તેમ તેની ભૂખ વધવા લાગી. ત્યારે અચળ પોતાના કલેવરને તમામ માંસથી રહિત થએલ જોઈ જીવિતથી નિરપેક્ષ થઇ, પોતાનું માથું કાપી આપવાને પણ તૈયાર થયો. [૧૮–૧૯]

ત્યારે પિશાચે તેના સત્વથી તુષ્ટ થઇ પોતાના જમણા હાથે પકડીને કહ્યું કે,

करेसु जइसि तुट्ठो मे । एवं कयंचिय मए-मग्गसु अन्नंपि आह सुरो ॥ २१ ॥ अयलो जंपइ तुज्झवि-किं सीसइ अमर मुणियकज्जस्स । नाउं ओहिबलेणं-तं कज्जं आह इय अमरो ॥ २२ ॥ तं अयल गच्छ सगिहे-वीसत्थो होसु मुंचसु विसायं । एसो चोरपबंधो-गोसे सयलो फुडो होही ॥ २३ ॥ इय भणिय गओ अमरो-अयलोवि विसिट्ठदेहलायन्नो । नियया वासे पत्तो-निच्चिंतो लहइ निद्दं च ॥ २४ ॥

वत्तगयनिद्दो अयलो-पए पिसाएण पभणिओ भद्द । तं तक्करवुत्तंतं निसुणसु सो आह कहसु फुडं ॥ २५ ॥ एयस्स पुरस्स बहिं-पुव्वदिसाआसमे वसइ जोगी । पव्वयओ से सिद्धो कविलक्खो चेडओ अत्थि ॥ २६ ॥ तेणं हरेइ नयरे-सो सारं रमइ निसि जहिच्छाए । काऊण जोगिरूवं-दिवसे पुण कहइ धम्मकहं ॥ २७ ॥ तस्सासमभूमिहरे-चिट्ठइ अवहरियदव्वसव्वासं । मा कोहिसि इह संसय-मिय भणिय

એવું સાહસ મ કર, અને જે જોઇએ, તે માગ. [૨૦] અચળ બોલ્યો કે, જો તું મારાપર પ્રસન્ન થયો હોય, તો સાધકનું ઇષ્ટ કર. ત્યારે દેવ બોલ્યો કે, તે તો મેં કર્યુંજ માન; પણ બીજું પણ કંઇ માગ. [૨૧] અચળ બોલ્યો કે, હે દેવ ! તને કયાં મારા કામની ખબર નથી કે વળી કહેવું પડે ? ત્યારે તે દેવ અવધિના બળે તે કામ જાણીને બોલ્યો કે, હે અચળ ! તું તારા ઘેર જા, અને વિષાદ છોડીને ધીરો થા. પ્રભાતે ચોરનું સઘળું ભોપાળું પ્રગટ થશે. [૨૨-૨૩] એમ કહીને દેવ જતો રહ્યો. બાદ અચળ પણ વિશિષ્ટ લાવણ્યથી શોભતો થકો પોતાના મુકામે આવી, નિશ્ચિંતપણે ઉંઘવા લાગ્યો. [૨૪]

પ્રભાતે અચળ ઉંઘમાંથી ઉઠ્યો, ત્યારે પિશાચે કહ્યું કે, હે ભદ્ર ! હવે ચોરની વાત સાંભળ. ત્યારે તે બોલ્યો કે, ભલે પ્રગટ કરો. [૨૫] પિશાચ બોલ્યો કે, આ નગરની બાહેર પૂર્વ દિશાના આશ્રમમાં પર્વતક નામે એક યોગી રહે છે, તે સિદ્ધ છે, અને તેને કપિલાક્ષ નામે એક ચેલો છે, તેના મારફત તે રાતે નગરમાંથી સાર ચીજ હ-

તિરોહિઓ દેવો ॥ ૨૮ ॥ અહ કાઉગોસગ્ગિં—અયલો કરૂયજગા-
ણુગો પત્તો । સુરકહિયઆસમે તત્થ–તેણ દિટ્ઠો કવ્વડજોગી ॥ ૨૯ ॥

ઠાઊણં તત્થ ખણં–અયલો પત્તો નરિંદપયમૂલે । નિવપુટ્ઠો એગંતે
કહેઇ તં ચોરવુત્તંતં ॥ ૩૦ ॥ કો ઇત્થ પચ્ચઓ ઇય નરવરપુટ્ઠો પયં-
પએ અયલો । તસ્સા સમભૂમિગિહંમિ મોસજાયં સયલ મત્થિ ॥ ૩૧ ॥
તો સિરવિયણામિસવસ–વિસજ્જિયાસેસપરિયણો રાયા । સુત્તો તયણુ જ-
ણેણં–પારદ્ધા વિવિહઉક્યારા ॥ ૩૨ ॥ જાઓ નય કોવિ ગુણો–આ-
હૂયા મંતવાઇપમુહજણા । તેવિ અકયપડિયારા–ગયા વિલક્ખા સઠાણેસુ
॥ ૩૩ ॥ તો સુવિસન્નમણેણ વ–સો જોગી વાહરાવિઓ રન્ના । સંભા-
સિઉ મારદ્ધો–સાયરદિન્નાસણો ય તયં ॥ ૩૪ ॥

પુરિસે ય પેસિઊણં–ખણાવિઓ તસ્સ આસમો ઝત્તિ । નિગ્ગય

રાવે છે, અને મરજી પ્રમાણે રમે છે. બાદ દિવસે યોગિનું રૂપ ધરી ધર્મ કથા કરે છે. તેના તે આશ્રમનાં ભોંયરામાં તમામ ચોરેલું દ્રવ્ય રહેલું છે, એમાં સંશય કરીશ માં, એમ કહીને દેવતા તિરોહિત થઈ ગયો. (૨૬–૨૭–૨૮) હવે પ્રભાત કૃત્ય કરીને અચળ કેટલાંક માણસો સાથે લઈને દેવતાએ કહેલા આશ્રમમાં આવ્યો, એટલે તેણે ત્યાં કપટ યોગિને જોયો. [૨૯]

ત્યાં થોડીવાર રહીને અચળ રાજા પાસે આવ્યો. રાજાએ પૂછતાં એકાંતમાં ચોરની તે વાત કહી. (૩૦) રાજાએ પૂછ્યું કે, એમાં પુરાવો શો ? ત્યારે તેણે કહ્યું કે, તેના આશ્રમનાં ભોંયરામાં સઘળો ચોરેલો માલ પડયો છે. (૩૧) ત્યારે રાજા માથું દુઃખવાનો મિષ કરી તમામ ચાકર નફરોને રજા આપી સૂતો, એટલે તે લોકોએ અનેક ઉપચાર કરવા માંડયા. [૩૨] છતાં કંઈ ગુણ ન થયો, ત્યારે મંત્રવાદિ વગેરેને બોલાવ્યા, તેઓ પણ કંઈ પ્રતિકાર નહિ કરી શકતાં વિલખા થઈ સ્વસ્થાને ચાલતા થયા. [૩૩] ત્યારે દેખીતી રીતે વિષાદ ધરીને રાજાએ તે યોગિને બોલાવ્યો, એટલે તે આવ્યો. ત્યારે તેને આદરથી આસન આપવામાં આવ્યું, તેપર બેસીને તે વાતચીત કરવા લાગ્યો. [૩૪]

આણીમેર રાજાએ માણસો મોકલાવી તેનો આશ્રમ જલદી બોદાવી નખ્યો, એ-

મસેસમોસં–આણીયં રાયભવણંમિ ॥ ૩૫ ॥ આહૂઓ તવ્વેલં–મહાયણો દં-સિયં તયં મોસં। ઉવલક્ખિઊણ જં જસ્સ આસિ તં તસ્સ ઉવણીયં ॥ ૩૬ ॥ અહ વુત્તો સો જોગી–રે રે પાસંડિયાઽઽ અણજ્જ। કો એસો વુત્તંતો–સો ભીઓ જંપઇ ન કિંપિ ॥ ૩૭॥ ચેડો દૂરીહૂઓ–સિદ્ધ વજ્જંમિ દુ-જ્જણુ વ્વ લહું। મુબહું વિડંબિડં સો–જોગી મારાવિઓ રન્ના ॥ ૩૮ ॥ ઇય દટ્ઠુ તસ્સ મરણં–અયલો ચિંતેઇ ફુરિયવેરગ્ગો। હા કહ જીવા ધણલવ–વિમોહિયા જંતિ ઇહ નિહણં ॥ ૩૯ ॥

ધણલોભેણં જીવો–હણેઇ જીવે સયા મુસં વયઇ । પિયપુત્તમિત્તસુ-કલત્ત–પમુહલોયંપિ વંચેઇ ॥ ૪૦ ॥ ઇહલોઇયતુચ્છપઓયણત્થ મિત્થં અ-કિચ્ચલક્ખંપિ। કાઉં કંખઇ જીવો–નય પિચ્છઇ તક્કડં દુક્ખં ॥ ૪૧ ॥ અઇગરુયલોહમુગ્ગર–પહારભરગાઢવિહુરિયસરીરા। હા કિહણુ દુગ્ગદુગ્ગઇ–અવડે નિવડંતિ મે જીવા ॥ ૪૨ ॥ તા સયલલોહસંખોહ—નિવિડસર-

---

ટલે તમામ ચોરેલો માલ મળી આવ્યો. તે રાજભુવનમાં લઈ આવ્યા. [૩૫] બાદ મહાજનને બોલાવી, તે માલ બતાવવામાં આવ્યો, અને ઓળખી કરીને જે જેનું હતું, તે તેને પહોંચતું કરવામાં આવ્યું. [૩૬] હવે તે યોગિને ધમકાવવામાં આવ્યો. અરે અ-ધમ અનાર્ય પાખંડી ! આ શી વાત છે ? ત્યારે તે ડર ખાઇને ચુપ રહ્યો. [૩૭] હવે તે સિદ્ધને મારવાનો હુકમ થતાં દુર્જનની માફક જલદી તેનો ચેલો નાશી ગયો, અને તેને ખુબ વિટંબિત કરીને રાજાએ મરાવી નાખ્યો. [૩૮] આ રીતે તેનું મરણ જો-ઇને અચળ વૈરાગ્ય પામી ચિંતવવા લાગ્યો કે, હા હા ! ધનથી વિમોહિત થઇને પ્રાણિઓ જુવો કેવી રીતે મરણ પામે છે ? [૩૯]

ધનના લોભથી જીવ, જીવોને મારે છે, હમેશાં જુઠું બોલે છે, અને પિતા, પુત્ર, મિત્ર, કલત્ર વગેરેને પણ ઠગે છે. (૪૦) આ લોકના તુચ્છ પ્રયોજનના માટે આ રીતે જીવ લાખો અકૃત્ય કરવા ઇચ્છે છે, પણ તેનાથી થતાં દુઃખને જોઇ શકતો નથી. (૪૧) આ જીવો અતિ ભારે લોભરૂપ મુદ્ગળના પ્રહારથી ખુબ વિધુરિત થઇને જુવો

धोरणीखलणदक्खं । कवयंपिव पव्वज्जं—संपइ गिण्हामि दढसत्तो ॥ ४३ ॥ इय जा अचलो अचलियसंवेगभरो विचिंतए चित्ते । ता तत्थ समोसरिओ—सूरी गुणसुंदरो नाम ॥ ४४ ॥

सुच्चा गुरुणो तरूखणस आगमो आगओ गुरुसगासे । पणमियतप्पयपउमं—आसीणो उचियदेसंमि ॥ ४५ ॥ तयणु भवपरमनिव्वेय—कारिणी लोहमोहनिम्माहिणी । विसयाणुरागपायव करिणी संवेयसंजणणी ॥ ४६ ॥ संसारसमुत्थसमत्थ—वत्थुविगुणत्तपयडणपहाणा । सुइसुहकरोहि वयणेहि—देसणा सूरिणा विहिया ॥ ४७ ॥ तं सोउं पडिबुद्धो—अयलो पुच्छेवि कहवि नरनाहं । गुरूणो तस्स समीवे—संविग्गो गिण्हए दिक्खं ॥ ४८ ॥ पडिवन्नदुविहसिक्खो—गुरुणो सह विहरए महीवलए । अरहंते अरिहंते—आराहइ सम्म मरुहंते ॥ ४९ ॥

पवयणवच्छल्लपरो—झायइ सिद्धे सया सुहसमिद्धे । सिवफलत-

કેવી રીતે દુર્ગતિના ખાડામાં પડે છે ? [૪૨] માટે સઘળા લોભના સંક્ષોભરૂપ સખત બાણાવળીને અટકાવવા સમર્થ કવચ સમાન દીક્ષાને હું દ્રઢ હિમ્મત ધરીને લઇશ. એ રીતે અચળ અચલિત સંવેગથી ચિત્તમાં ચિંતવવા લાગ્યો, તેવામાં ગુણસુંદર નામે આચાર્ય સમોસર્યા. (૪૩-૪૪)

હવે અચળ ગુરૂનો લાં આગમ થએલો સાંભળીને ગુરૂ પાસે આવ્યો, અને તેમના પદપદ્મને નમીને ઉચિત દેશમાં બેઠો. [૪૫] ત્યારે આચાર્યે કાનને સુખ આપતાં વચનોથી સંસારથી નિર્વેદ કરાવનારી, લોભ અને મોહને ટાળનારી, વિષયાનુરાગરૂપ ઝાડને ઉખેડવા હાથણ સમાન, સંવેગ ઉપજાવનારી, અને સંસારમાં રહેલી તમામ વસ્તુને નિર્ગુણ જણાવનારી દેશના કરી. (૪૬-૪૭) તે સાંભળીને અચળ પ્રતિબોધ પામી, જેમ તેમ કરી રાજાની રજા લઇ તે ગુરૂની પાસે સંવેગ ધરીને દીક્ષા લેવા લાગ્યો. (૪૮) તે બે પ્રકારની શિક્ષા સ્વીકારી ગુરૂની સાથે પૃથ્વીપર વિચરવા લાગ્યો, અને ભાવ શત્રુને હણનાર અને ફરીને જન્મ નહિ પામનાર, અર્હંતને સરોબર આરાધવા લાગ્યો. [૪૯]

रुणो गुरुणो—सेवइ दंसणविणयजुत्तो ॥ ५० ॥ सुयवयपज्जायधरे—थेरे सुबहुस्सुए तवस्सी य । जहउचियं आराहइ—अभिक्खनाणोवओगपरो ॥ ५१ ॥ सीलव्वएसु आवस्सएसु परिहरइ दूर मइयारे । अपुव्वनाण-गहणं—सुयभत्तिपरायणो कुणइ ॥ ५२ ॥ तवसा निकाइयाणं—कम्माण खउत्तिं कुणइ गरुयतवं । खणलवझाणवउत्तो—मुणीण भत्ताइ वियरेइ ॥ ५३ ॥ पडिभग्गस्स मयस्सव—नासइ चरणं सुयं अगुणणाए । नहु वेयावच्चचियं—सुहोदयं नासए कम्मं ॥ ५४ ॥

इय चिंतंतो वेयावच्चं पकुणइ अतिप्पमाणमणो । पवयणपभावण-परो—कुणइ समाहिं च संघस्स ॥ ५५ ॥ एव मणुत्तरदंसण—नाण चरित्ते अतिप्पमाणस्स । उग्गतवकारिणो सुज्झमाणसुपसत्थलेसस्स ॥ ५६ ॥ अज्जियतित्थंकरनाम—कंमणो तस्स अचलसाहुस्स । सव्वोसहिपमुहा-

---

પ્રવચનની વાત્સલ્યતામાં તત્પર થઇ, તે સુખ સમૃદ્ધ સિધ્ધોને હમેશ ધ્યાવા લાગ્યો, તથા શ્રદ્ધા અને વિનયપૂર્વક શિવ ફળનાં તરૂ સમાન ગુરૂઓને સેવવા લાગ્યો. (૫૦) વળી નિરંતર જ્ઞાનના ઉપયોગમાં રહીને શ્રુતપર્યાય અને વ્રતપર્યાયથી મોટા રહેલા સ્થવિરો, બહુ શ્રુતો તથા તપસ્વિઓની યથોચિત આરાધના કરવા લાગ્યો. [૫૧] શીળવ્રત તથા આવશ્યકમાં અતિચારને દુર કરવા લાગ્યો; તથા શ્રુતની ભક્તિમાં પરાયણ બનીને અપૂર્વ જ્ઞાન શીખવા લાગ્યો. વળી તપથી નિકાચિત કર્મોનો પણ ક્ષય થતો જાણીને ભારે તપ કરવા લાગ્યો, તથા ક્ષણલવ ધ્યાનમાં ઉપયુક્ત રહી, મુનિઓને ભક્ત પાનાદિક આપી વૈયાવૃત્ય કરવા લાગ્યો. [૫૨–૫૩] કારણ કે, પતિત થતાં અથવા મરણ પામતાં ચારિત્ર નાશ પામે છે, અને નહિ સંભારતાં શ્રુત નાશ પામે છે, પણ વૈયાવૃત્ય જનિત શુભોદયી કર્મ નાશજ પામતું નથી. [૫૪]

આવું ચિંતવીને તે ભારે ઉમંગથી વૈયાવૃત્ય કરવા લાગ્યો, તથા પ્રવચનની પ્રભાવના કરવા તત્પર રહીને સંઘને સમાધિ કરવા લાગ્યો. [૫૫] આ રીતે અનુત્તર દર્શન, જ્ઞાન અને ચારિત્રમાં અતૃપ્ત રહેનાર, ઉગ્ર તપ કરનાર, સુપ્રશક્ત લેશ્યાએ ચડી શુદ્ધ

ઓ—ણાયાઓ વિવિહલધ્ધીઓ ॥ ૫૭ ॥ ઇત્તો નિભયપુરે રામચંદ રન્નો વિસિટ્ઠાવિજ્જેહિ । પયડિજ્જંતેસુ વિ સવ્વહુ—ભેસજ્જોસહપઓગેસુ ॥ ૫૮ ॥ વહુમંતંતવાઈહિં—કારમાણાસુ અવિ સુકિરિયાસુ । રોગેણ મરંતિ કરી—તો આદન્નો નિવો જાઓ ॥ ૫૯ ॥

અહ ગુરુણા ણુન્નાઓ–અચલમુણી તત્થ આગઓ તઇયા । પત્તો નિવો મુણિં તં–નમિય નિસન્નો ઉચિયદેસે ॥ ૬૦ ॥ મુણિણાવિ નિવઇ જુગ્ગો–સદ્દંસણથૂલમૂલપરિકલિઓ । પંચાણુવ્વયખંધો—તિગુણવ્વયગરુય-સાહીલો ॥ ૬૧ ॥ સિક્ખાવયપડિસાહો–નિમ્મલબહુનિયમકુસુમસંકિન્નો । સુરમણુય સમિદ્ધિફલો–કહિઓ ગિહિધમ્મકપ્પતરૂ ॥ ૬૨ ॥ ઇય સોઉ નિવો જંપઇ–પહુ ધંમ મિમં સમીહિમો કાઉં । કિંતુ અકાલે સિંધુરસંદોહં દટ્ઠુ મરમાણં ॥ ૬૩ ॥ ન ગિહે ન બહિં ન જણે–ન કાણણે નય દિણે ન રયણીએ । મહ સંપઇ સંપજ્જઇ–રઈ મણાગંપિ મુણિપવરા ॥ ૬૪ ॥

થનાર, અને એ રીતે તીર્થંકર નામ કર્મ બાંધનાર, તે અચળ મુનિને સર્વૌષધિ પ્રમુખ વિવિધ લબ્ધિઓ ઉત્પન્ન થઇ. (૫૬–૫૭) એવામાં નિર્ભયપુરમાં રામચંદ્ર રાજાના હાથીઓમાં એક એવો રોગ ફેલાયો કે, હુશિયાર વૈદ્યોએ અનેક ભૈષજ્ય અને ઔષધના પ્રયોગો બતાવ્યા છતાં અને મંત્ર તંત્રવાદિઓએ કહેલી ક્રિયાઓ કરાવતાં છતાં પણ હાથીઓ તે રોગથી મરવા લાગ્યા. ત્યારે રાજા ચિંતાતુર થવા લાગ્યો. [૫૮–૫૯]

હવે ગુરૂની અનુજ્ઞાથી અચળમુનિ ત્યાં તે વેળા આવ્યા, ત્યારે રાજા ત્યાં આવી, તેમને નમીને ઉચિત પ્રદેશે બેઠો. [૬૦] મુનિએ પણ રાજાને યોગ્ય સમ્યકત્વરૂપ મજબુત મુખવાળો, પાંચ અણુવ્રતરૂપ સ્કંધવાળો, ત્રણ ગુણવ્રતરૂપ શાખાવાળો, શિક્ષાવ્રતરૂપ પ્રતિ શાખાવાળો, નિર્મળ અનેક નિયમરૂપ કુસુમ [પુલ] વાળો, અને સુર મનુષ્યની સમૃદ્ધિરૂપ ફળવાળો, ગૃહિ ધર્મરૂપ કલ્પતરૂ તેને કહી સંભળાવ્યો. [૬૧–૬૨] તે સાંભળીને રાજા બોલ્યો કે, હે પ્રભુ ! એ ધર્મ કરવા ઇચ્છું છું, પણ અકાળે મારા હાથીઓ મરતા જોઇ, મને હે મુનીશ્વર ! ઘરમાં કે બહાર, વસતિમાં કે જંગલમાં, દિવસે કે રાતે લગારે પણ સુખ નથી આવતું. [૬૩–૬૪]

तो कहसु किंपि जेणं-सुत्थमणो हं करेमि धम्म मिमं। इय रन्ना पुणरुत्तं-वुत्तोविहु मुमुंणिसद्दूल्लो ॥ ६५ ॥ सावज्जकज्जवज्जी-सन्नाणो विहु न किंपि जा भणइ। ता मुणिसमीवठिय खेयरेण एवं निवो वुत्तो ॥ ६६ ॥ बहुलद्धि समिद्धिसम-न्नियस्स एयस्स समणसीहस्स। पयरेणूहिं संफुसिय कुणसु सज्जं करिसमूहं ॥ ६७ ॥ तं सुणिय निवो तुट्ठो—मुणिपय संफुसिय रेणुनियरेण। करिनियरं सव्वंपिहु-आमरिसावेइ तिक्खुत्तो ॥ ६८ ॥ विस मिव पीऊ सहयं—तमं व दिवसयर किरणपडिरूद्धं। वेगेण रोगजायं-तं नट्ठं कुंजरकुलाओ ॥ ६९ ॥

(ग्रं० ८०००)

तं पिच्छिवि अच्छरियं-अणच्छ हरिसो इमं भणइ राया। भयवं वारणवाही—केण निमित्तेण संजाओ ? ॥ ७० ॥ मुणिणा भणियं नरवर—जो जोई घाइओ तया तुमए। मरिउं अकामनिज्जर—वसेण

માટે કંઇ એવો ઉપાય કહો કે, જેથી હું સ્વસ્થ મનવાળો થઇ આ ધર્મ કરી શકું. આ રીતે રાજાએ બીજી વાર કહ્યા છતાં પણ તે મુનિવર-સાવદ્ય કામના વર્જનાર હોવાથી રૂડા જ્ઞાનવાળા છતાં પણ કંઇ બોલ્યા નહિ. તેવામાં મુનિની પાસે બેઠેલા વિદ્યાધરે તે રાજાને આ રીતે કહ્યું— [૬૫–૬૬] બહુ લબ્ધિની સમૃદ્ધિવાળા આ શ્રમણસિંહના પગની રેણુ છાંટીને હાથીઓને સાજા કરો. તે સાંભળી રાજા ખુશી થઇ, મુનિના પગથી ઝરસેરી ધુળ એકઠી કરી લઇને તે સઘળા હાથીઓપર ત્રણ વાર ઘસાવી, ત્યારે અમૃતથી જેમ વિષ ઉતરે, અથવા સૂર્યનાં કિરણથી જેમ અંધારૂં હણાય, તેમ હાથીઓમાંથી તે રોગ નાઠો. [૬૮]

[મૂળ ગ્રંથાગ્રં. ૮૦૦૦]

તે આશ્ચર્ય જોઇને ભારે હર્ષ પામી રાજા કહેવા લાગ્યો કે, ભગવન્ ! હાથીઓને એ વ્યાધિ શા કારણે થઈ હશે ? (૭૦) મુનિએ કહ્યું, હે નરવર ! તે વખતે તમે જે યોગી માર્યો, તે મરીને અકામ નિર્જરાના વશે કરી રાક્ષસ થયો છે. તેણે પૂર્વનું વેર સંભારી

सो रक्खसो जाओ ॥ ७१ ॥ सरिऊण पुव्ववइरं—स तुह सरीरंमि अप्पभवमाणो । एयंपि होउ दुक्खं ति कासि दंतीण रोगभरं ॥ ७२ ॥ मह चरणरेणु पुट्ठा–संपइ ते वाहिणो समुवसंता । सो रक्खसो पणट्ठो–सज्जं जायं करिकुडंबं ॥ ७३ ॥ मुणिमाहप्प मणप्पं—दट्ठूणं गहिय सुद्धगिहिधंमो । तुट्ठो राया पववण–पभावगो सावओ जाओ ॥ ७४ ॥

अयलोवि अतिप्पंतो–चरणाइसु काउ अणसणं सुमणो । सोहम्मे उववन्नो–तत्तो य चुओ विदेहंमि ॥ ७५ ॥ कच्छाविजए सिरिजय—पुरीइ रन्नो पुरंदरजसस्स । देवी सुदंसणाए–चउदस वरसुमिणकयसूओ ॥ ७६ ॥ गब्भे पाउब्भूओ–समुचियसमए य जम्म मणुपत्तो । अहि-सित्तो ससुरासुर–वग्गेण सुमेरुसिहरंमि ॥ ७७ ॥ कयजयमित्तभिहाणो–उचिए समयंमि पव्वइउकामो । लोगंतियतियसेहिं–सविसेसवुड्ढउच्छाहो

तारा अंगपर हुमलो करवा असमर्थ होइश, आ पणु એક જાતનું દુઃખ થશે, એમ માનીને હાથીઓમાં રોગ પેદા કર્યો, પણ મારા પગની રેણુના સ્પર્શથી તે વ્યાધિઓ દબાઈ ગઇ છે, તે રાક્ષસ નાશી ગયો છે, અને હાથીઓનું ટોળું સાજું થયું છે. (૭૧–૭૨–૭૩) તે મુનિનું આવું માહાત્મ્ય જોઇને રાજા હર્ષિત થયા, ગૃહિ ધર્મ સ્વીકારી પ્રવચનનો પ્રભાવક શ્રાવક થયો. (૭૪)

અચળ મુનિ પણ ચરણાદિકમાં અતૃપ્ત રહી, અણસણ કરીને સૌધર્મ દેવલોકમાં દેવતા થયો. ત્યાંથી ચવીને મહા વિદેહમાં કચ્છાવિજયમાં શ્રી જયપુરીના પુરંદરયશસુ રાજાની સુદર્શના રાણીના કુખે ચૌદ મહા સ્વપ્નપૂર્વક ગર્ભમાં ઉપજીને ઉચિત સમયે જન્મ પામ્યો, અને તેને સુરો તથા અસુરોએ મળીને મેરૂના શિખરપર અભિષિક્ત કર્યો. [૭૫–૭૬–૭૭] તેનું જયમિત્ર નામ પાડવામાં આવ્યું. હવે ઉચિત સમયે દીક્ષા લેવા ઇચ્છવા લાગ્યો, એટલે લોકાંતિક દેવોએ તેનો વિશેષ કરીને ઉત્સાહ વધાર્યો. [૭૮]

॥ ૭૮ ॥ लोगाणं संवच्छर–मच्छिन्नविदिन्न विहवसंभारो । चउसट्ठि-सुरेसर विहिय–गरुयनिक्खमणवरमहिमा ॥ ७९ ॥

तिजयं एगजयंपिव–एगत्थागयसुरासुरनरेहिं । कुणमाणो पडिवन्नो–निस्सामन्नं स सामन्नं ॥ ८० ॥ तो सुक्कज्झाणानल–समूलनिद्दड्ढघाइ-कंमदुमो । उप्पन्नकेवलालोय–लोइयासेस तइल्लको ॥ ८१ ॥ सीहासणो-वविट्ठो—सिरउवरिं धरिय सेय छत्ततिगं । नियदेहदुवालसगुण—महल्ल कंकिल्लिकयसोहो ॥ ८२ ॥ चालिय सियवरचमरो—पुरओ पक्खित्त कुसुमवरपयरो । निज्जिय दिणयरमंडल–भामंडल खंडियतमोहो ॥ ८३ ॥ सुरपहय दुंदुहिस्सर–पयडिय दुज्जेयभावरिउविजओ । सव्वसभासाणुग-दिव्व–वाणिहय तिजयसंदेहो ॥ ८४ ॥ पायडिय सुगइमग्गो–पडिबोहिय भूरि भावभवियजणो । विहरित्ता चिरकालं–अणंतसुहसंपयं पत्तो ॥ ८५ ॥

બાદ તે બાર માસ લગી અવિચ્છિન્નપણે મહા દાન દઇને દીક્ષા લેવા તૈયાર થયો, એટલે ચોસઠ ઇંદ્રોએ તેનો મોટો નિષ્ક્રમણ મહિમા કર્યો. (૭૯)

તે વખતે ત્યાં સુર અને અસુર એકઠા મળતાં ત્રણ જગતને એક જગત કરતા થકા તેણે સર્વોત્તમ શ્રમણપણું ધારણ કર્યું. [૮૦] બાદ શુકલ ધ્યાનરૂપ અગ્નિથી ઘાતિ કરૂપ ઝાડને મૂળથી બાળીને કેવળજ્ઞાન પામી, આખા ત્રૈલોક્યને જોવા લાગ્યો. [૮૧] બાદ તે ભગવાન્ સિંહાસનપર બેઠા. તેમના મસ્તકે ત્રણ શ્વેત છત્ર ધરાયાં, અને તેમના શરીરથી દશગણું મોટું કંકેલિ નામનું ઝાડ [અશોકવૃક્ષ] તેમના ઉપર શોભવા લાગ્યું. તેમના પડખે શ્વેત ચામર વીંજવા લાગ્યાં, આગળ ફુલના પગર નાખવામાં આવ્યા, અને સૂર્ય મંડળને જીતનાર ભામંડળથી તેમની આજુબાજુ અંધારૂં દુર થવા માંડયું. વળી દુંદુભિના તેમણે દુર્જય ભાવશત્રુ જીત્યા તેની વિજય ધ્વનિ હોય, તેમ ત્યાં દેવોએ દુંદુભિ વગાડી, અને તેઓ સર્વે ભાષાને મળતી દિવ્ય વાણીથી ત્રણે જગતના સંદેહ હરવા લાગ્યા. (૮૨–૮૩–૮૪)

श्रीजैनशासनवनीनवनीरदस्य—
श्रुत्वेति वृत्तमचलस्य मुनीश्वरस्य ।
सज्ञानदर्शनतपश्चरणादिकेषु—
श्रद्धामतृप्तमनसो मुनयोविधत्त ॥ ८६ ॥

॥ इत्यचलमुनीश्वरचरित्रं ॥

[છ]

इत्युक्तमतृप्तिस्वरूपं द्वितीयं श्रद्धालक्षणं सांप्रतं शुद्धदेशनास्वरूपं तृतीयमभिधित्सुस्तदधिकारिणं तावदाह.—

॥ मूलं ॥

सुगुरुसमीवे संमं—सिद्धंतपयाण मुणियतत्तत्थो ।
तयणुन्नाओ धन्नो—मज्झत्थो देसणं कुणइ ॥ ९५ ॥

તે ભગવાન્ સુગતિનો માર્ગ પ્રગટ કરી, પૂર્ણ ભાવવાળા ભવ્ય જનોને પ્રતિબોધી ચિરકાળ વિચરીને અનંત સુખ સંપદાને પ્રાપ્ત થયા. (૮૫) આ રીતે જૈન શાસ્ત્રરૂપ વનને ખીલવવા નવા મેઘ સમાન અચળ મુનીશ્વરનું ચરિત્ર સાંભળીને હે મુનિઓ ! તમે સમ્યક્ જ્ઞાન દર્શન અને તપશ્ચરણ વગેરેમાં અતૃપ્ત મન સખવા પૂર્વક શ્રદ્ધા કરો. [૮૬]

આ રીતે અચળ મુનીશ્વરનું ચરિત્ર છે.

એ રીતે અતૃપ્તિરૂપ બીજું લક્ષણ કહ્યું, હવે શુદ્ધ દેશનારૂપ ત્રીજું લક્ષણ કહેવા માટે પહેલાં તેનો અધિકારી બતાવે છે:—

મૂળનો અર્થ.

સુગુરૂના પાસે રહી રીતે સિદ્ધાંતનાં પદોનો તત્વાર્થ જાણીને તેમની અનુજ્ઞા મેળવી, ધન્ય પુરૂષ મધ્યસ્થ રહી દેશના કરે. [૯૫]

(ટીકા)

सुगुरोः संविग्नगीतार्थाचार्यस्य समीपे सम्यक् पौर्वापर्यपर्यालोचनेन सिद्धांतपदानामागमवाक्यानां पदार्थवाक्यार्थमहावाक्यार्थैदंपर्यार्थप्रकारेण ज्ञणिततत्वार्थो विज्ञातपरमार्थः—

उक्तंच.

पयवक्क महावक्कय—अइदंपज्जत्थवत्थु चत्तारि ।
सुपभावावगमंमी—हंदि पगारा विणिद्दिट्ठा ॥
संपुन्नेहिं जायइ—भावस्सय अवगमो इहरहाउ,
होइ विवज्जासोविहु—अणिट्ठफलओ य सो नियमा. (इति)

एवंविधोपि गुरूणानुज्ञातो—न स्वातंत्र्येण मौखर्यास्थैर्यातिरेका, दतएव धन्यो—धर्मधनार्हत्वान्मध्यस्थः स्वपक्षपरपक्षयो रागद्वेषरहितः सद्भूतवादी धर्मदेशनां कथां करोतीति.

ટીકાનો અર્થ.

સુગુરૂ એટલે સંવિગ્ન ગીતાર્થ આચાર્ય પાસે સમ્યક્ એટલે પૂર્વાપર પર્યાલોચના પૂર્વક સિદ્ધાંતના પદોનો પદાર્થ, વાક્યાર્થ, મહા વાક્યાર્થ, તથા ઐદંપર્યાર્થની રીતે પરમાર્થ જાણીને (દેશના કરે). જે માટે કહેલું છે કેઃ—

પદ, વાક્ય, મહા વાક્ય, અને ઐદંપર્ય એમ ઇહાં ચાર વસ્તુ છે, તે શ્રુતનો ભાવ જાણવાના પ્રકાર કહ્યા છે.

એ ચારે સંપૂર્ણ થતાં ભાવ સમજાય છે, તે શિવાય વખતે વિપર્યાસ પણ થઇ જાય, અને વિપર્યાસ તો નિયમા અનિષ્ટ ફળ આપે છે.

એવો છતાં પણ વળી તે ગુરૂની અનુજ્ઞા લઇને દેશના કરે, નહિ કે વાચાળપણા તથા અસ્થિરપણાથી સ્વતંત્ર બનીને.

એવી રીતે ધન્ય એટલે ધર્મ ધનને લાયક, અને મધ્યસ્થ એટલે સ્વપક્ષ, અને પરપક્ષમાં રાગ દ્વેષ રહિત રહી, સદ્ભૂતવાદી થઇને ધર્મદેશના કરે.

તથા—

(મૂલં)

अवगयपत्तसरूवो—तयणुग्गहहेउभाववुड्ढिकरं ।
सुत्तभणियं परूवइ—वज्जंतो दूर मुम्मग्गं ॥ ९६ ॥

(टीका)

अवगतं सम्यमवबुद्धं पात्रस्य श्रावणीयस्य प्राणिनः स्वरूप माशयो येन सोऽवगतपात्रस्वरूपः—

तथाहि.

बालमध्यमबुद्धिबुद्धभेदात्त्रिविधं पात्रं श्रावणीयं भवति

तत्र

વળી

મૂળનો અર્થ.

પાત્રનું સ્વરૂપ ઓળખી, તેના અનુગ્રહના કારણ એવા ભાવને વધારનારૂં સૂત્રમાં જે કહેલું હોય, તે પ્રરૂપે અને ઉન્માર્ગને વર્જિત કરે. (૯૬)

ટીકાનો અર્થ.

અવગત કર્યું હોય એટલે બરોબર ઓળખ્યું હોય, પાત્રનું એટલે સંભળાવવા યોગ્ય પ્રાણિનું સ્વરૂપ એટલે આશય જેણે તે અવગત માત્ર સ્વરૂપ કહેવાય.

તે આ રીતે કે, બાળ, મધ્યમ બુદ્ધિ, અને બુધના ભેદે કરી સંભળાવવા યોગ્ય પાત્ર ત્રણ પ્રકારે છે.

ત્યાં

बालः पश्यतिलिंगं–मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तं । आगमतत्त्वं तु बुद्धः–परीक्षते सर्वयत्नेन ॥ १ ॥ सम्यग्लोचविधानंत्वनुपानत्कत्वमथ धराशय्या । प्रहरद्वयं रजन्यां स्वापः शीतोष्णसहनं तु ॥ २ ॥

षष्ठाष्टमादिरूपं–चित्रं बाह्यं तपो महाकष्टं । अल्पोपकरणसंधारणं च तच्छुद्धता चैव ॥ ३ ॥ गुर्वी पिंडविशुद्धिश्चित्रा द्रव्याद्यभिग्रहाश्चैव । विकृतीनां संत्याग–स्तथैकसिकथादिपारणकं ॥ ४ ॥ अनियतविहारकल्पः–कायोत्सर्गादिकरणमनिशंच । इत्यादि बाह्यमुच्चैः–कथनीयं भवति बालस्य ॥ ५ ॥ मध्यमबुद्धे स्त्वीर्या—समितिप्रभृति त्रिकोटिपरिशुद्धं । आद्यंतमध्ययोर्गैर्हितदं खलु साधुसद्वृत्तं ॥ ६ ॥ अष्टौ साधुभिरनिशं मातर इव मातरः प्रवचनस्य । नियमेन न मोक्तव्याः—परमं कल्याणमिच्छद्भिः ॥ ७ ॥

एतत्सचिवस्य सदा–साधोर्नियमान्न भवभयं भवति । भवति च

બાળ હોય તે લિંગ જુવે છે, મધ્યમ બુદ્ધિ આચાર વિચારે છે, અને બુદ્ધ હોય છે, તે સર્વ યત્ને કરી આગમના તત્વને પરખે છે. [૧] ત્યાં બરોબર લોચ કરવો, ઉઘાડા પગ રાખવા, જમીનપર સુવું, રાતે કુલ બે પહોર સુવું, શીત ઉષ્ણ સહન કરવાં. [૨]

છઠ આઠમ વગેરે અનેક પ્રકારનું બાહ્ય તપ, મહા કષ્ટ, અલ્પ ઉપકરણ ધારવા તે, તથા તેની શુદ્ધતા. (૩) મોટી પિંડ વિશુદ્ધિ, અનેક પ્રકારના દ્રવ્યાદિકના નિયમ, વિકૃતિ ત્યાગ, એક સિકથ વગેરેથી નિયમિત પારણું. (૪) અનિયત વિહાર, નિરંતર કાયોત્સર્ગ વગેરે કરવા તે. ઇત્યાદિક બાહ્ય પ્રવૃત્તિ બાળને વિસ્તારીને કહેવી. [૫] મધ્યમ બુદ્ધિને ઇર્યા સમિતિ વગેરે ત્રિકોટિ પરિશુદ્ધ અને આદિ, અંત તથા મધ્યમાં હિતકારક સાધુનો આચાર કહી બતાવવો. (૬) (તેજ કહે છે) પરમ કલ્યાણને ઇચ્છતા સાધુઓએ પ્રવચનની માતાની માફક આઠ માતાઓ નિયમા નિરંતર સંભાળવી. (૭)

એ પ્રવચન માતાઓ સહિત સાધુને નિયમા સંસારનું ભય રહેતું નથી. વળી

हितमत्यंत-फलदं विधिना गमग्रहणं ॥ ८ ॥ गुरुपारतंत्र्यमेव च-तद्बहुमानात्सदाशयानुगतं । परमगुरुप्राप्तेरिह—बीजं तस्माच्च मोक्ष इति ॥ ९ ॥ इत्यादिसाधुवृत्तं-मध्यमबुद्धेः सदा समाख्येयं । आगमतत्वं तु परं-बुधस्य भावप्रधानं तु ॥ १० ॥ वचनाराधनया खलु धर्मस्तद्बाधयात्वधर्म इति । इदमत्र धर्मगुह्यं—सर्वस्वं चैतदेवास्य ॥ ११ ॥

इत्यादि

अथवा पारिणामिकापारिणामिकातिपारिणामिकभेदात्त्रिविधं पात्र मित्यादि पात्रस्वरूपमवगम्य श्रद्धावांस्तस्यानुग्रहहेतुरूपकारी यो भावः शुभपरिणामस्तस्य वृद्धिकरं तदपि सूत्रभणितमागमोक्तं प्ररूपयति व्याचष्टे वर्जयन्नुत्सूजन् दूरं यथा भवत्येवमुन्मार्गं मोक्षप्रतीपांवर्त्तिनीं-

अयमिहाभिप्रायः-सम्यक् पात्रस्वरूपमवगम्य तद्भाववृद्धिकारका

विधिએ કરીને આગમ ગ્રહણ કરવું, તે ફળ આપે છે. [૮] બહુમાન પૂર્વ નિર્મળ આશય રાખીને ગુરૂના પરતંત્રપણે રહેવું, તેજ પરમ ગુરૂ પામવાનું બીજ છે, અને તેથીજ મોક્ષ થાય છે. [૯] ઇત્યાદિક સાધુનો આચાર મધ્યમ બુદ્ધિને હમેશાં કહી સંભળાવવો, અને ભાવ પ્રધાન આગમ તત્વ તો કેવળ બુદ્ધનેજ સમજાવવું. [૯-૧૦] વચનની આરાધનાવડે ધર્મ છે, અને તેની બાધા કરતાં અધર્મ છે, એ ધર્મનું ગુહ્ય છે, અને એજ એનું સર્વસ્વ છે. ઇત્યાદિક વાતો બુધનેજ કહેવી. [૧૧]

અથવા પારિણામિક, અપારિણામિક, અને અતિપારિણામિક એ ભેદોવડે પાત્ર ત્રણ પ્રકારના છે; ઇત્યાદિક પાત્રનું સ્વરૂપ સમજીને શ્રદ્ધાવંત પુરૂષ તે પાત્રના અનુગ્રહનો હેતુ એટલે ઉપકારક જે ભાવ એટલે શુભ પરિણામ તેની વૃદ્ધિનું કરનાર તે પણ વળી સૂત્ર ભણિત એટલે આગમોક્ત હોય, તેને પ્રરૂપે અને ઉન્માર્ગ એટલે મોક્ષથી પ્રતિકુળ વાટ તેને દુરથી વર્જે.

મતલબ એ કે, સમ્યક રીતે પાત્રનું સ્વરૂપ સમજીને તેના ભાવને વધારનારી,

मनुवृत्त्यादिदोषरहितां सिद्धांतमार्गानुत्तीर्णां देशनां विदधाति, श्रेणिकं प्रति निर्ग्रंथसाधुवत्.

तथाहि.

मगहाजणवयअवयंस–रायगिहनगरनायगो हुत्था । दुत्थियजणपरिपालण–पउणमणो सेणिओ राया ॥ १ ॥ सो अन्नदिणे सह चलिरफारसिंगारसारसुध्धंतो । सरहस नमंतसामंत–मंतिसंदोहसंजुत्तो ॥ २ ॥ हयगयरहवरपाइक्क–चक्कअक्कंतसयलदिसिचक्को । हत्थिगओ सियचामर—कयसोहो धरियसिरछत्तो ॥ ३ ॥ पुरओ पयट्टमागह–मंडलगिज्जंतकंतकित्तिभरो । पत्तो विहारजत्ताइ—चेइए मंडिकुच्छिसि ॥ ४ ॥

तत्थुवविट्ठं हिट्ठा तरूणो तरुणं निएवि मुणि मेगं । रइ रहियं पिव मयणं—सुरूव मिय चिंतइ नरिंदो ॥ ५ ॥ अज्जस्स अहो व-

---

અનુવૃત્યાદિક દોષથી રહિત, અને સિદ્ધાંતના માર્ગને અનુસરતી દેશના કરે, જેમ શ્રેણિક પ્રત્યે નિર્ગ્રંથ સાધુએ દેશના કરી તેમ.

નિર્ગ્રંથ મુનિની કથા આ રીતે છે.

મગધ દેશના મુગટ સમાન રાજગૃહ નગરનો શ્રેણિક નામે રાજા હતો, તે દુઃસ્થિત જનતે પરિપાલન કરવામાં તત્પર રહેતો. [૧] તે એક વેળા સાથે ચાલતાં શૃંગાર શોભિત અંતે ઉરથી તથા દોડમદોડા કરી નમતા સામંત અને મંત્રિના સમુહથી જોડાઇને, (૨) ઘોડા, હાથી, રથ અને પદાતિના લશ્કરથી આજ્ઞા દિશાચક્રને દબાવતો થકો, તથા હાથીપર ચડીને શ્વેત ચામરોથી વીંજાતો થકો, મસ્તકે છત્ર ધરાવીને ચાલવા લાગ્યો. [૩] અને તેની આગળ ચાલતા ભાટ, ચારણ, તેની ભારે સરસ કીર્તિ ગાવા લાગ્યા; એમ વિહાર યાત્રાએ કરીને તે મંડિતકુક્ષિ નામના ચૈત્યમાં [વનમાં] આવી ચડ્યો. [૪]

ત્યાં ઝાડની નીચે બેઠેલા એક તરૂણ મુનિ, કે જે જાણે રતિ રહિત કામદેવ હોય, એવો રૂપવાન દેખાતો હતો, તેને જોઇને આવું ચિંતવવા લાગ્યો. (૫) આ આર્ય

ओ–अहो सुरूवं अहो अहो सुत्ती। खंती अहो पहाणा–भोगेसु अहो असंगत्तं ॥ ६ ॥ अह नमिय तस्स पाए–कयंजली नाइदूरगो भणइ। तरुणत्तणेवि अज्जो–उवट्ठिओ कीस सामन्नो ? ॥ ७ ॥ तो तयणुग्ग-हहेउं–सहेउअं सुध्धभाववुड्ढिकरं। पत्ताणुरूव मेवं गिरं महेसी वएसी य ॥ ८ ॥ मगहेस अणाहो हं–नाहो मह विज्जई नहु नरिंद। अणुकंपगं सुहिं वा–नहु किंचि सरेमि हं इत्थ ॥ ९ ॥

तेणा हं पडिवन्नो–दिक्खं बहुदुक्खलक्ख खयजणणिं। अह हा-सवसविसप्पंत–दंतकंती भणइ राया ॥ १० ॥ वरलक्खणवंजणगुण–पिसुणियबहुविहवित्थरस्सा वि। तुह मुणिपहु कह नाहो–न आसि अणुकंपग सुही वा ? ॥ ११ ॥ तो होमि अहं नाहो–तुज्झं बहुसयण-परियणसमेओ। भुंजेसु विसयसुक्खं–सुदुल्लहं पुणवि माणुस्सं ॥ १२ ॥ तो सिद्धंताणुगयं निवमणअणुवित्तिविरहियं निउणं। जुत्तिसजुत्तं एयं–

પુરૂષનો વર્ણ જુવો, રૂપ જુવો, મુક્તિ [ત્યાગ] જુવો, ઉત્તમ ક્ષાંતિ (ક્ષમા) જુવો, તથા ભોગોમાં અસંગિપણું જુવો ! [૬] એમ કહીને તે તેના ચરણે નમી, હાથ જોડીને વાજબી છેટે ઉભો રહી કહેવા લાગ્યો કે, હે આર્ય ! તેં ભર જુવાનીમાં આ શ્રમણપણું કાં ઉઠાવ્યું છે ? [૬-૭] ત્યારે તે મહર્ષિ તેના અનુગ્રહ માટે હેતુવાળી, શુદ્ધ ભાવને વધારનાર, અને પાત્રાનુરૂપ વાણી બોલ્યા કે, હે મગધેશ્વર ! હું અનાથ છું, એટલે કે હે નરેંદ્ર ! મારો નાથ કોઇ નથી. મને ઇહાં કોઇ મારા અનુકંપક કે સુહૃત્ સગાં નથી સાંભરતાં. (૮-૯)

તેથીજ મેં લાખો દુઃખને ક્ષય કરનારી આ દીક્ષા લીધી છે. (આ સાંભળીને) હવે રાજા હાસ્યથી દાંતની કાંતિ બતાવતો થકો બોલ્યોઃ—[૧૦] હે મુનીશ્વર ! તમે તમારા લક્ષણ, વ્યંજન, અને ગુણ ઉપરથી તો ભારે વૈભવવાળા હશો, એમ દેખાય છે. તો પછી તમારો નાથ કે અનુકંપક કે સુહૃત્ કેમ નહિ હોય ? [૧૧] અને કદાચ તેમ હોય, તો હમ્રો ઘણા સ્વજન પરિવારવાળો હુંજ તમારો નાથ થઉં છું. તું વિષયસુખ ભોગવ, ફરીને મનુષ્યભવ મળવો દુર્લભ છે. [૧૨] ત્યારે તે મુનિ રાજાના મનની અનુ-

फुडक्खरं जंपियं मुणिणा ॥ १३ ॥ भो भो सेणिय नरवर-तुमं अणा होसिं अप्पणावि धुवं । तो अप्पणा अणाहो-परेसि नाहो कहं होसि? ॥ १४ ॥

एवं वुत्तो संतो-संभंतो नरवरो इमं आह । चउरंग बलजुओ हं-निरुवम भोगेहि कलिओ हं ॥ १५ ॥ आणा इस्सरियसमिद्ध-रज्जजुत्तो अहं तओ तुमए । वुत्तो कहं अणाहो-वयसु मुसं मा हु तं भंते ॥ १६ ॥ अह मुणिणा वज्जरियं-एयस्स न पत्थिवा मुणसि अत्थं । नेवय उत्थाणं ता-एगग्गमणो निसामेसु ॥ १७ ॥ कोसंबी नयरीए-उवहसिय कुबेरवत्थु वित्थारो । आसि बहुसयणवग्गो-मह जणओ भुवण पयडजसो ॥ १८ ॥ मगहाहिव मज्झ तया-पढमवइच्चिय सुदुस्सहा हुत्था । अच्छि वियणा महंती-तव्वसओ देहदाहो य ॥ १९ ॥

देहंतोभमिरमहंत-निसियकुंतु व्व असणिनिहउ व्व । अइगाढनय-

વૃત્તિ નહિ કરતાં સિદ્ધાંતના અનુસારે બરોબર રીતે યુક્તિયુક્ત, અને સ્પષ્ટાક્ષરપણે આવું બોલ્યા કે, હે શ્રેણિક ! તું પોતેજ અનાથ છે, તો પોતે અનાથ છતાં તું બીજાનો નાથ શી રીતે થઇ શકશે ? (૧૩-૧૪)

એમ મુનિએ કહ્યાથી રાજા સંભ્રાંત થઇ એમ બોલ્યો કે, હું ચતુરંગી સેનાથી પરિવરેલો છું, નિરૂપમ ભોગ મેળવી શકું છું, અને આજ્ઞા ઐશ્વર્યવાળા રાજ્યથી યુક્ત છું, છતાં તમે મને અનાથ કેમ કહ્યો ? માટે હે પૂજ્ય ! જૂઠું બોલો માં. [૧૫-૧૬] હવે મુનિ બોલ્યા કે, હે રાજન્ ! આ વાતના અર્થને તથા ઉત્થાન [મૂળમંડાણ]ને તું જાણતો નથી, માટે એકાગ્ર મન રાખી સાંભળ. (૧૭) કૌશાંબી નગરીમાં કુબેરની ઋદ્ધિને પણ હસનાર, અને મોટા સ્વજન વર્ગવાળો, તથા જગત્ પ્રસિદ્ધ યશવાળો મારો બાપ હતો. (૧૮) હવે હે મગધેશ્વર ! મને ત્યાં પહેલી વયમાંજ અતિ દુસ્સહ આંખની વેદના થવા લાગી, અને તેના વશે શરીરે દાહ થવા લાગ્યો. (૧૯)

તે વેળાએ મારા દેહમાં જાણે મોટાં તીક્ષ્ણ ભાલાં ભમતાં હોય, અથવા તો હું

વપીડા-ભરેણ વિવસો અહં જાઓ ॥ ૨૦ ॥ બહુમંતતંતવિજ્જા-વિઉ જણો મમ કરેઇ તેગિચ્છં । નય મોએઇ દુહાઓ—અણાહયા નિવ ઇમા મજ્ઝ ॥ ૨૧ ॥ મમકારણેણ જણઓ-ગિહ સવ્વસ્સંપિ દેઇ વિજ્જાણં । નય મોયેઇ દુહાઓ-અણાહયા નિવ ઇમા મજ્ઝ ॥ ૨૨ ॥ બાહપ્પવાહ-ધોઇય-વયણા જણણીવિ ઝૂરએ બહુયં । નય મોએઇ દુહાઓ—અણાહયા નિવ ઇમા મજ્ઝ ॥ ૨૩ ॥ કિંકાયવ્વ વિમૂઢા-જિટ્ઠકણિટ્ઠા રુયંતિ તહ બંધૂ । નય મોયંતિ દુહાઓ-અણાહયા નિવ ઇમા મજ્ઝ ॥ ૨૪ ॥

ભયણીઉ વામકરયલ-સંઠિયવયણા રુયંતિ નિહુયસરં । નય મોયંતિ દુહાઓ-અણાહયા નિવ ઇમા મજ્ઝ ॥ ૨૫ ॥ ઉમ્મુક્કપાણભોયણ-વિલેવણાભરણપમુહવાવારા । નયણેહિ અંસુપુન્નેહિં—સિંચિરી મજ્ઝ વચ્છયલં ॥ ૨૬ ॥ પાસાઉ અફિટ્ટંતિ-ખણંપિ ઝૂરેઇ ભારિયાવિ બહું । નય મોએઇ

વજ્રથી હણાયો હોઉં, તેમ તે અતિ આકરી આંખની પીડાથી બેહાશ થઇ પડ્યો. (૨૦) ત્યારે ઘણા મંત્ર, તંત્ર, વિદ્યાના જાણનાર જનો મારી ચિકિત્સા કરવા લાગ્યા, પણ કોઇ પણ દુઃખથી છોડાવી શક્યો નહિ. હે રાજન્! એ મારી અનાથતા છે. (૨૧) મારા પ્રેમને મારો બાપ ધરનું સર્વ ધન આપવા તૈયાર થયો, પણ મને દુઃખથી છોડાવી શકયો નહિ. હે રાજન્! એ મારી અનાથતા છે. (૨૨) આંસુઓના પ્રવાહથી મુખને ધોતી, મારી મા બહુએ ઝુરવા લાગી, પણ મને દુઃખથી છોડાવી શકી નહિ. હે રાજન્! એ મારી અનાથતા છે. [૨૩] શું કરવું તેમાં મુંઝાઇ પડીને મારા નાના મોટા ભાઇઓ રોવા લાગ્યા, પણ મને દુઃખથી છોડાવી શકયા નહિ. હે રાજન્! એ મારી અનાથતા છે. (૨૪)

મારી બહેનો પ્રથી હથેલીએ મોઢું રાખીને ગંભીર સ્વરે રોવા લાગી, પણ મને દુઃખથી છોડાવી શકી નહિ. હે રાજન્! એ મારી અનાથતા છે. [૨૫] વળી મારી સ્ત્રી ખાનપાન અને શણગાર વગેરે કામ છોડીને આંસુ ભરેલા નેત્રોથી મારી છાતીને ભીંજવતી રહી, મારા પડખાથી ક્ષણ વાર પણ દૂર નહિ થતાં બહુ ઝુરવા લાગી, પણ

दुहाओ–अणाहया निव इमा मज्झ ॥ २७ ॥ कहमवि अणियत्तंती—अच्छि वियणाइ थेवमित्तंपि । अहह इह नत्थि कोविहु—नाहो इय चिंतयंतेणं ॥ २८ ॥ विहिया मए पइन्ना–जइ मुंचिज्जा इमाइ वियणाए तो चत्तसव्वसंगो–काहं अणगारियं पवरं ॥ २९ ॥

एवं विहियपइन्नस्स मज्झ रयणीइ आगया निद्दा । खय मुवगया य वियणा–जाओ म्हि पुणं नवसरीरो ॥ ३० ॥ जाए पभायसमए—तत्तो आपुच्छिउं सयणवग्गं । सिरि सव्वन्नुपणीयं–सुद्धं दिक्खं पवन्नो हं ॥ ३१ ॥ भो भो रायगिहेसर–परस्स तह अप्पणो तदुभयस्स । सचराचर जियलोयस्स–तयणु नाहो अहं जाओ ॥ ३२ ॥

तथा

इमा हु अन्नावि अणाहया निवा–तमेगचित्तो निहुओ सुणेहि । निहंठधम्मं लहियाणवी जहा–सीयंति एगे बहु कायरा नरा ॥ ३३ ॥

મને દુઃખથી છોડાવી શકી નહિ. હે રાજન્! એ મારી અનાથતા છે. [૨૬–૨૭] આમ કોઈ રીતે પણ લગાર માત્ર આંખની પીડા ઓછી નહિ પડતાં મેં ચિંતવ્યું કે, હાય હાય! ઇહાં કોઇ પણ નાથ [રક્ષક] નથી, અને એમ ચિંતવીને મેં પ્રતિજ્ઞા કરી કે, જો આ વેદનાથી મુકાઉં, તો સર્વનો સંગ છોડીને ઉત્તમ અનગારીપણું આદરું. [૨૮–૨૯]

એમ પ્રતિજ્ઞા કરીને સૂતેલા મુજને રાતે ઉંઘ આવી ગઈ, અને વેદના બંધ થઇ ગઇ, એટલે હું જાણે નવા શરીરવાળો થઈ ગયો. [૩૦] બાદ પ્રભાત થતાં સ્વજન વર્ગની રજા લઇને મેં આ સર્વજ્ઞપ્રણીત શુદ્ધ દીક્ષા લીધી છે. (૩૧) હે રાજગૃહના માલેક! ત્યારથી હું પોતાનો, પરનો અને તદુભય [તે બન્ને]નો નાથ થયો છું. [૩૨]

વળી

હે રાજન્! આ પણ એક જાતની અનાથતા છે, તેને તું એક ચિત્તથી સાંભળ. જેમકે કેટલાએક કાતર માણસો નિર્ગ્રંથ ધર્મ પામીને પણ સીદાય છે. [૩૩]

जो पव्वइत्ताण महव्वयाणि–सम्मंय नो फासई पमाया । अणिग्ग-प्पाय रसेसु गिद्धे–न मूलओ छिंदइ बंधणं से ॥ ३४ ॥ आउत्तया जस्स न अत्थि काई–इरियाइ भासाइ तहे सणाए । आपाण निक्खेव-दुगुंच्छणाए–न वीरजायं अणुजाइमग्गं ॥ ३५ ॥ चिरंपि से मुंडरुई भवित्ता–अथिरव्वए तवनियमेहिं भट्ठे । चिरंपि अप्पाण किलेइसत्ता–न पारए होइ हु संपराए ॥ ३६ ॥ पुल्ले व मुट्ठी जह से असारे–अयंतिए कूडकहावणे वा । राढामणीवेरुलियप्पगासे–अमहग्घए होइ हु जाणएसु ॥ ३७ ॥ कुसीललिंगं इह धारइत्ता–इसिज्झयं जीविय वूहइत्ता असंजए संजय लप्पमाणे–विणिघाय मावज्जइ से चिरंपि ॥ ३८ ॥

विसं तु पीयं जह कालकूडं–हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं । एमेव धंमो विसओववन्नो–हणाइ वेयाल इवा विवन्नो ॥ ३९ ॥ जे लक्खणं सुमिण पउंजमाणे–निमित्त कोऊहलसंपगाढे । कुहेड विज्जासवदारजीवी–

જે પ્રવ્રજ્યા લઈને મહાવ્રતોને પ્રમાદી થઈ બરોબર નહિ પાળે, અને આત્માને વ્યાકુળ બનાવી રસોમાં ગૃદ્ધ થાય, તે બંધનને મૂળથી કાપી શકે નહિ. [૩૪] જેને ઇર્યા, ભાષા, એષણા, આદાનનિપણિકા, અને પારિસ્થાપ્નિકા એ પાંચે સુમતિઓમાં ઉપયોગ ન હોય, તે વીર પુરૂષોના માર્ગે ચાલી શકે નહિ. [૩૫] તે લાંબા વખત સુધી મુંડેલો છતાં પણ અસ્થિર વ્રતવાળો, અને તપ નિયમથી ભ્રષ્ટ રહીને, પોતાને લાંબા કલેશમાં ઉતારીને પણ સંસારનો છેડો નહિ પામી શકે. [૩૬] તે પોકળ મૂઠની માફક અથવા ફુડા નાણાની માફક, અથવા કાચ મણિના માફક જાણકાર જનોમાં કીમત વગરનો થઈ પડે છે. (૩૭) આ રીતે ઇહાં કુશીળિયાનું ધરીને ઋષિ જેવી જીંદગી બતાવતા થકા અસંયતિઓ પોતાને સંયત કહીને ચિરંકાળ વિનિર્ઘાત (નિપાત) પામે છે. [૩૮]

જેમ કાલકૂટ વિષ પીવામાં આવ્યું હોય, અથવા શાસ્ત્ર ઉલટી રીતે પકડવામાં આવ્યું હોય, તો તે હણે છે, તેમ વિષય સહિત ધર્મ ભયંકર વેતાલની માફક હણે છે. (૩૯) જે મુનિ થઈને લક્ષણ અને સ્વપ્નનાં ફળ કહે, નિમિત્ત અને કુતૂહળમાં વળગ્યો

न यच्छई सरणं तंमि काले ॥ ४० ॥ तमंतमेणे वउसे असीणे—सया दुही विप्परियासु वेइ । संधावई नगरतिरिक्खजोणिं—मोणं विराहित्तु असाहुरूवे ॥ ४१ ॥ उद्देसियं कीयगडं नियागं—न मुंचई किंचि अणेसणिज्जं । अग्गीव वा सव्वभक्खी भवित्ता—इओ चुए गच्छइ कट्टु पावं ॥ ४२ ॥

न तं अरी कंठछित्ता करेइ—जं से करे अप्पाणया दुरप्पा । से नाहिई मच्चुमुहं तु पत्ते—पच्छाणुतावेण दयाविहूणे ॥ ४३ ॥ निरट्ठिया नग्गरुई उतस्स—जे उत्तिमट्ठं विवज्जास मेइ । इमेवि से नत्थि परेवि लोए—दुहओवि से झीयइ तत्थ लोए ॥ ४४ ॥ एमेव हाजींदकुसीलरूवे—मग्गं विराहित्तु जिणुत्तमाणं । कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धो—निरट्ठसोया परियाव मेइ ॥ ४५ ॥ सुच्चाणु मेहावि सुभासियं इमं—अणुसासणं

રહે, કુહેડ [કોહેડા] તથા વૈદ્યક વગેરે આશ્રવ દ્વારથી આજીવિકા કરે, તેને તે બધું તે કાળમાં [મૃત્યુના ટાંકણે] કંઈ પણ બચાવ કરી શકનાર નથી. [૪૦] તમંતમીન (ઘોર અજ્ઞાની), અકુશ [કાબરા ચારિત્રવાળો] અને અશીલ [શીલહીન] જે હોય, હમેશ દુઃખી રહી વિપર્યાસ [મિથ્યાત્વ]ને પામે છે. તે અસાધુ બની મુનિપણું વિરાધીને નરક અને તિર્યંચની યોનિમાં રઝળે છે. [૪૧] જે ઔદ્દેશિક, ક્રીતકૃત, નિયાગદોષવાળું એવું કંઈ પણ અનેષણીય મૂકે નહિ, પણ અગ્નિની માફક સર્વભક્ષી થઈને રહે, તે અહીંથી મરી ભારે ભુંડાં સ્થળને પામે છે. (૪૨)

ગળું કાપનાર દુશ્મન એટલું નુકશાન કરી શકે નહિ, જેટલું તે દુરાત્મા પોતાના હાથેજ કરે છે. છતાં તે જ્યારે મોતના મુખમાં પડશે, ત્યારેજ તેને જાણી શકશે, અને પશ્ચાત્તાપ કરશે, તોપણ કોઈ તેનાપર દયા કરનાર વથી. [૪૩] જે ઉત્તમ અર્થમાં વિપર્યાસ પામે છે, તે નગ્ન રહેવાની રૂચિ નિરર્થક છે. તેને આ લોક પણ નથી, અને પરલોક નથી, તેના બંને લોક બગડે છે. (૪૪) એજ રીતે યથાછંદ અને કુશીલિયા જિનેશ્વરના માર્ગને વિરાધી ભોગ રસમાં ગૃદ્ધ રહી કુરર પક્ષીની માફક નિરર્થક શોક કરીને

नाणगुणोववेयं । मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं—महानियंठाण वए पहेणं ॥ ४६ ॥

चरित्तमायारगुणण्णिए तओ—अणुत्तरं संजम पालियाणं । निरावसेसं खवियाण कंमं—उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं ॥ ४७ ॥ एवुग्गदंतेवि महातवोहणे—महामुणी महापइन्ने महायसे । महानियंठिज्ज मिणं महासुयं—से कहए महया वित्थरेणं ॥ ४८ ॥

एवं विसुद्धं समयाणुबद्धं—
सुदेसणं साहुकयं निसम्म ।
चंचंतरोमं च पवंचगत्तो—
कयंजली आह इमं नरिंदो ॥ ४९ ॥

तुज्झं सुलद्धं खुमणुस्सजम्मं—लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी । तुब्भे सणाहा य सबंधवा य—जं भे ठिया मग्गि जिणुत्तमाणं ॥ ५० ॥

भरिताप पामे छे. [४५] आ એ ज्ञान गुणयुक्त सुभाषित अनुशासन [शिक्षामणु] सांभળीने बुद्धिमान् पुरुषे कुशीળियानो सधળो मार्ग छोડीने महा निर्ग्रंथोना मार्गे चालवुं. (४६)

माटे જે चारित्र अने आचार गुणथी युक्त रही अनुसर संयम पाળे, ते सधળां कर्म खपावी अति उत्तम शाश्वत स्थान पामे. (४७) आ रीते ते उग्र, दांत, महा तपोधन, महा प्रतिज्ञावान्, महा यश, महा मुनि श्रेणिक राजाने आ महा निर्ग्रंथीय महा श्रुत मोटा विस्तारथी संभળावता हवा. [४८] आ रीते साधुकृत समयानुसारी विशुद्ध देशना सांभળीने चंचળ थयेला रोमांचोथी छवायल शरीरवाळो राजा अंजलि જોડीने आम कहेवा लाग्योः—हे महर्षि ! तारुं मनुष्य जन्म सुलब्ध छे, अने तमे રૂडी रीते लाभ मेળव्या छे. तमेज सनाथ अने बांधव छो के, જે माटे तमे जीनेश्वरना मार्गमां रहेला छो. (५०)

तुमेव नाहो सि अणाहयाणं–जीवाण सव्वाण चराचराण । अ-णाहया सुट्ठु वदंसिया मे–इच्छामि संमं अणुसट्ठि मेयं ॥ ५१ ॥ जो पुच्छिऊणं तुह झाण विग्घो–मए कओ कोवि महानियंठ । निमंतिया जं पहु भोगकज्जे–पसीय सव्वंमि तयं खमेसु ॥ ५२ ॥ एवं थुणित्ताण स रायसीहो–महंतमत्तीइ णगारसीहं । पहिट्ठवित्तो परिवारजुत्तो—पत्तो नरिंदो निययंमि ठाणे ॥ ५३ ॥ साहूवि मुद्दाइ स देसणाए—चिरं विबोहितु पभूयभव्वे । खवित्तु सव्वंपिहु कंमजालं—पत्तो महाणंदपयं महप्पा ॥ ५४ ॥

एवं जगत्त्रितयविस्मयकारि हारि—
निर्ग्रंथसाधुवृषभस्य निशम्य वृत्तं ।
सत्साधवो गुरुसमीपविबुद्धतत्त्वाः—
संशुद्धदेशनविधौ कुरुत प्रयत्नं ॥ ५५ ॥

॥ इति निर्ग्रंथसाधुकथा ॥

તમેજ સઘળા ચરાચર અનાથ જીવોના નાથ છો. મને તમે ઘણી સરસ રીતે અનાથતા સમજાવી. આ અનુશિષ્ટિ [શીખામણ]ને હું રૂડી રીતે ઇચ્છું છું. [૫૧] હે મહા નિર્ગ્રંથ! મેં આટલા સવાલો કરીને તમારા ધ્યાનમાં જે કાંઇ વિઘ્ન પાડયો છે, તથા તમોને ભોગના માટે નિમંત્રિત કર્યા, તે બધું મેહેરબાની કરીને માફ કરશો. [૫૨] આ રીતે તે સિંહ સમાન અનગારને તે સિંહ સમાન રાજા મોટી ભક્તિથી સ્તવીને હર્ષિત થયો થકો, પરિવારની સાથે પોતાના સ્થાને આવ્યો. (૫૩) અને તે મહાત્મા સાધુ પણ શુદ્ધ દેશનાવડે ચિરકાળ ઘણા ભવ્યોને પ્રતિબોધી સઘળાં કર્મ ખપાવી મહાનંદપદને પામ્યા (૫૪) આ રીતે ત્રણ જગતને વિસ્મયકારક અને મનોહર નિર્ગ્રંથ મહા મુનિનું ચરિત્ર સાંભળીને, હે સત્સાધુઓ! તમે ગુરૂની પાસેથી તત્ત્વ જાણીને શુદ્ધ દેશના કરવામાં પ્રયત્ન કરો. (૫૫)

એ રીતે નિર્ગ્રંથ સાધુની કથા છે.

આહ.—

देशना धर्मोपदेशः स च समनुग्रहाय समभावस्य साधोरविशेषेण-दातुमुचितः. किं सामायिकबाधाविधायिनीतिसंधानप्रायेण पात्रापात्र-विचारेणेति.

नैतदस्ति.

तदनुग्रहाय प्रवृत्तावतिसंधानायोगात्,—संनिपातातुरस्य क्षीरशर्क-रादिनिषेधनतः क्वाथादिप्रदानवत्. अतएव सामायिकबाधापि नास्ति, सर्वत्रानुग्रहबुद्धेस्तुल्यत्वादथवा सूत्रकार एव युक्त्यंतरमाह.

(मूलं)

सव्वंपि जओ दाणं—दिन्नं पत्तंमि दायगाण हियं ।
इहरा अणत्थजणगं—पहाणदाणं च सुयदाणं ॥ ९७ ॥

(પૂર્વ પક્ષ)

દેશના એટલે ધર્મોપદેશ, તે તો ભલું કરવા ખાતર સમભાવી સાધુને બધા પ્રત્યે સરખી રીતે દેવો જોઇએ. ત્યાં વળી સામાયિક [સમભાવ]ને બાધા કરનાર, અને લગભગ નીતિને સાંધનાર, પાત્રાપાત્રના વિચારની શી જરૂર છે ?

જવાબ.

એ વાત એમ નથી, કેમકે ભલું કરવા પ્રવૃત્તિ કરતાં લુચ્ચાઇ નહિ ગણાય. જે માટે જેને સંનિધાન થયો હોય, તેને દુધ, સાકર દેવી બંધ કરીને કવાથોજ અપાય છે, એટલા માટેજ એમ કરતાં સમભાવને બાધા પણ નથી થતી; કેમકે બધાપર અનુગ્રહ બુદ્ધિ સરખીજ રહે છે, અથવા સૂત્રકારજ બીજી યુક્તિ કહે છે.

મૂળનો અર્થ.

કોઈ પણ દાન પાત્રમાં આપ્યું, તોજ તેના દેનારાઓને હિતકારી થાય છે, નહિ તો અનર્થ કરનાર થઈ પડે છે. ત્યારે શ્રુતદાન તો સૌ કરતાં ઉત્તમ દાન છે. [૯૭]

[ટીકા]

सर्वमपि यतो दानं वितरणं दत्तं वित्तीर्णं पात्रे-सुपांसुपो भवंतीति वचनात्-पात्राय उचितग्राहकाय—

जीवादिपदार्थज्ञो—यः समभावेन सर्वजीवानां ।
रक्षार्थमुद्यतमतिः—स यतिः पात्रं भवति दातुः ॥

इत्यादिना श्रीमदुमास्वातिवाचकवर्णिताय-दायकानां दातृणां हितं कल्याणकारि भवतीति शेषः—इतरथा कुपात्रायानिरुद्धाश्रवद्वाराय-दत्तमिति प्रकृत-मनर्थजनकं संसारदुःखकारणं स्यादिति गम्यते. किंचातः प्रधानदानं च वर्त्तते श्रुतदानं देशनादिरूपमिति ततः किमित्याहः—

॥ मूलं ॥

सुट्ठुयरं च न देयं—एय मपत्तंमि नीयतत्तेहिं ।
इय देसणा विसुद्धा—इहरामिच्छत्तगमणाई ॥ ९८ ॥

ટીકાનો અર્થ.

જે માટે સઘળું પણ દાન પાત્રને એટલે ઉચિત ગ્રાહકને આપ્યું હોય, તોજ દાયક એટલે દેનારને હિત એટલે કલ્યાણકારિ થાય છે. ત્યાં ઉચિત પાત્ર તે શ્રીમાન્ ઉમાસ્વાતિ વાચકે આ રીતે વર્ણવેલ છેઃ— જે જીવાદિક પદાર્થોનો જાણનાર હોય, સમભાવથી સર્વ જીવોની રક્ષા કરવામાં ઉજમાળ હોય, તે યતિ દાન દેનારને પાત્ર છે.

ઇતરથા એટલે બીજી રીતે અર્થાત, આશ્રવ [પાપ] નાં દ્વારને ખુલ્લાં રાખનાર કુપાત્રને દીધેલું દાન અનર્થજનક એટલે સંસાર વધારનાર થાય છે.

એથી શું થયું તે કહે છે, ત્યારે દેશનાદિરૂપ શ્રુતદાન એ તો પ્રધાન દાનજ છે. તેથી શું થયું, તે કહે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

માટે આ શ્રુત દાનને તો ખાસ કરીને તત્વના જાણ પુરૂષોએ અપાત્રમાં નહિ આપવું. એ રીતેજ વિશુદ્ધ દેશના ગણાય છે. બીજી રીતે વર્ત્તતાં તો તેનાથી મિથ્યાત્વપર જવાય છે. (૯૮)

(ટીકા)

सुष्ठुतरमतिशयेन—चकारस्यावधारणार्थत्वा—ज्ञदेयमेवै तत् श्रुतोपदेशादिदानमपात्राय—सप्तम्याश्चतुर्थ्यर्थत्वात्—ज्ञाततत्त्वैर्विदितागमसद्भावैः—

उक्तंच

रत्तो दुट्ठो मूढो—पुव्वं वुग्गाहिओ य चत्तारि,
उवएसस्स अणरिहा—अरिहो पुण होइ मज्झत्थो.

इत्यपात्राणां परिहारेण पात्राणांचौचित्यवृत्त्या देशनापि क्रियमाणाशुद्धाभिधीयते.

इतरथान्यथा क्रियमाणायां तस्यां श्रोतृणां मिथ्यात्वगमनमादिशब्दात्प्रद्वेषातिशयाद्भक्तपानशय्याव्यवच्छेदादयः प्राणहान्यादयश्च देशकस्य दोषाः संभवंतीत्यतएव भावानुवृत्तिसारोगीतार्थः श्लाघ्यते.

ટીકાનો અર્થ.

સુષ્ટુત્તર એટલે અતિશયે કરીને અહીં ચકાર અવધારણાર્થે છે, તેથી ન દેવું, એટલે કે નહિજ દેવું. આ એટલે શ્રુતોપદેશાદિકરૂપ દાન, અપાત્રમાં એટલે અપાત્ર તરફ, કેમકે અહીં સાતમી વિભક્તિ ચોથીના અર્થે છે. જ્ઞાનતત્વ એટલે આગમના ખરા ભાવને જાણનાર પુરૂષોએ જે માટે કહેલું છે કે—

રક્ત, દ્વિષ્ટ, મૂઢ અને પૂર્વ વ્યુદ્ગ્રાહિત એ ચાર ઉપદેશને અયોગ્ય છે, પણ જે મધ્યસ્થ હોય, તેજ ઉપદેશને યોગ્ય છે.

અપાત્ર છોડીને પાત્રોમાં પણ ઉચિત રીતે દેશના અપાય, તે શુદ્ધ કહેવાય છે.

ઇતરથા એટલે બીજી રીતે દેશના કરતાં સાંભળનારાઓ મિથ્યાત્વમાં પડે, આદિ શબ્દથી દ્વેષનો વધારો થતાં ભાત, પાણી તથા શય્યા મળતી તૂટે, તથા વખતે ઉપદેશકના ખુન વગેરે પણ થાય, ઇત્યાદિ દોષો સંભવે છે, એટલા માટેજ ભાવાનુવૃત્તિ પ્રમાણે દેશના દેનાર ગીતાર્થ વખણાય છે.

यतवादि

मग्गे य जोयइ तहा–केई भावाणुवत्तणनएण,
बीयाहाणं पायंच–तदुचियाणं कुणइ एसो (गीतार्थइति)

ननुसूत्रभणितं प्ररूपयतीत्युक्तं,—यत्पुनःसूत्रानुक्तं विवादपदं लोकानां तत्र पृच्छयमानानां गीतार्थानां किमुचितमित्याह.

॥ मुलं ॥

जं च न सुत्ते विहियं–नय पडिसिद्धं जणंमि चिररूढं ।
समइविगप्पियदोसा–तंपि न दूसंति गीयत्था ॥ ९९ ॥

જે માટે કહેલું છે કે:—

ગીતાર્થ હોય, તે સાંભળનારની ઇચ્છા પ્રમાણે વર્ત્તીને તેને માર્ગમાં લાવે છે, તથા પ્રાયે ઉચિત જનોમાં બીજા ધ્યાન કરે છે.

વાહ, સૂત્રમાં કહેલું હોય, તે પ્રરૂપે એમ કહ્યું, તે સમજ્યા. પણ જે સૂત્રમાં નહિ કહી હોય, એવી લોકોમાં વિવાદ ભરેલી વાત ચાલતી હોય, તે બાબતમાં પૂછવામાં આવે, તો ત્યાં ગીતાર્થોનું શું કરવું ઉચિત છે ? આનો ઉત્તર કહે છે.

મૂળનો અર્થ.

જે સૂત્રમાં વિહિત પણ ન કર્યું હોય, અને પ્રતિબદ્ધ પણ ન કર્યું હોય, અને લોકમાં લાંબા વખતથી ચાલતું હોય, તેને પણ પોતાની મતિવડે કલ્પેલા દોષથી ગીતાર્થો દૂષિત નથી કરતા. (૯૯)

[ટીકા]

इह चशब्दः पुनरर्थे इति–यत् पुनरर्थजातमनुष्ठानं वा नैव सूत्रे सिद्धांते विहितं करणीयत्वेनोक्तं–चैत्यवंदनावश्यकादिवत्, न च प्रतिषिद्धं–प्राणातिपातादिवत्, अथ च जने लोके चिररूढमज्ञातादिभावं—स्वमतिविकल्पितदोषात् स्वाभिप्रायसंकल्पितदूषणात्तद—प्यास्तामागमोक्तं–न दूषयंति न युक्तमेतदिति परस्यनोपदिशंति संसारवृद्धिभीरवोगीतार्थाविदितागमतत्त्वा,—यतस्ते एवं श्रीभगवत्युक्तं पर्यालोचयंति.–

तथाहि

जे णं मंडुया अट्ठंवा हेउंवा पसिणं वा वागरणं वा अन्नायं वा अदिट्ठं वा अस्सुयं वा अपरिन्नायं वा, बहुजणमज्झे, आघवेइ पन्नवेइ परूवेइ दंसेइ निदंसेइ उवदंसेइ, से णं अरहंताण आसायणाए वट्टइ, अरहंतपन्नत्तस्स

ટીકાનો અર્થ.

અહીં ચ શબ્દ પુનરર્થે છે તેથી, અને જે બાબત કે અનુષ્ઠાન સિદ્ધાંતમાં વિહિત એટલે ચૈત્યવંદન અને આવશ્યક વગેરાની માફક કર્ત્તવ્યરૂપે પણ નહિ કહેલ હોય, અને પ્રાણાતિપાતાદિકની માફક પ્રતિષેધેલ પણ નહિ હોય, તે સાથે વળી તે લોકમાં ચિરરૂઢ હોય, એટલે તે કયારથી ચાલી, તેની ખબર પડતી ન હોય, તેને પણ સંસાર વૃદ્ધિભીરૂ ગીતાર્થો દૂષિત કરતા નથી, એટલે કે આ અયુક્ત છે, એમ બીજાને ઉપદેશતા નથી. જે માટે તેઓ શ્રી ભગવતીમાં કહેલી આવી વાત વિચારે છેઃ—

તે આ રીતે છે.

હે મંડુક ! જે માણસ અજાણ્યા, અણદીઠા, અણસાંભળ્યા, અને અણપરખ્યા અર્થ—હેતુ—પ્રશ્ન કે ઉત્તર ભર સભામાં કહે, જણાવે, પ્રરૂપે, બતાવે, સાબિત કરે કે, રજુ કરે, તે અર્હત્ ભગવાનોની તથા કેવલિઓની આશાતના કરે છે, અને તે-

धम्मस्स आसायणाए वट्टइ, केवलीणं आसायणाए वट्टइ, केवलिपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए.

इदं च गीतार्थानां चेतसि चकास्ति—तथाहि

॥ मूलं ॥

संविग्गा गीयतमा–विहिरसिया पुव्वसूरिणो आसि।
तद्दूसिय मायरियं–अणइसई को निवारेइ ॥ १०० ॥

[टीका]

संविग्नामंक्षुमोक्षाभिलाषिणो गीयतमत्ति पदैकदेशे पदप्रयोगो यथा भीमसेनो भीम इति–ततो गीता गीतार्थाः–तमपि प्रत्यये गीतार्थतमा इतिभवत्यतिशयगीतार्था इते भावस्तत्काले बहुतमागमसद्भावात्–तथा

મના ધર્મની પણ આશાતના કરે છે.

વળી તેમના ચિત્તમાં આ વાત પણ રહ્યુ રે છે કેઃ—

મૂળનો અર્થ.

પૂર્વ સૂરિઓ સંવિગ્ન ઉત્તમ ગીતાર્થ અને વિધિના રસિક હતા, તેમણે નહિ દૂષેલ આચરિતને હાલના વખતમાં અતિશય રહિત કયો માણસ નિવારણ કરે ? [૧૦૦]

ટીકાનો અર્થ.

સંવિગ્ન એટલે જલદી મોક્ષ ઇચ્છનારા, અને અતિશય ગીતાર્થ. કેમકે તેમના વખતે બહુ આગમો હતા, તથા સંવિગ્ન હોવાથીજ વિધિ રસિક એટલે વિધિમાં જેમને રસ પડતો હતો, એવા અર્થાત્ વિધિ બહુ માની પૂર્વસૂરિઓ એટલે ચિરંતન આચાર્યો હતા. તેમણે અણદૂષેલું, એટલે અનિષેધેલું. આચરિત એટલે બધા ધાર્મિક લોકમાં ચાલતો

विधिरसो विद्यते येषां विधिरसिका विधिबहुमानिनः-संविग्नत्वादेव पूर्वसूरयश्चिरंतनमुनिनायका आसन्नभूवन् तैरदुषितमनिषिद्धमाचरितं सर्वधार्मिकलोकव्यवहृत-मनतिशयी विशिष्टश्रुतावध्याद्यतिशयविकलः को निवारयति पूर्वपूर्वतरोत्तमाचार्याशातनाभीरूनकश्चिदिति ?

तथैतदपिगीतार्थाः परिभावयंति

[मूलं]

अइ साहस मेयं जं उस्सुत्त-परूवणा कडुविवागा।
जाणंतेहिवि दिज्जइ निद्देसो सुत्तबज्झत्थे ॥ १०१ ॥

(टीका)

ज्वलज्ज्वालानलप्रवेशकारिभ्यसाहसादप्यधिकमतिसाहसमेतद्वर्त्तते यदुत्सूत्रप्ररूपणा सूत्रनिरपेक्षदेशना कटुविपाका दारुणफला जानानैरवबुध्य-

---

व्यवहार, तेने अनतिशयी એટલે વિશિષ્ટ શ્રુત કે અવધિ વગેરે અતિશય રહિત કયો માણસ પૂર્વ પૂર્વતર ઉત્તમ આચાર્યોની આશાતનાથી ડરનારો હોય નિવારી શકે ? કોઇજ નહિ.

વળી તે ગીતાર્થો આ પણ વિચારે છે કે—

મૂળનો અર્થ.

ઉત્સૂત્ર પ્રરૂપણા કડવાં ફળ આપનારી છે, એવું જાણતાં છતાં પણ જેઓ સૂત્ર બાહ્ય અર્થમાં નિશ્ચય આપી દે છે, તે અતિ સાહસ છે. (૧૦૧)

ટીકાનો અર્થ.

બળતી આગમાં પેસનાર માણસના સાહસ કરતાં, પણ અધિક આ અતિ સાહસ છે કે, સૂત્ર નિરપેક્ષ દેશના કડવાં, એટલે ભયંકર ફળ આપનારી છે, એમ જાણનારા

मानैरपि दीयते वितीर्यते निर्देशो निश्चयः सूत्रबाह्ये जिनेंद्रागमानुक्तेर्थे वस्तुविचारे.—किमुक्तं भवति ?

दुब्भासिएण इक्केण मरीई दुक्खसागरं पत्तो ।
भमिओ कोडाकोडिं–सागरसिरिनामधिज्जाणं ॥ १ ॥
उस्सुत्त माचरंतो–बंधइ कम्मं सुचिक्कणं जीवो ।
संसारं च पवड्ढइ–मायामोसं च कुव्वइ य ॥ २ ॥
उम्मग्गदेसओ मग्ग–नासओ गूढहिययमाइल्लो ।
सढसीलो य ससल्यो–तिरियाउं बंधए जीवो ॥ ३ ॥
उम्मग्ग देसणाए–चरणं नासंति जिणवरिंदाणं ।
वावन्नदंसणा खलु–नहु लब्भा तारिसा दट्ठुं ॥ ४ ॥

इत्याद्यागमवचनानि श्रुत्वापि स्वाग्रहग्रहग्रस्तचेतसो यदन्यथान्यथा

હોઇને પણ સૂત્ર બાહ્ય એટલે જિનાગમમાં નહિ કહેલ અર્થમાં એટલે વસ્તુ વિચારમાં નિર્દેશ એટલે નિશ્ચય આપી દે છે.

એટલે શું કહ્યું, તે કહે છેઃ—

મરીચિ એક દુર્ભાષિતથી દુઃખના દરિયામાં પડી ક્રોડાક્રોડ સાગરોપમ ભમ્યો. (૧) ઉત્સૂત્ર આચરતાં જીવ ચીકણાં કર્મ બાંધે છે, સંસાર વધારે છે, અને માયામૃષા કરે છે. (૨) ઉન્માર્ગની દેશના કરનાર, માર્ગનો નાશ કરનાર, ગૂઢ હૃદયી, માયાવી, શઠ, અને સશલ્ય જીવ તિર્યંચનું આયુષ્ય બાંધે છે. [૩]

જેઓ ઉન્માર્ગની દેશનાથી જિનેશ્વરના ચારિત્રનો નાશ કરે છે, તેવા દર્શન ભ્રષ્ટ લોકોને જોવા પણ સારા નહિ. (૪)

આ વગેરે આગમનાં વચનો સાંભળીને પણ પોતાના આગ્રહમાં ગ્રસ્ત બની જે

व्याचक्षते विदधति च—तन्महासाहसमेवा—नर्वाक्पारासारसंसारपारावारोदरविवरभाविभूरिदुःखभारांगीकारादिति.

आह—किमेवमागमार्थमवबुध्यापि कोप्यन्यथावादमाद्रियते ? सत्यमाद्रियते—यतआह.—

॥ मूलं ॥

दीसंति य दढ्ढसिणो—णेगे नियमइपउत्तजुत्तीहिं ।
विहिपडिसेहपवत्ता—चेइयकिच्चेसु रूढेसु ॥ १०२ ॥

(टीका)

दृश्यंते दुःषमारूपे वक्रजडबहुले काले दृढ्ढसिणो महासाहसिका रौद्रादपि भवपिशाचादबिभ्यतोनेके निजमतिप्रयुक्ताभिरात्मीयबुद्धिव्या-

---

કાંઇ આડું અવળું બોલે છે, તથા કરે છે, તે મહા સાહસજ છે; કેમકે એ તો અપાર, અને અસાર સંસારરૂપ દરિઆના પેટમાં થનાર અનેક દુઃખનો ભાર એકદમ અંગીકાર કરવા તુલ્ય છે.

શું વારૂ આ રીતે આગમનો અર્થ જાણીને પણ કોઇ અન્યથાવાદ કરે છે કે ? હા, તેવા પણ છે. જે માટે કહે છે કે:—

મૂળનો અર્થ.

એવા પણ અનેક દૃઢ્ઢર લોકો દેખાય છે કે, જેઓ પોતાની મતિથી જોડેલી યુક્તિઓવડે ચૈત્ય સંબંધી ચાલતા કૃત્યોમાં હા ના પાડતા રહે છે. [૧૦૨]

ટીકાનો અર્થ.

અઝા વક્ર જડવાળા આ દુઃષમા કાળમાં દૃઢ્ઢસિણ એટલે મહા સાહસિક અર્થાત્ ભયાનક ભવ પિશાચથી પણ નહિ ડરતારા અનેક જનો નિજ મતિ કલ્પિત યુક્તિઓથી

पारिताभिर्युक्तिभिरुपपत्तिभिर्विधिप्रतिषेधप्रवृत्ता इति कासांचित् क्रियाणामागमानुक्तानामपि विधौ करणे प्रवृत्ता अन्यासामागमानिषिद्धतया चिरंतनजनाचरितानामप्यविधि—रयुक्ता एता न कर्त्तव्या धार्मिकै—रित्येवं प्रतिषेधे प्रवृत्ताः—केषु ? चैत्यकृत्येषुस्नात्र—कारणादिषु रूढेषु पूर्वपुरुषपरंपरया प्रसिद्धेषु पूर्वरूढिरविधिः—इदानींतनप्रवृत्तिर्विधिरित्येवं वादिनो नेके दृश्यंते महासाहसिका इति.

ननु तेषां स्वमत्या धर्मार्थिनां सर्वयत्नेन तथा प्रवृत्तिर्गीतार्थैः श्लाघनीयानवेत्याह.

[मूलं]

तं पुण विसुद्धसद्धा—सुयसंवायं विणा न संसंति ।
अवहीरिऊण नवरं—सुयाणुरूवं परूवंति ॥ १०३ ॥

એટલે પોતાની બુદ્ધિથી ઉભી કરેલી યુક્તિઓથી વિધિ પ્રતિષેધ કરતા દેખાય છે, એટલે કે કેટલીક ક્રિયાઓ આગમમાં નથી કહી, તે કરતા રહે છે, અને બીજી કેટલીક આગમમાં અનિષિદ્ધ હોઇ, ચિરંતન જનોએ આચરેલી, તેને અવિધિ કહીને " ધાર્મિક જનોએ આવી ક્રિયાઓ કરવી ન જોઇએ " એમ કહી તેને નિષેધ કરવામાં પ્રવર્તે છે. તે શેમાં પ્રવર્તે છે ? સ્નાત્ર કરાવવું વિગેરે ચૈત્ય કૃત્યોમાં જે ચૈત્ય કૃત્ય રૂઢ, એટલે પૂર્વ પુરૂષોની પરંપરાએ પ્રસિદ્ધ છે. " પૂર્વની રૂઢિ તે અવિધિ, અને હાલની પ્રવૃત્તિ, તે વિધિ. " એમ કહેનારા મોટા સાહસિક પુરૂષો અનેક જોવામાં આવે છે.

● મૂળનો અર્થ.

તે પ્રવૃત્તિને વિશુદ્ધ શ્રદ્ધાવાળા પુરૂષો શ્રુતના પુરાવા વિના પ્રશંસતા નથી. કિંતુ તેની અવધીરણા [ઉપેક્ષા] કરીને શ્રુતને અનુસરતું પ્રરૂપે છે. (૧૦૩)

(ટીકા)

तां पुनस्तेषां प्रवृत्तिं विशुद्धागमबहुमानसारा श्रद्धा येषां ते विशुद्धश्रद्धाः श्रुतसंवादं विना श्रुतभणितमंतरेण न शंसंति नानुमन्यंते–नवरं केवलमवधीर्य मध्यस्थभावेनोपेक्ष्य श्रुतानुरूपं प्ररूपयंति–यथा सूत्रे भणितं तथैव विविंदिषूणामुपदिशंतीति.

इत्युक्तं शुद्धदेशनारूपं सप्रपंचं तृतीयं श्रद्धालक्षणं–संप्रति स्खलितपरिशुद्धिरिति चतुर्थं श्रद्धालक्षणमाह.

॥ मूलं ॥

अइयारमकलंकं—पमायमाईहि कहवि चरणस्स ।
जणियंपि वियडणाए—सोहंति मुणी विमलसद्धा ॥ १०४ ॥

ટીકાનો અર્થ.

તેને એટલે તેમની પ્રવૃત્તિને વિશુદ્ધ એટલે આગમના બહુ માનવાળી શ્રદ્ધાવાળા જનો શ્રુતસંવાદ વિના એટલે શ્રુતમાં કહેલી સાબિત ન થાય તો, અનુમત કરતા નથી. કિંતુ મધ્યસ્થ ભાવે તેની ઉપેક્ષા કરીને શ્રુતાનુરૂપ એટલે જેમ સૂત્રમાં કહેલું હોય, તેમ જિજ્ઞાસુઓને બતાવે છે.

એ રીતે શુદ્ધ દેશનારૂપ ત્રીજું શ્રદ્ધાનું લક્ષણ વિસ્તારથી કહી બતાવ્યું. હવે સ્ખલિત પરિશુદ્ધિરૂપ ચોથું લક્ષણ કહે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

પ્રમાદ વગેરેથી ચારિત્રમાં કોઇ રીતે અતિચાર મળકલંક લાગ્યો હોય, તો તેને પણ વિમળ શ્રદ્ધાવાન્ મુનિઓ વિકટના (આલોચના)થી શોધી નાંખે છે. (૧૦૪)

[ટીકા]

अतिचरणमतिचारो मूलोत्तरगुणमर्यादातिक्रमः स एव डिंडीरपिंडपांडुरगुणगणमालिन्यहेतुत्वान्मलं तच्चरणशशधरस्य कलंकइव तं प्रमादादिभिः प्रमाददर्पकल्पैः—राकुट्टिकायाश्चारित्रिणः प्रायेणासंभवात्—कथमपि कंटकाकुलमार्गे यत्नेनापि गच्छतः कंटकभंगवच्चरणस्य चारित्रस्य जनितमुत्पादितं.

आकुट्टिकादिनां पुनः स्वरूपमिदं.

आउट्टिया उ तिव्वा—दप्पो पुण होइ वग्गणाईओ ।
विगहाइओ पमाओ—कप्पो पुण कारणे करणं ॥

उपलक्षणं चैतद्दशविधायाः प्रतिसेवायाः—सा चेयं.—

दप्प[१] प्पमाय[२] णाभोग[३]—आउरे[४] आवईसुय[५] ।
संकिए[६] सहसागारे[७]—भए[८] पओसे[९] य वीमंसा[१०] ॥

ટીકાનો અર્થ.

અતિચાર એટલે મૂળ ગુણ તથા ઉત્તર ગુણની મર્યાદાનો અતિક્રમ, તેજ ડિંડીરપિંડ (ધીણુના ગોહા)ની માફક ધોળા ગુણગણને મલિન કરનાર હોવાથી મળ કહેવાય, તે રૂપ ચારિત્રચંદ્રનો કલંક તેને પ્રમાદાદિકથી એટલે પ્રમાદ, દર્પ અને કલ્પથી—બાકી આકુટ્ટિકા તો પ્રાયે ચારિત્રવાનને સંભવે નહિ—કોઇ પણ રીતે એટલે કે કાંટાવાળા માર્ગમાં યત્નથી જનારને પણ કાંટો લાગે તે માફક ચારિત્રમાં લગાડયો હોય,—

ત્યાં આકુટ્ટિકાદિકનું સ્વરૂપ આ છે.

તીવ્રપણાથી જાણીબૂઝી કરવું તે આકુટ્ટિકા છે. દોડમ દોડાથી કરવું તે દર્પ છે. વિકથા વગેરે પ્રમાદ છે, અને કારણે કરવું તે કલ્પ છે.

એ દશવિધ પ્રતિસેવાના ઉપલક્ષણરૂપે છે. દશવિધ પ્રતિસેવા આ છેઃ—

દર્પ, પ્રમાદ, અનાભોગ, આતુર (માંદગી), આપત્, શંકિત, સહસાકાર, ભય, પ્રદ્વેષ અને વિમર્શ [એ દશ કારણે પ્રતિસેવા થાય છે].

अपिशब्दः संभावने–संभाव्यत एतच्चारित्रिणो विकटनया लोचनया शोधयंत्यपनयंति मुनयो यतयो विमलश्रद्धाः निःकलंकधर्माभिलाषाः शिवभद्रमुनिवत्.

तथाहि.

इह कोसंबिपुरीए–पुव्वदिसुज्जाणभवणकयवासो । संनिहियपाडिहेरो जक्खो निवसइ फरसुपाणी ॥ १ ॥ अन्नदिणे तब्भवणे–सुत्तत्थविऊ सुदंसणो साहू । काउस्सग्गेण ठिओ–विसेसपडिवन्नतवकम्मो ॥ २ ॥ तच्चित्तखोहणत्थं–जक्खो तं डसइ भुयगरूवेणं । करिरूवेणं पीडइ–तस्सइ अट्टट्टहासेहिं ॥ ३ ॥ तहविहु अक्खुहियमणं–तं समणं दट्ठु फरसुपाणिसुरो । नमिउं विन्नवइ इमं–उच्छलियातुच्छहरिसभरो ॥ ४ ॥ उवसग्गवग्ग मुग्गं–जं तुह मुणिपवर पावभरसज्जो । सज्जोगसालिणोविहु–काह

અપિશબ્દ સંભાવનાર્થે હોવાથી અલબત ચારિત્રિયાને એ રીતે અતિચાર કલંક લાગતો સંભવે, તોપણ તેને વિકટના એટલે આલોચનાવડે વિમળ શ્રદ્ધાવાળા એટલે નિઃકલંક ધર્મની અભિલાષાવાળા યતિઓ શોધી નાખે છે. શિવભદ્ર મુનિની માફક.

શિવભદ્ર મુનિની કથા આ છેઃ—

અહીં કૌશાંબીનગરીમાં પૂર્વ દિશાના ઉદ્યાનમાં રહેલા ભવનમાં વસનાર પરશુપાણી નામે યક્ષ રહેતો, અને તેના પડિહારો (ચાકર દેવો) પણ તેની પડોશમાંજ રહેતા હતા. [૧]

એક વેળા તે ભવનમાં સૂત્રાર્થનો જાણ સુદર્શન નામે સાધુ વિશેષ તપકર્મ કરવા પ્રતિમા લઈ કાયોત્સર્ગથી ઉભો રહ્યો. (૨) તેનું મન ડગાવવા માટે તે યક્ષ તેને સર્પનું રૂપ કરી ડંસવા લાગ્યો, હાથીનું રૂપ કરી પીડવા લાગ્યો, તથા અટ્ટહાસ્ય કરી બીવરાવવા લાગ્યો. (૩) તેમ છતાં તે મુનિનું મન ક્ષોભ પામ્યું નહિ, ત્યારે તે હર્ષ પામીને તેને નમીને વિનવવા લાગ્યો કે—[૪] હે મુનીવર ! તમારા જેવા સદ્યોગશાલિને પણ પાપ કરવા તૈયાર રહેનાર, મેં જે ઉગ્ર ઉપસર્ગ કર્યા છે, તે હે પૂજ્ય ! ક્ષમા

महं खमसु तं भंते ॥ ५ ॥ इय चरणजुयलसंठविय-मउलिकमलो खमाविउं साहुं । सोसो व्व समीवगओ-जक्खो तं सेवए संमं ॥ ६ ॥

अह तत्थ दुवि पुरोहिय-पुत्ता सिवभद्दसिरियगभिहाणा । पत्तातं अइदुक्कर-तवकिसियंगं नियंति मुणिं ॥ ७ ॥ तो तेहि सहास मिणं-पयंपियं जं मुणिंद धम्मत्थं । पीडिज्जइ किर अप्पा-बाढ मजुत्तं तयं एयं ॥ ८ ॥

जओ—

धम्माओ धणलाभो-तत्तो कामो तओ य संसारो । धम्मस्स अज्जणं ता-मूलाउच्चिय दढ मजुत्तं ॥ ९ ॥ इय ते उवहासपरे-दट्ठुं जक्खो फुरंतगुरुकोवो । उप्पाडिय सियफरसुं-महाविओ तेसि हणणत्थं ॥ १० ॥

तयणु भयलोललोयण-तरलियतारा पकंपिरसरीरा । लग्गा मुणिचलणेसुं-भणिरा " तं अम्हसरणं " त्ति ॥ ११ ॥ ते दट्ठु साहुसरणे

કરો. [૫] એમ કહીને તે યક્ષ તે સાધુના ચરણકમળમાં પોતાનું શિરકમળ નમાવી, તેને ખમાવીને શિષ્યની માફક સમીપે રહીને તેની સેવા કરવા લાગ્યો. [૬]

હવે ત્યાં શિવભદ્ર અને શ્રીયક નામે બે પુરોહિતના પુત્ર આવી ચડયા. તેઓએ તે અતિ દુષ્કર તપથી કૃશ થએલ અંગવાળો તે મુનિ જોયો. (૭) ત્યારે તેઓ હસતા થકા બોલ્યા કે, હે મુનીંદ્ર ! ધર્મના અર્થે પોતાના આત્માને પીડવો, એ તો અતિ અયુક્ત છે. [૮] જે માટે ધર્મથી ધન મળે છે, ધનથી કામ મળે છે, અને કામથી સંસાર થાય છે, ત્યારે મૂળ ધર્મ કરવો, એજ ભારે અયુક્ત છે. [૯] આ રીતે તેમને ઉપહાસ કરતા જોઈ યક્ષને ભારે ગુસ્સો લાગ્યો, તેથી તે તીક્ષ્ણ કુહાડો લઈને તેમને મારવા માટે દોડયો. (૧૦)

ત્યારે ભયથી આંખોની કીકીઓ ફેરવતા, અને શરીરે ધ્રૂજતા થકા તેઓ " તું અમને બચાવ " એમ કહીને મુનિને પગે પડયા. [૧૧] ત્યારે તેમને સાધુના શરણે

जक्खो जाओ पसंतमन्नुभरो। पारियउस्सग्गेणं-अह मुणिणा ते इमं वुत्ता ॥ १२ ॥ भद्दा सयलं किरियं-कुणंति मुणिणो सिवत्थमेव सया। तं पुण लब्भइ गयसयल-रागदोसेण धंमेण ॥ १३ ॥ धंमेण सरागेण उ-लब्भइ सग्गाइयं फलं सोवि। जायइ परंपराए-नियमेणं मुक्खहेउ त्ति ॥ १४ ॥ धम्माओ धणलाभो—त्ति जंपि वुत्तं तयंपि नहु जुत्तं। सव्वेविहु पुरिसत्था-धम्माउच्चिय जओ भणिया ॥ १५ ॥

उक्तंच—

धनदो धनार्थिनां धर्मः—कामदः सर्वकामिनां। धर्म एवापवर्गस्य-पारंपर्येण साधकः ॥ १६ ॥ जंपिहु धणभोगाई-भणियं भवकारणं तमवि इत्थ। नेयं किलिट्ठसत्ताण-नउण इयराण जं भणियं ॥ १७ ॥ सा कावि कला झायंति नियमणे जाणिऊण परमत्थं। न्हायंति घडसएणवि-छिप्पंति न बिंदुणाचेव ॥ १८ ॥ सुच्चइ य भरहसगरा-इणो

પડેલા જોઇને યક્ષ ઠંડો પડ્યો, એટલામાં કાયોત્સર્ગ પારીને મુનિએ તેમને આ રીતે કહ્યું:—[૧૨] હે ભદ્રો ! મુનિઓ હમેશાં સઘળી ક્રિયા કેવળ મોક્ષને માટેજ કરે છે, અને તે મોક્ષ સકળ રાગ દ્વેષથી રહિત ધર્મથીજ મળે છે. (૧૩) બાકી સરાગ ધર્મથી સ્વર્ગાદિક ફળ મળે છે, છતાં પરંપરાએ તે પણ નિયમા મોક્ષનો હેતુજ થાય છે. [૧૪] વળી " ધર્મથી ધનનો લાભ થાય છે, " એમ જે તમે કહ્યું, તે પણ યુક્ત નથી. કેમકે સઘળા પુરૂષાર્થ ધર્મથીજ થાય છે. [૧૫]

કહેલું છે કે, ધર્મ ધનાર્થીને ધન આપે છે, કામાર્થીને કામ પૂરે છે, અને પરંપરાએ તે મોક્ષ આપે છે. (૧૬) વળી તમે જે ધનના ભોગાદિકને સંસારના કારણ કહ્યા, તે પણ કિલષ્ટ પરિણામિ જીવોને આશ્રી છે, બાકી અકિલષ્ટ પરિણામિને તે નડતા નથી. જે માટે કહ્યું છે કે:—કોઇ એવી પણ કળા છે કે, જેનાવડે પરમાર્થને જાણીને પોતાના મનમાં એવું ધ્યાન કરે છે કે, જેના લીધે સેંકડો ઘડાથી નહાતાં છતાં બિંદુ માત્રથી પણ ભીંજાતા નથી. (૧૭-૧૮) આપણે સાંભળીએ પણ છીએ કે, ભરત અને

इहं सुचिरभुत्तवरभोगा । होउं अकिलिट्ठमणा—लोयग्गठियं पयं पत्ता ॥ १९ ॥

इय सोउं पडिबुद्धा—पुणोपुणो खामिउं त मत्तराहं । तस्स मुणिस्स समीवे—ते दोवि वयं पवज्जंति ॥ २० ॥ मुणियजइजुग्गकिरिया—गुरुमूले पढियबहुयसुत्तत्था । सुचिरं उग्गविहारा—खंतिपहाणा तवंति तवं ॥ २१ ॥ अह असुहकंमवसओ—सिरिओ सिढिलेइ चरणकरणभरं । धरइ मणे जाइमयं—न कुणइ विणयं गुरूसुं पि ॥ २२ ॥ तो सिवभद्दो सिरियं—भणेइ भोभद्द चरणकरणंमि । भवसयसहस्सदुलहे—खणंपि किह होसि सिढिलमणो ? ॥ २३ ॥ गुरूविणयपरो निच्चं—मणंपि मा कुणसु जाइमय मेवं । जं जाइमयाईहिं—दुहिओ परिभमइ भव गहणे ॥ २४ ॥

उक्तंच.—

जाइ[1]कुल[2]रूव[3]बल[4]सुय[5]—तव[6]लाभि[7]स्सरिय[8] अट्ठमयमत्तो । ए-

---

સગર વગેરે પુરૂષો બહાં ચિરંકાળ ઉત્તમ ભોગ ભોગવીને અક્લિષ્ટ મનવાળા રહી મુક્તિપદને પામ્યા છે. [૧૯]

એમ સાંભળીને તે બંને જણા પ્રતિબોધ પામી, તે અપરાધ વારંવાર ખમાવીને તે મુનિની પાસે દીક્ષા લેતા હવા. [૨૦] તેઓ યતિને યોગ્ય ક્રિયા જાણી લઈ ગુરૂની પાસેથી ઘણા સૂત્રાર્થ શીખી ચિરંકાળ ઉગ્ર વિહાર કરતા રહી ક્ષમા સહિત તપ કરવા લાગ્યા. [૨૧] હવે અશુભ કર્મના વશે શ્રીયક ચારિત્રમાં શિથિળ થવા લાગ્યો, તે મનમાં જાતિનો મદ ધરીને ગુરૂના વિનયને પણ છોડવા લાગ્યો. [૨૨] ત્યારે તેને શિવભદ્ર કહેવા લાગ્યો કે, હે ભદ્ર ! લાખો ભવે પણ દુર્લભ, આ ચરણકરણમાં તું ક્ષણ વાર પણ શિથિળ મન કેમ કરે છે ? [રક્ષ] તું નિત્ય ગુરૂના વિનયમાં તત્પર રહે, અને લગાર પણ જાતિમદ કર માં. કેમકે જાતિમદ વગેરેથી જીવ દુઃખી થઇને સંસારરૂપ અટવીમાં રઝળે છે. [૨૪]

કહ્યું છે કે, જાતિ, કુળ, રૂપ, બળ, શ્રુત, તપ, લાભ, અને ઐશ્વર્ય એ આઠ

याइंचिय बंधइ–भसुहाइं बहुंच संसारे ॥ २५ ॥ तो भद्दनियं दोसं–एयं गीयत्थसुगुरूमूलंमि । तं आलोयसु संमं–नाउं आलोयणाइविहिं ॥ २६ ॥

तद्यथा.—

पडिसेवा[1]पडिसेवग–दोस[2]गुणा[3] गुरुगुणाय[4] इह नेया । सम्मवि-सोहीइ गुणा[5] सम्ममणालोयओ सिक्खा[6] ॥ २७ ॥ तह पडिसेवा द-प्प[1]–[2]माय[2]णाभोग[3]सहसकारेय[4] । आउर[5] आवइ[6] संकिय[7]–भय[8]प्प-ओसा य[9] वीमंसा[10] ॥ २८ ॥

वग्गणमाई दप्पो–इह कंदप्पो उ भन्नइ पमाओ । विस्सरिय म-णाभोगो–सहसाकारो अकम्ह त्ति ॥ २९ ॥ छुहतण्हवाहिघत्थो–जं सेवइ आउरा भवे एसा । दव्वाइ अलंभे पुण–चउव्विहा आवई होइ ॥ ३० ॥

મદથી મત્ત થઇ, એજ અશુભપણે બાંધે, અને સંસારમાં ઘણો [રઝળે]. (૨૫) માટે હે ભદ્ર ! આ તારા દોષને ગીતાર્થ ગુરૂની પાસે તું સમ્યક્ રીતે આલોચનાની વિધિ જાણી કરીને આલોવ. (૨૬)

આલોચનાની વિધિ આ પ્રમાણે છેઃ—

પ્રતિસેવા, પ્રતિસેવકના દોષ, ગુણ, ગુરૂના ગુણ, સમ્યક્ વિશોધિના ગુણ, અને સમ્યક્ રીતે આલોચના નહિ કરનારને શિક્ષા એ દ્વાર જાણવાં જોઇએ [૨૭] ત્યાં પ્રતિસેવા દશ પ્રકારે છેઃ—દર્પ, પ્રમાદ, અનાભોગ, સહસાકાર, આતુર, આપત, શંકિત, ભય, પ્રદ્વેષ અને વિમર્શ. [૨૮]

દોડાદોડ કરવી, એ દર્પ, કંદર્પ તે પ્રમાદ, વીસરી જવું તે અનાભોગ, અને અકસ્માત્ થને તે સહસાકાર કહેવાય છે. [૨૯] ભૂખ, તરસ, કે વ્યાધિ ગ્રસ્ત થઇ, જે સેવે, તે આતુર પ્રતિસેવા કહેવાય છે, અને દ્રવ્યાદિકના અલાભે ચાર પ્રકારની આપત્ પ્રતિસેવા છે. [૩૦] શક ભરેલું આધા કર્માદિક સેવે, તે શંકિત પ્રતિસેવા. ભય તે

संकिय माकम्हामाइ-संकिए, सीहमाईणं च भयं । कोहाईओ पओसो-वीमंसा सेहमाईणं ॥ ३१ ॥

(दारं)

" आकंपईत्ता[१] अणुमाणइत्ता[२] "-जं दिट्ठं[३] बायरं व[४] सुहुमं वा[५] छन्नं[६] सद्दाउलयं[७]-बहुजण[८] अव्वत्त[९] तस्सेवी[१०] ॥ ३२ ॥

इय पडिसेवगदोसा-आकंपिय तत्थ भत्तिमाईहिं । गुरुअवराहं लहुया-णुमाणओ तहय आलोए ॥ ३३ ॥ जं दिट्ठंति परेणं-आलोयइ बायरंति नहु सुहुमं । अह सुहुमं आलोयइ-विस्संभत्थं नउण थूलं ॥ ३४ ॥ छन्नं अव्वत्तसरं-सद्दाउलयंति तुरियसद्देणं । तं चेवय पच्छित्तं-आलोयइ बहुजणाण पुरो ॥ ३५ ॥ अव्वत्तस्स अगीयस्स तस्स-आसेवगो य तस्सेवी । इत्तो दस आलोयग—गुणा इमे हुंति नायव्वा ॥ ३६ ॥ जाइ[१]कुल[२]विणय[३]उवसम[४]—इंदियजय[५] नाण[६] दंसण[७] समग्गा । अ-

---

સિંહ વગેરેનું જાણવું, પ્રદ્વેષ તે ક્રોધાદિક જાણવા, અને શિષ્યાદિકની ચિંતા તે વિમર્શ જાણવો. (૩૧)

[પહેલું દ્વાર પત્યું, હવે બીજું કહે છે.]

આકંપીને આલેવે, અટકળથી આલોવે, જે દેખાયું તે આલોવે, બાદર આલોવે, સૂક્ષ્મ આલોવે, છાનો આલોવે, ગડબડ કરતો આલોવે, બહુ જનમાં આલોવે, અગીતાર્થ પાસે આલોવે, તેને સેવનો રહી આલોવે—એ દશ દોષ જાણવા. (૩૨)

એ રીતે પ્રતિસેવકના દોષ છે, ત્યાં આકંપીને એટલે ભક્તિ વગેરેથી લગાર ધીમા પાડીને આલોવે, અટકળથી એટલે મોટા અપરાધને હલકો જણાવીને આલોવે, જે દેખાયું એટલે બીજાને જોવામાં આવ્યું હોય, તે આલોવે, બાદર આલોવે, પણ સૂક્ષ્મ નહિ, વિશ્વાસ ઉપજાવવા સૂક્ષ્મ આલોવે, પણ સ્થૂળ નહિ આલોવે, છાનું એટલે અવ્યક્ત સ્વરે આલોવે, શબ્દો કુળ એટલે ઉતાવળું બોલી આલોવે, ઘણા જણની આગળ પાછું તેજ પ્રાયશ્ચિત્ત આલોવે, અવ્યક્ત એટલે અગીતાર્થના પાસે આલોવે, તત્સેવી એટલે તેને

णणुत्ताविᵢ८ अमाईᵢ९—चरणजुयाᵢ१० लोयगा भणिया ॥ ३७ ॥

जाइजुओ पाएणं—न कुणइ असुहं कयं तु आलोए। कुलसंपन्नो संमं—पच्छित्तं वहइ गुरुदिन्नं ॥ ३८ ॥ नाणी किच्चाकिच्चं—जाणइ सद्दहइ दंसणी सोहिं। चरणी तं पडिवज्जइ—सेसपया हुंति पयडत्था ॥ ३९ ॥ आयारवᵢ१ माहारवᵢ२—ववहारुᵢ३व्वीलएᵢ४ पकुव्वी यᵢ५। अपरिस्सावीᵢ६ निज्जवᵢ७—अवायदंसीᵢ८ गुरू भणिओ ॥ ४० ॥ नाणायाराइजुओ—आयारवᵢ१ सीसकहिय मवराहं। धारंतो आहारवᵢ२—ववहारो पंचहा इणमो ॥ ४१ ॥

आगमᵢ१सुयᵢ२ आणाᵢ३ धारणायᵢ४ जीयंचᵢ५ होइ ववहारो। केवलि मणोहि चउदस—दसनवपुव्वी य पढमोत्थ ॥ ४२ ॥ आयारप्पकप्पाई

सेवतो थको आलोवे. आ रीते दश दोषनुं द्वार पूर्युं. हवे आलोचकना दश गुण आ छे.—जाति १, कुळ २, विनय ३, उपशम ४, इंद्रियजय ५, ज्ञान ६, दर्शन ७, अे सातें करी सहित होय, अननुतापि, अमायी, अने चरण युक्त होय, अेम दश आलोचक कहेला छे. ३३-३४-३५-३६-३७

जातिवंत प्रायें करी भूंडुं करे नहि, अने करे तो आलोवे. कुळवान् गुरुअे आपेलुं प्रायश्चित्त बरोबर पूरुं करे (३८) ज्ञानी कृत्याकृत्य जाणे दर्शनी शोधिनी (प्रायश्चितनो) श्रद्धा राखे, चरणी [चारित्रवान्] तेने कबूल करे. बाकीना पद प्रगट अर्थवाळा छे. [३९]

(त्रीजुं द्वार कह्युं, हवे गुरुना गुणोनुं चोथुं द्वार कहे छे.)

आ चारवान् १, आधारवान् २, व्यवहारवान् ३, उद्वर्तक ४, प्रकुर्वी ५, अपरिश्रावी ६, निर्यापक, अने अपायदर्शी ८, गुरु होवो जोइअे. (४०) ज्ञानाचारादिकथी जे युक्त होय, ते आचारवान् जाणवो. शिष्यना कहेला अपराधने मनमां धारी (साचवी) राखे, ते आधारवान् जाणवो. व्यवहार पांच प्रकारनो छेः— [४१]

आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा, अने जीत अे पांच व्यवहार छे. त्यां केवलि, मनपर्यवी, अवधिज्ञानी, चौदपूर्वी, दशपूर्वी, अने नवपूर्वी अे आगम व्यवहारी कहेवाय.

सव्वं सेसं सुयं विणिद्दिट्ठं । देसंतरट्ठियाणं—गूढपयालोयणा आणा ॥ ४३ ॥ गीयत्थाओ पुव्विं—अवधारिय धारणे तहिं दिंते । पायच्छित्त जीयं—रूढं वा जं जहिं गच्छे ॥ ४४ ॥ लज्जाइनिव्वहंतं—अवलज्जं कुणइ सो उ उव्वीलो । गरुयस्सवि पावस्स उ—सुद्धिसमत्थो पकुव्वी य ॥ ४५ ॥

अप्परिसावि गभीरो–निज्जवगो दुब्बलस्स निव्वहगो । नरगाइ दुक्खदंसी–अवायदंसी ससल्लाणं ॥ ४६ ॥

अविय—

शल्लुद्धरण निमित्तं–खित्तंमी सत्त जोयणसयाइं । काले बारस वासा–गीयत्थगवेसणं कुज्जा ॥ ४७ ॥

जओ—

नासेइ अगीयत्थो–चउरंगं सव्वलोयसारंगं । नट्ठंमिय चउरंगे—नहु सुलहं होउ चउरंगं ॥ ४८ ॥

છે. (૪૨) તેથી ઉતરતું આચાર પ્રકલ્પાદિક સઘળું શ્રુત જાણવું. દેશાંતરે રહેલો ગૂઢ-પદે આલોચના લે તે આજ્ઞા જાણવી. [૪૩] ગીતાર્થ પાસે પૂર્વે સાંભળેલું હોય, તે યાદ રાખીને તે પ્રમાણે પ્રાયશ્ચિત્ત દેતાં ધારણા કહેવાય, અને જે ગચ્છમાં જે પ્રાયશ્ચિત પરંપરાથી અપાતું આવ્યું હોય, તે જીત જાણવું. [૪૪] લજ્જાવાળાને સમજાવી ઓછી લજ્જાવાળો કરે, તે ઉદ્વીલક કહેવાય, અને મોટા પાપની પણ શુદ્ધિ કરાવી શકે, તે પ્રકુર્વી જાણવો. (૪૫)

ગંભીર હોય, તે અપરિસ્રાવિ જાણવો, દુર્બળને પણ ચલાવી લેનાર હોય, તે નિર્વાપક જાણવો, અને શલ્યવાળાઓને નરકાદિના દુઃખ બતાવનાર હોય, તે અપાયદર્શી જાણવો. (૪૬)

વળી,

શલ્ય ઉદ્ધારવા માટે ક્ષેત્રથી સાતસો યોજન લગી ગીતાર્થ ગુરૂની શોધ કરવી, અને કાળથી બાર વર્ષ લગી રાહ જોવી. [૪૮]

કિંચ,

अक्खंडिय चारित्तो—वयगहणाओ य जो य गीयत्थो । तस्स सगासे दंसण—वयगहण सोहिगहणं च ॥ ४९ ॥ एवंविहगुरुपासे—बज्जा-गारवभयाइ मोत्तूण । सव्वंपि भावसल्लं—उद्धरियव्वं, जओ भणियं ॥ ५० ॥ जह बालो जंपंतो—कज्ज मकज्जं च उज्जुओ भणइ । तं तह आलोइज्जा—मायामयविप्पमुक्को उ ॥ ५१ ॥

(दारं)

लहुया[1] लहाईजणणं[2]—अप्पपरनिवित्ति[3] अज्जवं[4] सोही[5] । दुक्कर-करणं[6] अहउ[7]—निस्सल्लत्तं[8] च सोहिगुणा ॥ ५२ ॥

आलोयणा परिणओ—संमं संपट्ठिओ गुरुसगासे । जइ अंतरावि कालं—करिज्ज आराहगो तहवि ॥ ५३ ॥ आगंतुं गुरुमूले—जो पुण

કેમકે,

અગીતાર્થ હોય, તે સર્વ લોકનું ચાર પ્રકારનું સાર અંગ ખગાડે છે, અને ચતુરંગ ખગડયું, એટલે ફરીને ચતુરંગ મળવું કંઈ સુલભ નથી. [૪૮]

વળી જે વ્રત ગ્રહણથી માંડીને અખંડિત ચારિત્રવાળો અને ગીતાર્થ હોય, તેના પાસેજ સમ્યકત્વ, વ્રત તથા પ્રાયશ્ચિત લેવાં જોઇએ. (૪૯) માટે એવા ગુરૂ પાસે લાજ, ગારવ [માન], તથા ભય વગેરે મેલીને સઘળાં ભાવશલ્ય કહાડવાં જોઇએ. જે માટે કહેલું છે કે—[૫૦] જેમ બાળક સરલ રહીને કાર્ય—અકાર્ય કહી દે છે, તેમ માયા, મદ છોડીને તેજ રીતે આલોચવું જોઇએ. [૫૧]

(ચોથું દ્વાર પત્યું, હવે સમ્યક્ વિશોધિના ગુણ કહે છે.)

આલોચના લેવાથી પાપ હલકાં થાય, આલ્હાદ થાય, સ્વપરની પાપથી નિવૃત્તિ થાય, ઋજુતા કાયમ રહે, શોધિ થાય, દુષ્કર કરણ થાય, કોમળ પરિણામ થાય, નિઃશલ્યપણું થાય, એ શોધિના ગુણ છે. [૫૨]

આલોચના લેવાના પરિણામથી ગુરૂ પાસે આવવા રવાનો થયો થકો જો વચ્ચે માર્ગમાંજ કાળ કરે, તોપણ તે આરાધકજ છે. (૫૩) ગુરૂ પાસે આવીને જે પોતાના

पयडेइ अत्तणो दोसे। सो जइ न जाइ मोक्खं–अवस्स ममरत्तणं लहइ ॥ ५४ ॥ जो पुण इय नाऊणवि–संमं न कहेइ अत्तणो सल्लं । चोएयव्वो तो सो–निसीहभणिएहि नाएहिं ॥ ५५ ॥ जह कस्सइ नरवइणो–एगो आसो समग्गगुणकलिओ । तस्स पभावेण निवस्स वड्ढए सव्वसंपत्ती ॥ ५६ ॥ अह सेस निवा पभणंति—नियनियठाणेसु संठिया एवं । भो अत्थि कोइ पुरिसो–जो तं आसं अवहरिज्जा ॥ ५७ ॥

भणियं चार नरेहिं–सो नरपंजरगओ सया कालं । हरिउं तेण न तीरइ–अह वुत्तं एग पुरिसेण ॥ ५८ ॥ जइ नवरं मारिज्जइ–रन्ना भणियं इमंपि ता होउ । तत्तो सो तत्थ गओ–न लहइ तुरयस्स अवगासं ॥ ५९ ॥ तो णेण खुद्दियाकंटएण—सरमुहठिएण वरतुरओ । कहमवि विद्धो सो तेण सल्लिओ सुहुमसल्लेण ॥ ६० ॥ सो निच्चं परिहप्पइ–भुंजंतोविहु पभूय जवसाइ । तो रन्ना सो विज्जस्स–दाइओ

દોષ પ્રગટ કરે, તે જો મોક્ષે ન જાય, તો દેવતા તો અવશ્ય થાય છે. (૫૪) હવે જે આવું જાણીને પણ પોતાનાં શલ્ય બરોબર નહિ જણાવે, તો તેને ગુરૂએ નિશીથ ભાષ્યમાં કહેલાં દૃષ્ટાંતોથી પ્રેરિત કરવો. (૫૫) જેમકે કોઈ એક રાજાની પાસે સર્વ ગુણ સંપન્ન એક ઘોડો હતો, તેના પ્રભાવે રાજાને ઘણી સંપત્તિ મળી હતી. હવે બીજા રાજાઓ પોતપોતાને ત્યાં રહીને એમ શોધાવવા લાગ્યા કે, એવો કોઇ માણસ છે કે, જે તે ઘોડાને હરી લાવે ? [૫૬–૫૭]

ત્યારે છુપા ફરનાર માણસોએ કહ્યું કે, તે તો હમેશાં માણસોનાં કુંડાળાં વચ્ચે રહે છે, તેથી હરી શકાય તેમ નથી, તેવામાં એક માણસે કહ્યું કે—(૫૮) જો તેમ હોય, તોપણ મારી શકાય ખરો. ત્યારે રાજાએ કહ્યું કે, ભલે એમ થાઓ. ત્યારે તે માણસ ત્યાં આવ્યો, તોપણ ત્યાં તેને ઘોડાની પાસે જવાનો લાભ મળી શકયો નહિ. [૫૯] ત્યારે તેણે બાણના મોખરામાં ક્ષુદ્રિકા કંટક (નાનો ઝેરી કાંટો) પરોવી, તેનાવડે તે ઘોડાને વીંધી તેના શરીરમાં તે સૂક્ષ્મ શલ્ય દાખલ કર્યું. [૬૦] હવે તે ઘોડો પૂરતો ઘાસચારો ખાતાં છતાં, પણ ઘસવા લાગ્યો. ત્યારે રાજાએ તે વૈદ્યને બતાવ્યો, ત્યારે તેણે

तेण भणिय मिणं ॥ ६१ ॥ नहि कोइ धाउखोहो–अत्थि हु अव्वत्तसल्ल मेयस्स । तो जमगसमग मेसो–उल्लित्तो सुहुमपंकेण ॥ ६२ ॥

सल्लपएसे आसो–उण्हत्तणओ य पढम मुव्वाओ । नाऊण तओ सल्लं–नीणिय आसो कओ सज्जो ॥ ६३ ॥ अन्नो पुण जह आसो–अणुधियसल्लो न भुज्जपरिहत्थो । तह साहूवि ससल्लो–कंमजयं काउ असमत्थो ॥ ६४ ॥ देवाणुप्पिय संमं–लज्जागारवभयाइ ता मुत्तुं । आलोयसु नियसल्लं–मा मरसु ससल्लमरणेण ॥ ६५ ॥

જઓ,

नवि तं सत्थं व विसं व दुप्पउत्तो व कुणइ वेयालो । जंतं व दुप्पउत्तं–सप्पो व पमाइओ कुद्धो ॥ ६६ ॥ जं कुणइ भावसल्लं–अणुद्धियं उत्तमट्ठकालंमि । दुल्लभबोहीयत्तं–अणंतसंसारियत्तं च ॥ ६७ ॥

એમ કહ્યું કે—[૬૧] એને કંઇ ધાતુક્ષોભ છે નહિ, બાકી એના શરીરમાં છુપું શલ્ય હોય, એમ લાગે છે; એમ કહીને તેણે તુરતોતુરત તે ઘોડાને સૂક્ષ્મ કીચડથી લીપી નાખ્યો. (૬૨)

ત્યારે તેને જ્યાં શલ્ય ખુંચ્યું હતું, તે સ્થળે જરા ગરમ રહેતું હોવાથી ત્યાં તે માદવ વહેલો સુકાયો, ત્યારે ત્યાં શલ્યને શોધીને તે ખેંચી કહાડયું, એટલે ઘોડો સાજો થઇ રહ્યો. [૬૩] હવે બીજો એક ઘોડો હતો, તેનું શલ્ય નહિ કહાડી શકાયાથી તે ખાવાપીવા અટકી પડયો, તેમ શલ્ય સહિત સાધુ પણ કર્મજય કરવાને અસમર્થ રહે છે. [૬૪] માટે હે દેવાનુપ્રિય ! લાજ, માન, ભય વગેરે છોડીને સમ્યક્ રીતે તું તારૂં શલ્ય આલોવ. સશલ્ય રહીને મરતો ના (૬૫)

જે માટે કહેલું છે કે:—

શસ્ત્ર, વિષ, છંછેડેલો વેતાળ, ઉંધું ગોઠવેલું યંત્ર, કે પગ લાગ્યાથી ગુસ્સે થએલો સર્પ એ તેટલું નુકસાન કરી શકતા નથી કે જેટલું [ભાવ શલ્ય નુકસાન કરે છે]. (૬૬)

કેમકે અણસણના વખતે અણઉધરેલું ભાવ શલ્ય દુર્લભ બોધિપણું અને અનંત

इय पभणिओवि सिरिओ–तओ अणालोइओ अपडिकंतो । चरणं विराहिऊणं–उववन्नो भवणवासीसु ॥ ६८ ॥ सिवभद्दो उण कंटग–पहच्छलणा नायओ कहवि जायं । नाउं निय मइयारं–आलोयइ झत्ति गुरुमूले ॥ ६९ ॥ आलोइयपडिकंतो–संमं आराहिऊण सामन्नं । उववन्नो पवरसुरो–सोहम्मे हेमवन्नाभो ॥ ७० ॥ तो चविउं इह भरहे–वेयड्ढे गयणवल्लहपुरंमि । सिरिकणयकेउरन्नो–देवइनामाइ देवीए ॥ ७१ ॥

जाओ पहाणपुत्तो–सिवचंदो नाम पत्ततारुन्नो । परिणेइ वसंतसिरिं–निवधूयं पढियबहुविज्जो ॥ ७२ ॥ सिरिओवि तओ वट्टिय–जाओ तस्सेव बंधवो लहुओ । कय सोमचंदनामो–कमेण तरुणत्त मणुपत्तो ॥ ७३ ॥ अह सोमचंदकुमरस्स–पढियनिरवज्जपवरविज्जस्स । जाया कयावि बुद्धी–मायंगिं साहिउं विज्जं ॥ ७४ ॥ तीसे य इमो कप्पो—

સંસારિપણું કરે છે. (૬૭) આ રીતે સિરિયાને સમજાવ્યા છતાં, પણ તે આલોવ્યા, પડિકમ્યા વગર ચારિત્ર વિરાધીને ભવન પતિઓમાં ઉપનો. (૬૮) હવે શિવભદ્ર તો કાંટો કેવા રસ્તે દાખલ કર્યો, એ બાબતપરથી કોઇ પણ રીતે લાગેલા અતિચારને જાણીને ગુરૂ પાસે ઝટ આલોવવા લાગ્યો. [૬૯] તે એ રીતે આલોઇ પડિકમી બરોબર શ્રમણપણું આરાધી સૌધર્મ દેવલોકમાં સોના જેવો કાંતિવાળો મોટો દેવતા થયો. (૭૦) ત્યાંથી ચવીને આ ભરતમાં વૈતાઢયમાં ગગન વલ્લભનગરના કનકકેતુ રાજાની દેવકી નામની રાણીના પેટે. [૭૧]

તે શિવચંદ્ર નામે તેમનો મુખ્ય પુત્ર થયો. હવે તે જ્યારે યૌવન પામ્યો, ત્યારે ઘણી વિદ્યાઓ શીખીને વસંતશ્રી નામની રાજપુત્રીને પરણ્યો. (૭૨) વળી શ્રીચક પણ ત્યાંથી નીકળીને તેનોજ નાનો ભાઇ થઈ જન્મ્યો, તેનું સોમચંદ્ર એવું નામ પાડવામાં આવ્યું, અને તે પણ ક્રમે કરી યૌવન પામ્યો. [૭૩] હવે નિર્દોષ અને સરસ વિદ્યાઓ શીખીને તૈયાર થએલા સોમચંદ્રકુમારને એક વેળા માતંગી વિદ્યા સાધવાની ઇચ્છા

मायंगगिहदिट्ठिएण कइवि दिणे । साहणविही विहेया–परिणियमायंगधू-
एण ॥ ७५ ॥

तयणु मक्कामं पिउणा–वारिज्जंतोवि सोयरेण पुणो । सुबुहु खलि-
ज्जंतोविहु–गओ कुणालाइ नयरीए ॥ ७६ ॥ तत्थ बहुदाणपुव्वं–मायंग-
सुयं विवाहए एगं । सिद्धिलियविज्जासाहण–वावारो गलियसुद्धमई
॥ ७७ ॥ अगणियसकुलकलंको–दूरं पब्भट्ठपुन्नपब्भारो । तीएचिय अ-
णुरत्तो–कमेण जायाणि डिंभाणि ॥ ७८ ॥ इय तस्स मलीमसचिट्ठिय-
स्स अच्चंतपावनिरयस्स । पिउभायपमुहलोएण–संकहा दूरओ चत्ता
॥ ७९ ॥ अंनदिणे सिवचंदो–हरिकरिरहजोहजूहपरियरिओ । पूरंतो ग-
यणयलं–विमाणमालाहि सव्वत्तो ॥ ८० ॥

पवरविमाणारूढो–सिरउवरिधरिज्जमाणसियछत्तो । पासपइट्ठियख-
यरी–जण ढालिज्जंतसियचमरो ॥ ८१ ॥ अग्गट्ठियमागहगण—पडुपय-

થઇ. (૭૪) તે વિદ્યાનો એવો કલ્પ છે કે, માતંગની દીકરી પરણી કેટલાએક દિવસ માતંગના ઘેર રહીને તેની સાધન વિધિ કરવી. [૭૫]

ત્યારે તેના પિતાએ તથા ભાઇએ ખુબ વાર્યા છતાં, અને વારંવાર અટકાવ પાડયાં છતાં, પણ તે કુણાલાનગરી તરફ ભાગી ગયે. [૭૬] ત્યાં ઘણા પૈસા આપીને એક માતંગની દીકરીને પરણ્યો. બાદ વિદ્યા સાધવાની વાતને પડતી મેલી શુદ્ધ બુદ્ધિ ખોઇને તથા પોતાના કુળને કલંક લાગતું નહિ ગણકારતાં પુણ્યના પ્રાગ્ભારથી ખુબ રહિત થઇને તેણીની સાથેજ વળગી રહ્યો, એ-ટલે વખત જતાં તેનાં છોકરાંછૈયાં પેદા થયાં. [૭૭–૭૮] આ રીતે તે મલિન આચાર આચરતો થકો પાપમાં ખુબ મશગુલ થઇ રહ્યો, તેથી તેના બાપ અને ભાઇ વગેરાએ તેની વાતજ કરવી દૂર મેલી. (૭૯) હવે એક વેળા શિવચંદ્રકુમાર ઘોડા, હાથી, રથ અને યોદ્ધાઓથી પરિકરિત થઇ વિમાનોવડે આકાશને ચોમેરથી ભરી નાખતો થકો. (૮૦) તે પ્રવર વિમાનપર ચડીને નીકળ્યો, તેના મસ્તકપર શ્વેત છત્ર ધરવામાં આવ્યું. પડખે બેઠેલી વિદ્યાધરીઓ તેનાપર શ્વેત ચામર ઢોળવા લાગી. (૮૧) આગળ ચાલતાં

डियविविहसमररिउविजओ । कलकंठकंठगायण—गिज्जंतमहंतगुणनिवहो ॥ ८२ ॥ सुचिरं सुरसरिसुरगिरि—वणेसु तह जंबुदीवजगईए । पउमवर-वेइगाए—पकीलिउं सगिह मणुचलिओ ॥ ८३ ॥ कहवि कुणालानयरी-इ—उवरि वच्चंतओ निएवि इमं । नेहेणं ओयरिऊण—सायरं भायरं भ-णइ ॥ ८४ ॥ किं भो बंधव तुमए—इहेव अचंतनिंदियकुलंमि । काएण व मयगकलेवरंमि बद्धा रई दूरं ॥ ८५ ॥

किं मूढ विस्सगंध—प्पबंध दढगाढपिहियनासउडं । दूरेणव्वयमाणं-जणं इओ नहु पलोएसि ? ॥ ८६ ॥ एगत्थ अत्थिउक्करड—भरिय म-ऽन्नत्थ भसिरसाणगणं । अवरत्थ गिद्धवायसदुप्पिच्छं किं न नियसि इ-मं ? ॥ ८७ ॥ तं सोउ सोमचंदो — अयंडतडिदंडताडिओ व्व दढं । वि-च्छाओ लज्जावस—मिलंतनयणो भणइ एवं ॥ ८८ ॥ भो भाय को न

માગધો [ભાટ. ચારણો] અનેક સંગ્રામોમાં તેણે કરેલા વિજયને વખાણવા લાગ્યા, અને કોકિલ જેવા કંઠવાળા ગવૈયાઓ તેના મોટા ગુણોને ગાવા લાગ્યા. [૮૨] આ રીતે લાંબા વખત સુધી તે ગંગાના અને મેરૂ પર્વતનાં વનોમાં તથા જંબુદ્વીપની જગતીપર તથા પદ્મવર વેદિકામાં ક્રીડા કરીને પોતાના ઘર તરફ પાછો વળ્યો. [૮૩] તે ભોગજોગે કુણાલાનગરી ઉપરથી પસાર થતાં ભાઇને જોઇને સ્નેહથી નીચે ઉતરી પ્રીતિપૂર્વક તેને કહેવા લાગ્યો કે, હે ભાઇ ! શા માટે તું કાગડો જેમ મુડદાં ઉપર પડી રહે, તેમ આ અત્યંત નિંદનીય કુળમાં લાંબી રતિ બાંધી રહ્યો છે ? [૮૪-૮૫]

અરે મૂઢ ! અહીં રહેલી દુર્ગંધના પ્રબંધથી સખ્ત રીતે નાકને ઢાંકીને લોકો પસાર થાય છે, એ તારા જોવામાં કેમ નથી આવતું ? [૮૬] આ એ સ્થળમાં એક ઠેકાણે હાડકાના ઉકરડા પડી રહ્યા છે, બીજે ઠેકાણે કૂતરાં ભસી રહ્યાં છે, અને ત્રીજે ઠે-કાણે ગીધ અને કાગડાથી ભયંકર લાગે છે, તે પણ તારા જોવામાં કેમ નથી આવતું ? (૮૭) તે સાંભળીને સોમચંદ્ર જાણે અકાળે વીજળી પડવાથી હણાયો હોય, તેમ ખુબ ઝાંખો પડી લાજથી આંખો મીંચી બોલ્યો કે—[૮૮] હે ભાઇ ! આવું ભારે દુઃખ

याणइ—दुह मसम मिमं, परं कहेसु इमं । पुव्वभवज्जियदुक्कम्म भारदोसेण केण अहं ॥ ८९ ॥ विमलकुलवासविमुहो—विमुक्कतुहसरिसबंधुपडिबंधो । एरिसविजाइवावार—सायरे पाडिओम्हि हहा ? ॥ ९० ॥

तो विहिणा सिवचंदो—सविम्हओ सरिय रोहिणिं देविं । पुच्छइ कहेसु भयवइ—मह बंधवपुव्वभव चरियं ॥ ९१ ॥ उरूओहिनाणमुणियं—कहिउं सयलंपि तस्स पुव्वभवं । देवीइ रोहिणीए—फुडवयण मिमं समुल्लविय ॥ ९२ ॥ जाइमयाई पुव्वि—न संम मालोइयं ज मेएण । तेणे सो तुह भाया—विडंबणं एरिसं पत्तो ॥ ९३ ॥ जं सुहुमेविहु खलिए—निस्सल्ला लोयणा कया तुमए । तं जाओसि इय सुही—इय भणिय तिरोहिया देवी ॥ ९४ ॥ सोउ मिणं सिवचंदो—पुव्वभवं सरिय भणइ भो भाय । अज्जवि तोडेवि लहुं—कुकुडंबसिणेह मुंच मिमं ॥ ९५ ॥

नियदुक्कयाइं आलोइऊण काऊण तिव्व तवचरणं । एयस्स दुक्ख-

જાણ નહિ સમજે ? પણ એટલું કહે કે, પૂર્વ ભવે કરેલાં કયાં દુષ્કર્મના દોષે મને વિમળ કુળમાં વસવાથી વિમુખ કરાવી તારા જેવા ભાઇની પ્રીત છોડાવી આવાં હલકી જાતનાં કામકાજરૂપ દરિયામાં પાડયો છે ? ? ? [૯૦]

ત્યારે શિવચંદ્રે વિસ્મય પામી વિધિપૂર્વક રોહિણી દેવીને સંભારીને પૂછ્યું કે, હે ભગવતી ! મારા ભાઇના પૂર્વ ભવનું ચરિત્ર કહે. [૯૧] ત્યારે રોહિણી દેવીએ ભારે અવધિ જ્ઞાનથી તે જાણીને તેને તેનું પૂર્વ ભવનું સઘળું જ્યાન કહીને ખુલ્લી રીતે આવું કહ્યું કે—[૯૨] એણે પૂર્વે જાતિ, મદ વગેરે કર્યું હતું, તે બરોબર આલોવ્યું નહિ, તેથી આ તારો ભાઇ આવી વિટંબના પામ્યો છે. (૯૩) અને તે સૂક્ષ્મ ભૂલ થતાં, પણ નિઃશલ્યપણે આલોયણા કરી હતી, તેથી તું આવી રીતે સુખી થયો છે, એમ કહીને દેવી તિરોહિત થઇ ગઇ. [૯૪] આ સાંભળીને શિવચંદ્ર (જાતિ સ્મરણ પામી) પૂર્વ ભવ સંભારીને ભાઇને કહેવા લાગ્યો કે, હે ભાઇ ! હજુ પણ તું ભુંડા કુટુંબનો સ્નેહ તોડીને એમને મૂકી દે. (૯૫)

વળી હે ભાઇ ! પોતાના દુષ્કૃત આલોવીને તીવ્ર તપશ્ચરણ કરી, આ દુઃખને તું

निवहस्स देसु सलिलंजलिं भाया ॥ ९६ ॥ अह भणइ सोमचंदो—भाय इमाभारिया मह अणाहा । आसन्नपसवसमया—इमाइं डिंभाइं लहुयाइं ॥ ९७ ॥ ता कहसु मुएमि कहं—इय तं मूढं निएवि सिवचंदो । दूरं न धम्मजुग्गु त्ति—चइय पत्तो नियं नयरं ॥ ९८ ॥ मोयाविऊण पिउणो—कहमवि चारणमुणिंदपयमूले । पडिवन्नसंजमभरो—सिद्धिं पत्तो धुयकिलेसो ॥ ९९ ॥ इयरोवि काउ विविहं—पावं कालंमि काल मासज्ज । पत्तो नरए घोरे—दुहिओ भमिही भवकडिल्ले ॥ १०० ॥

श्रुत्वेति सद्धिकटनाघटनानिरस्त—
कर्मव्रजस्य शिवभद्रमुनेश्चरित्रं ।
वाचंयमा नियमिताखिलदोषजाला—
यत्नं मुदा स्खलितशुद्धिविधौ विधत्त ॥ १०१ ॥

इति शिवभद्रमुनिकथा ॥

(छ)

જલાંજલિ આપ. [૯૬] ત્યારે સોમચંદ્ર બોલ્યો કે, હે ભાઇ ! આ મારી ગરીબ સ્ત્રી નજીકમાં છોકરૂં જણનારી છે, તથા આ છોકરાંછૈયાં હજુ નાનાં છે. (૯૭) તો કહે તેમને કેમ મેલી શકું ? આ રીતે તેને મૂઢ થએલો જોઇને, શિવચંદ્રે વિચાર્યું કે, એ હજુ ધર્મને યોગ્ય નથી; એમ વિચારી તે તેને દૂર મેલીને પોતાના નગરમાં આવ્યો. [૯૮] પછી તે જેમ તેમ કરી માબાપથી છૂટો થઇ, ચારણ મુનિના પાસે સંયમ લઇ, કલેશ ટાળીને સિદ્ધિ પામ્યો. [૯૯] અને પેલો સોમચંદ્ર અનેક પાપ કરી, અવસરે મરણ પામી, ઘોર નરકમાં ગયો, અને દુઃખિત થઈ સંસારરૂપ ગહન વનમાં ભટકશે. (૧૦૦)

આ રીતે સારી આલોચનાથી સકળ કર્મને દૂર કરનાર, શિવભદ્ર મુનિનું ચરિત્ર સાંભળીને, હે વાચંયમો [મુનિઓ] ! તમે તમામ દોષજાળને સંકેલીને ભૂલચૂકની શુદ્ધિ કરવામાં ઉલટભેર યત્ન કરો. [૧૦૧]

આ રીતે શિવભદ્ર મુનિની કથા છે.

अथ श्रद्धा प्रवरे धर्मे इति द्वितीयं भावसाधोर्लिंगमुपसंहरन् प्रज्ञापनीयलक्षणं तृतीयं भावसाधुलिंगं संबंधयन्नाह.

(मूलं)

एसा पवरा सद्धा—अणुबद्धा होइ भावसाहुस्स ।
एईए सब्भावे—पन्नवणिज्जो हवइ एसो ॥ १०५ ॥

(टीका)

एषा चतुरंगा प्रवरा वरेण्या श्रद्धा धर्माभिलाषोनुबद्धाऽव्यवच्छिन्ना भवति संपद्यते भावसाधोः प्रस्तुतयतेः—एतस्याः श्रद्धायाः सद्भावे सत्तायां प्रज्ञापनीयोऽसद्ग्रहविकलो भवत्येव भावमुनिरिति.

ननु किं चरित्रवतोप्यसद्ग्रहः संभवति ? सत्यं संभवत्यपि—मतिमोहमाहात्म्यात्.—मतिमोहोपि कुत इति चे–दुच्यते,—

હવે ધર્મમાં પ્રવર શ્રદ્ધારૂપ ભાવસાધુના બીજા લિંગનો ઉપસંહાર કરતા થકા પ્રજ્ઞાપનીયરૂપ ત્રીજા લિંગને સંબંધિત કરે છે:—

મૂળનો અર્થ.

આવી પ્રવર શ્રદ્ધા ભાવસાધુને જમી ગએલી હોય છે, અને તેના સદ્‌ભાવથી તે પ્રજ્ઞાપનીય થાય છે. (૧૦૫)

ટીકાનો અર્થ.

એ એટલે ચાર અંગવાળી પ્રવર એટલે ઉત્કૃષ્ટ શ્રદ્ધા એટલે ધર્મની ઇચ્છા ભાવસાધુને અનુબદ્ધ એટલે હમેશ લાગી રહે છે, અને એ શ્રદ્ધાના સદ્‌ભાવે તે ભાવમુનિ પ્રજ્ઞાપનીય એટલે અસદ્‌ગ્રહથી રહિત રહે છે.

વારૂ શું ચારિત્રવંતને પણ અસદ્‌ગ્રહ હોય કે ? અલબત, મતિમોહના મહિમાથી હોય પણ ખરો. મતિમોહ તે શાથી થતો હશે ? તેનો જવાબ કહે છે:—

॥ મુલં ॥

विहि[१] उज्जम[२] वन्नय[३] भय[४]–उस्सग्ग[५] वववाय[६] तदुभयगयाइं[७]।
सुत्ताइं बहुविहाइं—समए गंभीरभावाइं ॥ १०६ ॥

(टीका)

विधिश्च–उद्यमश्च–भयं चो–त्सर्गश्चा–पवादश्च–तदुभयं चे–तिद्वंद्व–स्तस्य च स्वपदप्रधानत्वाद्गतानिति प्रत्येकमभिसंबध्यते, सूत्राणि च विशेष्याणि.

ततश्चैवं योज्यते–कानिचिद्विधिगतानि सूत्राणि संति, यथा—

संयत्ते भिक्खकालंमि–असंभंतो अमुच्छिओ।
इमेण कमजोएण–भत्तपाणं गवेसए.—

इत्यादीनि.

મૂળનો અર્થ.

વિધિ, ઉદ્યમ, વર્ણક, ભય, ઉત્સર્ગ, અપવાદ, તદુભય, એ આગમનાં બહુ પ્રકારનાં ગંભીર ભાવવાળાં સૂત્રો આ જિનશાસનમાં રહેલાં છે. [૧૦૬]

ટીકાનો અર્થ.

વિધિ, ઉદ્યમ, વર્ણક, ભય, ઉત્સર્ગ, અપવાદ અને તદુભય, એ પદોનો દ્વંદ્વ સમાસ કરવો. દ્વંદ્વ સમાસ સ્વપદ પ્રધાન હોવાથી, ગતપદ દરેક સાથે જોડી શકાય છે, અને તે આખા પદનાં સૂત્રો એ વિશેષ્ય પદ છે.

તેથી તેને આવી રીતે જોડવું કે,—કેટલાંએક વિધિ સંબંધી સૂત્રો છે; જેમકે—

ભિક્ષાકાળ પ્રાપ્ત થતાં મુનિએ અસંભ્રાંત અને અમૂર્છિત રહીને, આ ક્રમથી ભક્ત-પાન ગવેષવાં. ઇત્યાદિ.

कानिचिदुद्यमसूत्राणि, यथा—
दुमपत्तए पंडुए जहा–निवडइ रायगणाण अच्चए
एवं मणुयाण जीवियं–समयं गोयम मा पमायए.—
इत्यादीनि
वर्णकसूत्राणि,
रिद्धत्थमियसमिद्धा—इत्यादीनि प्रायोज्ञाताधर्मकथाद्यंगेषु.
भयसूत्राणि,
नरकेषु मांसरुधिरादिकथनरूपाणि, उक्तंच—
नरएसु मंसरुहिराइ–वन्नणं जं पसिद्धिमित्तेण,
भयहेउ इहर तेसिं–वेउव्वियभावओ न तयं.—
इत्यादीनि.
उत्सर्गसूत्राणि यथा—

કેટલાંએક ઉદ્યમ સૂત્રો છે, જેવાં કે:—

રતાશ ઉતરી જતાં પીળાં થએલાં ઝાડનાં પાંદડાંઓ જેમ ખરી પડે છે, તેમ મનુષ્યોનું જીવિત છે; માટે હે ગૌતમ! સમય માત્ર પણ પ્રમાદ મ કર. ઇત્યાદિ.

વર્ણક સૂત્રો તે,

"રિદ્ધા, સ્તિમિતા, સમૃદ્ધ," ઇત્યાદિક (નગરી વર્ણનના) પ્રાયે જ્ઞાતા ધર્મ-કથાદિક અંગોમાં આવે છે.

ભય સૂત્રો તે નરકમાં માંસ, રૂધિર, વિગેરે કહેલાં છે તે. જે માટે કહ્યું છે કે, નરકમાં જે ચાલતી રૂઢિને અનુસરી માંસ રૂધિરાદિક વર્ણવ્યાં છે, તે બીવરાવવા માટે છે. નહિં તો ત્યાં વૈક્રિયપણું હોવાથી તે શાના હોય? માટે એ વગેરે ભય સૂત્ર છે.

"ઉત્સર્ગ સૂત્રો તે, એ છકાયના જીવોનો પોતે આરંભ ન કરવો." ઇત્યાદિક છકાયની રક્ષાનાં વિધાયક સૂત્રો જાણવાં.

" इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दंडं समारंभिज्जा "

इत्यादि षट्जीवनिकायरक्षाविधायकानि.

अपवादसूत्राणि प्रायश्छेदग्रंथगम्यानि, यद्वा—

नयालभिज्जा निउणं सहायं–गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।
इक्कोवि पावाइं विवज्जयंतो–विहरिज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥

इत्यादीनि.

तदुभयसूत्राणि–येषूत्सर्गापवादौ युगपत्कथ्येते, यथा—

अट्टज्झाणाभावे–संयं अहियासियव्वओ वाही,
तब्भावंमि उ विहिणा–पडियारपवत्तणं नेयं–इत्यादीनि.

एवं सूत्राणि बहुविधानि स्वसमयपरसमय–निश्चय–व्यहार–ज्ञान क्रियादिना नयमतप्रकाशकानि समये सिद्धांते गंभीरभावानि महामतिगम्याभिप्रायाणि संतीति शेषः—ततः किमित्याह—

અપવાદ સૂત્રો પ્રાયે છેદ ગ્રંથમાં રહેલાં છે, અથવા તો " જ્યારે ગુણાધિક અથવા સમગુણ એવો બીજો હુશિયાર સાથી ન મળે, ત્યારે એકલાં થઇને પણ કામમાં (વિષયસુખમાં) નહિ ખુંચાતાં પાપ વર્જીને વિચરતા રહેવું "—ઇત્યાદિક જાણવાં.

તદુભય સૂત્ર તે જેઓમાં ઉત્સર્ગ અને અપવાદ સાથે સાથે કહેલાં હોય, જેમકે " આર્ત્તધ્યાન નહિ થતું હોય, ત્યાં લગણ વ્યાધિને રૂડી રીતે સહન કરવી, પણ જો આર્ત્તધ્યાન થવા માંડે, તો વિધિથી તેનો પ્રતીકાર કરવા પ્રવર્ત્તવું વાજબી છે. " ઇત્યાદિ.

આ રીતે સૂત્રો અનેક પ્રકારનાં છે, એટલે કે સ્વસમય, પરસમય, નિશ્ચય, વ્યહાર, જ્ઞાન, ક્રિયા, વગેરે બાબતોએ કરીને તે તે નયના અભિપ્રાયને જણાવનારાં, અને સમય એટલે સિદ્ધાંતની બાબતમાં ગંભીર ભાવવાળાં એટલે મહા બુદ્ધિવાન્ પુરૂષજ જેનો અભિપ્રાય સમજી શકે એવાં છે.

એથી શું થયું તે કહે છે:—

॥ मुलं ॥

तेसिं विसयविभागं-अमुणंतो नाणवरणकम्मुदया ।
पुज्झइ जीवा तत्तो-सपरेसि मसग्गहं जणइ ॥ १०७ ॥

(टीका)

तेषां सूत्राणां विषयविभाग-मयमस्यसूत्रस्यविषयोयं चामुष्ये-त्येवंरूपमगुणन्नलक्षयन् ज्ञानावरणकर्मण उदयाद्धेतोर्मुह्यति मोहमुपयाति जीवः प्राणी.—ततः स्वपरयोरात्मनः परस्य च पर्युपासकस्यासद्ग्रह-मसद्बोधं जनयति, जमालिवत्. तत्कथाचातिप्रतीतत्वान्नावितन्यत इति.

ततश्च,

મૂળનો અર્થ.

તેમના તે તે વિષય વિભાગને જ્ઞાનાવરણ કર્મના ઉદયથી નહિ જાણી શકનાર જીવ મુંઝાઇ પડે છે, અને તેથી તે પોતાને અને પરને અસદ્ગ્રહ નીપજાવે છે. [૧૦૭]

ટીકાનો અર્થ.

તે સૂત્રોના વિષય વિભાગને જ્ઞાનાવરણ કર્મના ઉદયથી નહિ જાણતો થકો, એટલે કે આ સૂત્રોનો આ વિષય છે, અને પેલાં સૂત્રનો આ વિષય છે, એમ નહિ ઓળખતાં પ્રાણી મોહ પામે છે, અને તેથી તે પોતાને અને તેના પર્યુપાસકને અસદ્ગ્રહ એટલે અસદ્બોધ ઉપજાવે છે, જમાલિ માફક. તેની કથા અતિ પાકરી હોવાથી નથી કહેતા.

તેથી કરીને,

(मूलं)

तं पुण संविग्गगुरू-पराहियकरणुज्जयाणुकंपाए ।
लोहिंति सुत्तविहिणा-पन्नवणिज्जं वियाणंता ॥ १०८ ॥

[टीका]

तं मूढं पुनः शब्दादर्थिनं विनीतं च संविग्नाः प्रतीतार्था गुरवः पूज्याः परहितकरणोद्यताः परोपकाररसिका अनुकंपया-मागमदेषदुर्गति-मित्यनुग्रहबुध्या प्रेरिता बोधयंति प्रज्ञापयंति-सूत्रविधिनागमोक्तयुक्तिभिः-प्रज्ञापनीयं प्रज्ञापनोचितं विजानानालक्षयंतस्तदितरस्य सर्वज्ञेनापि बोधयितुमशक्यत्वादिति.

ततः

મૂળનો અર્થ.

તેવા મૂઢને પણ પ્રજ્ઞાપનીય જાણીને પરહિત કરવા ઉજમાળ સંવિગ્ન ગુરૂ અનુકંપા લાવીને સૂત્રમાં કહેલી રીતથી સમજાવે છે. (૧૦૮)

ટીકાનો અર્થ.

જો તે અર્થી અને વિનીત હોય, તો તે મૂઢને સંવિગ્ન પૂજ્ય ગુરૂઓ પરોપકાર કરવામાં રસિયા હોવાથી અનુકંપાવડે એટલે કે આ બિચારો દુર્ગતિએ ન જાઓ, એમ અનુગ્રહ બુદ્ધિવડે પ્રેરાયા થકા સૂત્ર વિધિથી એટલે આગમમાં કહેલી યુક્તિઓથી સમજાવે છે; પણ તે ત્યારેજ, કે જ્યારે તે તેમને પ્રજ્ઞાપનીય એટલે પ્રજ્ઞાપન કરવા લાયક જણાય— બાકી અપ્રજ્ઞાપનીયને તો સર્વજ્ઞ પણ સમજાવી શકે નહિ.

તેથી કરીને,

॥ मूलं ॥

सोवि असग्गहचाया—सुविसुद्धं दंसणं चरित्तं च ।
आराहिउं समत्थो-होइ सुहं उज्जुभावाओ ॥ १०९ ॥

[टीका]

सोपि प्रज्ञापनीयमुनिः सुनंदराजर्षिसदृशोऽसद्ग्रहत्यागान्निजपरिकल्पितबोधमोचनात् सुविशुद्ध मतिनिर्मलंदर्शनं सम्यक्त्वं चारित्रं संयमं च शब्दात् ज्ञानतपसी चाराधयितुं समर्थो भवति सुखं यथाभवत्येवमृजुभावादार्जवगुणादिति.

सुनंदराजर्षिकथा पुनरेवं.

इह कंपिल्लपुरेसो—अइपबलपयावनिज्जियदिणेसो । उप्पाडियरिउकंदो-आसि नरिंद सुनंदु त्ति ॥ १ ॥ सुद्ध गिहिधंम परिपालणु-

---

મૂળનો અર્થ.

તે પણ અસદ્ગ્રહ છોડીને સરલ ભાવથી સુખે કરીને વિશુદ્ધ દર્શન અને ચારિત્રને આરાધવા સમર્થ થાય છે. (૧૦૯)

ટીકાનો અર્થ.

તે પણ પ્રજ્ઞાપનીય મુનિ સુનંદ રાજર્ષિના માફક અસદ્ગ્રહ છોડીને એટલે કે સ્વકલ્પિત બોધ મૂકીને સુવિશુદ્ધ એટલે અતિ નિર્મળ સમ્યકત્વ ચારિત્ર તથા ચ શબ્દથી જ્ઞાન અને તપ સુખે આરાધવા સમર્થ થાય છે; કેમકે તે આર્જવ ગુણવાળો હોય છે.

સુનંદ રાજર્ષિની કથા આ રીતે છે.

ઇહાં કાંપિલ્યપુરનો સુનંદ નામે રાજા હતો, તે અતિ પ્રબળ પ્રતાપથી સૂર્યને પણ જીતેલો હતો, તથા દુશ્મનરૂપી કંદને મૂળથી ઉખેડનાર હતો. [૧] તેને વજ્રયુદ્ધ

જ્જુઓ સત્તતત્તકુસલમઈ । પાણેહિં પિહુ દઇઓ–મિત્તો વજ્જાઉહો તસ્સ ॥ ૨ ॥ અઇસરયઆગમણુપ્પન્ન–પવલઉસ્સાસરુદ્ધકંઠેણ । કઇયાવિ સુનંદ નિવો–ઇય ભણિઓ સંધિપાલેણ ॥ ૩ ॥ દેવ મહચ્છરિય મિણં–જં કિર કેસરભરોવિ કેસરિણો । તોડિજ્જઇ હરિણેણં–રવીવિ જિપ્પઇ તમભરેણ ॥ ૪ ॥ ઉત્તરદિસિપહુણા ભીમ–રાઇણા દુદ્દમેણ ગુણનિવહો । ઇંદિયગામે-ણંપિ વ–દેસો તુહ હમ્મએ સયલો ॥ ૫ ॥ તં સોઉ નિવો કુવિઓ—જા તાડાવેઇ ઝત્તિ રણભેરિં । તા સુદ્ધબુદ્ધિજુત્તેણ–મંતિવગ્ગેણ ઇય વુત્તં ॥ ૬ ॥ દેવેસ અરી સુરકય–સંનિજ્ઝો સંગરે ગઈ વિસમા । સંદેહો પુણ વિજએ–પહાણપુરિસક્ખઓ ય ધુવં ॥ ૭ ॥

તા સામભેય દાણાઇં–મુત્તુ સંપઇ ન અન્નમપિ । નીઇં રિઉવિજએ તા દેહં કુણસુ જુત્તં ॥ ૮ ॥

જઓ.

નામે પ્રાણ થકી પણ અધિક વહાલો એક મિત્ર હતો, તે શુદ્ધ શ્રાવક ધર્મ પાળવામાં ઉજમાળ અને સાત તત્ત્વ જાણનાર હતો. [૨]

હવે એક વેળા ઉતાવળે આવવાથી ઉપજેલા પ્રબળ શ્વાસથી રૂંધાયલા કંઠે કરીને સીમાડાનો રખેવાળ તે રાજાને આ રીતે કહેવા લાગ્યો. [૩] હે દેવ! આ એક મોહોટું આશ્ચર્ય દેખાય છે કે, હરણ જાતને સિંહની કેશર તોડે છે, અને આંધારું તે સૂર્યને જીતવા ચાહે છે. (૪) (એમ કહી તેણે કહ્યું કે,) ઉત્તર દિશાનો ઘણો દુર્દમ ભીમરાજા ઇંદ્રિયગ્રામ જેમ ગુણોને હણે તેમ તમારા દેશને હણે છે. [૫] તે સાંભળી રાજા ગુસ્સે થઇ રણનું નગારું વગડાવ્યું, તેટલામાં શુદ્ધ બુદ્ધિવાળા મંત્રિઓ તેને એમ કહેવા લાગ્યા કે, હે દેવ! એ દુશ્મનને દેવ સહાય છે, તેમ લડાઇની ગત ન્યારી છે. જીત થાય પણ ને નહિ પણ થાય,—અને મોટા મોટા માણસોનો ક્ષય તો નક્કી થાય છે. [૬-૭]

એ કારણથી સામ, દામ, અને દાન શિવાય બીજાં અમે બીજી નીતિ હાલ પસંદ નથી કરતા, માટે હે દેવ! બીજાં જે યુક્ત હોય તે કરો. [૮] જે માટે સામથી દુશ્મન હોય,

सामेण कोइ मित्तो–परोवि, भएण भिज्जइ मुहीवि । दाणेण सेलघडिया–देवावि वसं पवज्जंति ॥ ९ ॥ जइजोग मिमे नणु जुंजिऊण दंडेवि जइ समुज्जमसि । मसिकुचं अरिवयणेसु–तयणुं तं देव देसि धुवं ॥ १० ॥ इय कयजत्ता पत्ता–नुच्छावि निवा अतुच्छलच्छिभरं । गरुआवि गया निहणं–इत्तो विवरीयनीइरया ॥ ११ ॥

ता देव सत्तुसामंत–मंतिमित्ताण जाणिउं हिययं । तदुचियसामाइ पउंजिऊण पच्चइयपुरिसेहिं, ॥ १२ ॥ कुणसु वहु विजयजत्तं–जयलच्छि लहसु फुरिय जसपसरो । भंजसु भडवायं रिउंभडाण कयनीइसंनाहो ॥ १३ ॥ इय सोउ मंतिवयणं–इसि हसिऊण जंपियं रन्ना । वणियाण महणाण य–होइ मइ एरिसावेव ॥ १४ ॥ कह मन्नह दुज्जयरिउ–करडिघडा विघडणिक्कके सरिणो । मज्झवि पुरओ एवं–रणकम्म महम्म मुवइसह ? ॥ १५ ॥ इत्तुच्चिय अविमंसिय–जहातहा इह जणा पयंपंता ।

તે મિત્ર થાય છે, ભેદથી મિત્ર હોય, તે પણ ફોડાય છે, દાનથી પથ્થરના ઘડેલા દેવ પણ વશ થાય છે. [૯] માટે યથાયોગ્યપણે એ ત્રણનો પ્રયોગ કર્યા પછી જો દંડ કરવા તૈયાર થશો, તો અવશ્ય દુશ્મનોનું કાળું મોઢું કરી શકશો. (૧૦) કેમકે આ રીતે યત્ન કરનારા નાના રાજાઓ પણ ભારે લક્ષ્મીને પામ્યા છે, અને એથી વિપરીતપણે ચાલનારા મોટાઓ પણ નાશ પામ્યા છે. (૧૧)

માટે હે દેવ! શત્રુના સામંત, મંત્રિ અને મિત્રોનું હૃદય જાણીને તેને યોગ્ય સામાદિક આપણા ખાત્રીદાર માણસો મારફત મોકલાવી. [૧૨] તમે જલદી વિજયયાત્રા કરી શકશો, અને યશ ફેલાવવાની સાથે જયલક્ષ્મી મેળવશો; માટે નીતિરૂપ કવચ પહેરીને દુશ્મનના સુભટોનો ભડવા ભાંગો. [૧૩] આ રીતે મંત્રિનાં વચન સાંભળી જરા હસીને રાજા બોલ્યો કે, વાણિયા અને બ્રાહ્મણોમાં એવીજ મતિ હોય છે. (૧૪) નહિ તો દુર્જય દુશ્મનોના હાથીઓની હરોળ તોડવામાં સિંહ સમાન મારા આગળ આ રીતે રણકર્મને અધર્મ કેમ કરવો ? [૧૫] એટલા માટેજ વગર વિચારે જેમ તેમ બોલતા

हुंति तणाउवि लहुया–वच्चंति पराभवट्ठाणं ॥ १६ ॥

इय पभणिय भालत्थल–कयउब्भडभिउडि भासुरो राया । उक्कं-पिय रिउचक्कं–लहु ताडावेइ जयढक्कं ॥ १७ ॥ ता तीइ सद्दपसरेण–मिलिय चउरंग पबल बलकलिओ । वज्जाउह मित्तविदिन्न–अग्गसिन्नि-क्कवावारो ॥ १८ ॥ अविलंबियप्पयाणेहि–सतुनिवमंडलं अणुपविट्ठो । नाउ तदागमणं झत्ति–आगओ संमुहो भीमो ॥ १९ ॥ अह जोहमुक्क-हक्का–भयभरनस्संत कायरनरोहं । हयहरिकरिभडनिवडण–दुग्गपहाउल भमंतजणं ॥ २० ॥ जणवयजणआसंकिय–अवितक्किचपलयकालमागमणं । दुण्हवि अग्गाणीयाण–ताण जायं महाजुज्झं ॥ २१ ॥

अह खणमित्तंमि गए–लद्धोगासेहिं परबलभडेहिं । भग्गं सुनंदसिन्नं–सीयंपिव भाणुकिरणेहिं ॥ २२ ॥ वज्जाउह जयकुंजर–सतुंजयमाइणो

જનો ઇહાં તણખલાથી પણ હલકા થાય છે, અને પરાભવ પામે છે. (૧૬)

આમ કહીને ભાવ સ્થળે ભ્રકૂટિ ચડાવી રાજાએ જલદી દુશ્મનોને ડરાવનારો જય ડંકો વગડાવ્યો. [૧૭] ત્યારે તેના શબ્દો ફેલાતાં ચતુરંગ લશ્કર એકઠું થયું, તે તેણે સાથે લીધું, અને અગ્ર સૈન્યનું ઉપરીપણું વજ્રાયુધને આપ્યું. [૧૮] બાદ તે વગર વિલંબે પ્રયાણ કરતો રહી શત્રુ રાજાના મંડળમાં પેઠો, એટલે તેને આવતો જોઇને ભીમ પણ જલદી સામે આવ્યો. (૧૯) હવે ત્યાં તેમના બંને લશ્કરોનું મહા યુદ્ધ જામ્યું, જેમાં યોદ્ધાઓએ પાડેલી હાકોથી કાયર જનો ડર ખાઇ નાસતા હતા, વળી મરેલા હાથી, ઘોડા અને સુભટોથી રસ્તા ભરાઇ જતાં લોકો ચકરભમ થઇ પડતા હતા. [૨૦] લોકોની વસતિ ધારવા લાગી કે, આ તો ઓચિંતો પ્રલયકાળજ આવી પડયો લાગે છે. આ રીતે તેમનું યુદ્ધ ચાલ્યું. [૨૧]

હવે થોડાજ વખતમાં શત્રુના સુભટોએ લાગ જોઇને સુનંદના સૈન્યને સૂર્યનાં કિરણો જેમ અંધારાને તોડે તેમ તોડયું. [૨૨] અને વજ્રાયુદ્ધ, જયકુંજર તથા શત્રુંજય વગેરે રાજાઓ રણભૂમીમાં પડયા. એ વાતની સુનંદ રાજાને પણ ખબર પડી.

महीवइणो । पडिया समरमहीए—सुनंदराएण नाय मिणं ॥ २३ ॥ अह सचिवेहिं भणियं—अज्जवि विरमेसु देव समराओ । मा पूरेसु रिउमणं–मणोरहे, नियसु नियसत्तिं ॥ २४ ॥ अजहाबल मारंभो—खयस्स मूलं वयंति इह विबुहा । तो सव्वपयारेहिं—अप्पाचिय रक्खियव्वु त्ति ॥ २५ ॥

जओ,

विक्कमबलेण पुणरवि–अज्जिज्जइ चिरगयावि रायसिरि । देव गयं पुण जीयं–न लब्भए तंमि जम्ममि ॥ २६ ॥ भावय राहुमुहाओ–नीहरिउ मखंडमंडलो सूरो । अवहरिउं रायसिरिं–परतेयभरं पुणो हरइ ॥ २७ ॥ सुच्चइय पुरावि इमं–अपत्तवेलं मुणेवि अप्पाणं । बंभो चक्की नट्ठो–सपरियणो जादवपहूवि ॥ २८ ॥ इय सचिवेहिं भणिओ–नियकुग्गहविरहिओ सुनंदनिवो । ओसरिओ समराओ–जं अवसरवेइणो वि-

---

(२३) हवे तेना मंत्रिओ तेने कहेवा लाग्या के, हे देव ! हजु पण लडाइ बंध पाडो, दुश्मनोना मनोरथ पूरो मां, अने पोतानी शक्ति विचारो. (२४) केमके बळ विरुद्ध मंडाण क्षयनुं मूळ थाय छे, एम समजुओ कहे छे, माटे जेम बने तेम पोतानो बचाव करवो जोइएे. (२५)

हे देव ! राज्यश्री तो फरीने पण पराक्रम करी मेळवी शकाय छे, पण जीवित गयुं तो, ते आ जन्ममां पण फरी नथी मळतुं. [२६] विचार करो के, राहुना मुखमांथी आखो नीकळीने सूर्य रतांश भूंसी फरीने उत्कृष्ट तेज धारण करे छे. [२७] वळी आपणे सांभळीए छीए के, पूर्वे पण पोताने लाग न आवेलो जोइने ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्ति तथा यादव प्रभु (श्रीकृष्ण) नाशी छुटया हता. [२८] आम मंत्रिओए कह्याथी सुनंद राजा पोतानो दुराग्रह छोडी लडाइथी पाछो हठयो. केमके समजुओ अवसर ओळखे छे. [२९] त्यारे पोताना प्रतिपक्षने पाछो हठी नासतो जोइ भीम राजा तेनी

बुहा ॥ २९ ॥ पडिभग्गं पडिवक्खं–पलायमाणं निएवि भीमनिवो । वलिओ अणुकंपाए–तप्पुट्ठिपहार म करित्ता ॥ ३० ॥

वज्जाउहमरणेणं–पराहवेण य सुनंदनरनाहो । मन्नंतो निहयंपिव अप्पं अइदुह मणुहवेइ ॥ ३१ ॥ अहनिसि चिंतावसगय–निद्दो राया सुरेण एगेण । भणिओ भो निव सोहं–मित्तो वज्जाउहो तुज्झ ॥ ३२ ॥ तइया रिउराईहिं–गाढपहारीकयं मुणिवि अप्पं । नीहरिउं समरंगण–मईइ ओयरिय वारणओ ॥ ३३ ॥ उद्धरियदुविहसल्लो–गरिहियपावो समाहिसंजुत्तो । नवकारं समरंतो–जाओ अमरो पढमकप्पे ॥ ३४ ॥ ओहिबलेण वियाणिय–तुह दुक्खं सत्तुपरिभवसमुत्थं । तं अवणेउं इहयं–पत्तो हं परमपेमेणं ॥ ३५ ॥

ता मित्त मुयसु खेयं–पभायसमए हवेसु रणसज्जो । निम्महिय रिउं सरयब्भविब्भमं लहसु कित्तिभरं ॥ ३६ ॥ इय मित्ततियसवयणं–

પૂઠે પ્રહાર ન કરતાં દયા આઇ પાછો વળ્યો. [૩૦]

હવે વજ્રાયુદ્ધના મરણથી તથા શત્રુએ કરેલા પરાભવથી સુનંદ રાજા પોતાને હણાયલાની માફક માનતો થકો ભારે દુઃખ અનુભવવા લાગ્યો. [૩૧] એથી કરીને ચિંતાના લીધે રાત ઉંઘ નહિ આવી, એવામાં એક દેવતા પ્રગટ થઇને કહેવા લાગ્યો કે, હું તે તારો વજ્રાયુદ્ધ મિત્ર છું. (૩૨) તે વેળા હું પોતાને દુશ્મનોથી સખત ઘવાયલો જાણીને રણભૂમિથી બહાર નીકળી હાથીથી નીચે ઉતરી દ્રવ્ય શલ્ય તથા ભાવ શલ્ય દૂર કરી પાપને નિંદી સમાધિથી નવકાર સંભારતો થકો મરીને પહેલા દેવલોકમાં દેવતા થયો છું. (૩૪) બાદ અવધિ જ્ઞાનથી શત્રુના પરિભવથી થતું તારું દુઃખ જોઇને તેને ટાળવા માટે પરમ પ્રેમના લીધે ઇહાં આવ્યો છું. [૩૫]

માટે હે મિત્ર ! ખેદ છોડ, પ્રભાત થતાં લડવા તૈયાર થા, અને દુશ્મનને હરાવી શરદૃઋતુના વાદળા જેવી કીર્ત્તિ મેળવ. [૩૬] આ રીતે મિત્ર દેવતાનું વચન સાંભળી

सोउं राया वियासिमुहसोहो । सिन्नाणुगओ सहसा-पडिपडिवक्खं पडिनियत्तो ॥ ३७ ॥ अह पउरसमरसंपत्त-विजयगव्वो पुणोवि तं इत्तं । आयन्नियभीमनिवो-सज्जो होउं ठिओ भिमुहो ॥ ३८ ॥ आओहणं च लग्गं-नवरं मित्तामराणुभावेण । विजिओ सुनंदरन्ना-भीमनरिंदो पढममेव ॥ ३९ ॥ तं सेवापडिवन्नं-रज्जे तत्थेव ठाविय सुनंदो । नियदेसं पइ चलिओ-सुरो गओ पुण सठाणंमि ॥ ४० ॥

मग्गंमि सुनंदोविहु-वच्चंतो नियइ सिरिपुरुज्जाणे । पढमजिणभवणपासे-मुणि मेगं तरूतलनिसन्नं ॥ ४१ ॥ तस्सय पुरओ एगं-पवंगमं पउरलोयमज्झगयं । मुणिदिज्जंतनमुक्कारं-मंतआयन्नणप्पवणं ॥ ४२ ॥ तो विमहयभरभरिओ-राया आगम्म नमिय मुणिपवरं । जा तत्थ निसीयइ ताव—वानरो मरण मणुपत्तो ॥ ४३ ॥ अह भणइ निवो मुणिपहु-भुज्ज मिणं जं अईवचवलमणा । इत्थं पवंगमा विहु-जिणधम्मे निच्चला

राज्य भेां भलकावी जलदी सैन्य साथे दुश्मन तरफ पाछेा धस्यो. [३७] हवे धणी लडाइओमां मेळवेला विजयथी गर्वे चडेलेा भीम राज्य फरीने सुनंदने आवतेा जोइने सामेा उभेा रह्यो. [३८] हवे फरी लडाइ शरू थइ, पण तेमां मित्र देवना प्रतापथी पहेलेज सपाटे सुनंदराज्यए भीम राज्यने जीत्यो. (३९) एटले तेणे सेवा करवी कबुल कर्याथी तेने तेज राज्यपर स्थापी सुनंद पेाताना देश तरफ चाल्यो, अने देवता पेाताने ठेकाणे गयेा. (४०)

हवे सुनंदे मार्गमां चालतां चालतां श्रीपुरना उद्यानमां ऋषभ देव स्वामिना मंदिर पासे झाड नीचे बेठेलेा एक मुनि जोयेा. [४१] तथा तेना आगळे घणा लेाकना वच्चे रहेलेा एक वांदर जोयेा के, जे मुनिए बेालेला नमस्कार मंत्रने सांभळवामां एकतान थइ रह्यो हतेा. [४२] त्यारे राज्य विस्मय पामी, त्यां आवी मुनीश्वरने नमीने बेठेा, एटलामां ते वांदर मरण पाम्यो. (४३) हवे राज्य बेाल्यो के, हे मुनीश्वर ! आ एक आश्चर्यनी वात छे के, आवा अति चपळ मनवाळा वांदराओ पण

हुंति ॥ ४४ ॥ ता कहसु पुरा को आसि–एस, साहूवि साहइ नरिंद । महुराइ आसि एसो–वणिओ इत्तो भवे तइए ॥ ४५ ॥

संविग्गो पडिवन्नो–कयावि दिक्खं सुभद्दगुरुमूले । ईसि अपन्नवणिज्जो—जडभावा सुतवनिरओवि ॥ ४६ ॥ अंते काउ अणसणं—जाओ अमरो सुहम्मकप्पंमि । छम्माससेस माउं—वियाणिउं अप्पणो सो उ ॥ ४७ ॥ पुच्छेइ केवलिं वंदिऊण इत्तो चुयस्स मे भंते । कत्थुप्पत्ती होही—कहंव पहु, बोहिलाभो य ? ॥ ४८ ॥ तो केवलिणा भणियं—पज्जंते भद्द अट्टज्झाणेणं । मरिऊण वानरो तं—होहिसि सिरिपुरवरुज्जाणे ॥ ४९ ॥ जिणबिंबदंसणाओ—तत्थ लहिस्ससि तुमं कहवि बोहिं । इय सोउं सो तियसो—लहु उज्जाणं इमं पत्तो ॥ ५० ॥

तो तुंगसिंगसोहा—पहसियहिमसिहरिसिहरमइरसमं । पवणपकंपिरधयवड—रणंतमणिकिंकिणीजालं ॥ ५१ ॥ डज्झंतपवरघणसार—अगुरु

જિન ધર્મમાં નિશ્ચળ મન રાખી શકે છે. (૪૪) માટે કહો કે, એ પૂર્વે કોણ હતો ? સાધુ બોલ્યા કે, હે નરેંદ્ર ! એ ત્રીજા ભવ ઉપર મથુરામાં એક વાણિયો હતો. [૪૫]

તેણે સંવેગ પામીને એક વેળા સુભદ્ર ગુરૂની પાસે દીક્ષા લીધી. તે ભારે તપ કરવા લાગ્યો, પણ જડ હોવાથી જરા હઠીલો રહેતો. [૪૬] તે અંતકાળે અણસણ કરી સૌધર્મ દેવલોકમાં દેવતા થયો. બાદ તે જ્યારે પોતાનું ૬ક્ત ૭ માસ બાકી રહેલું આયુષ્ય જાણવા લાગ્યો, ત્યારે કેવલિને વાંદિને પૂછવા લાગ્યો કે, હે પૂજ્ય ! ઇહાંથી ચવીને હું ક્યાં ઉપજીશ, તેમજ મને શી રીતે બોધિ લાભ થશે ? [૪૭–૪૮] ત્યારે કેવલિએ કહ્યું કે, હે ભદ્ર ! તું અંતકાળે આર્ત ધ્યાનથી મરીને શ્રીપુરના ઉદ્યાનમાં વાંદર થઇશ. [૪૯] અને ત્યાં કોઇક રીતે જિન બિંબને જોઇને તું બોધિ પામીશ, એમ સાંભળીને તે દેવતા તુરત તે ઉદ્યાનમાં આવ્યો. [૫૦]

ત્યાં તેણે તુષ્ટ મનથી અતિ ઉંચા શિખરની શોભાથી હીમાચળના શિખરની અણીઓને હસતું પવનથી ફરકતી ધજાઓમાં રણકતી મણિ કિંકિણીઓવાળું, બળતા ઉંચા

मघमघमघंतगंधट्टं । थंभसहस्ससमेयं—मणिमयभासंतभित्तिल्लं ॥ ५२ ॥ सो सिरिजुगाइजिणवर–भवण मिणं तुट्ठमाणसोकासी । बद्धाउयत्तणेणं–चविय इमो वानरो जाओ ॥ ५३ ॥ कहकहवि णेण भमिरेण–इत्थ इत्तो अईय तइयदिणे । दिट्ठ मिणं जिणभवणं–पत्तं लहु जाइसरणं च ॥ ५४ ॥ तो वेरग्गागओ सो–मह पासं पप्प अणसणं काउं । पंचपर-मिट्ठिमंतं–सुमरंतो मरण मणुपत्तो ॥ ५५ ॥

इय जा वानरचरियं—फहइ मुणी ता पवंगजीवो सो । सोहंम देवलोए–हिमप्पहे वरविमाणंमि ॥ ५६ ॥ ससिकर सियदेवंसुय–संवुय-सुरसयणमुंदरुच्छंगे । सुत्तिपुडंतो मुत्ताहलव्व जाओ सुरो पवरो ॥ ५७ ॥ उप्पत्ति अणंतरदूर–विहियदेवंसुओ उवविसित्ता । अइसयविम्हियहियओ–पिच्छंतो सयलदिसिवलयं ॥ ५८ ॥ जय जय नंदा जय जय–भद्दा इच्चाइमहुरवयणाइं । अमरच्छरनियराणं—हरिसियहिययाण निसुणंतो

કપૂર અને અગરથી મઘમઘાયમાન સુગંધથી ભરપૂર, હજાર થાંભલાવાળું, મણિની ઝળકતી ભીંતોવાળું શ્રી યુગાદિ જિનેશ્વરનુ આ મંદિર તૈયાર કર્યું, અને પોતે તે પૂર્વે વાંદરાનું આયુષ્ય બાંધેલું હોવાથી ચવીને આ વાંદરો થયો. (૫૧–૫૨–૫૩) હવે એણે ભમતાં ભમતાં કોઇક રીતે આજથી ત્રીજા દિન ઉપર આ જિન ભવન જોયું, એટલે તેને જાતિ સ્મરણ થયું. (૫૪) તેથી તે વૈરાગ્ય પામી મારી પાસે આવીને અણુસણ કરી પંચપરમેષ્ટિ મંત્ર સંભારતો થકો મરણ પામ્યો છે. [૫૫]

આ રીતે મુનિ વાંદરાનું ચરિત્ર કહેતા હતા, એટલામાં તે વાંદરનો જીવ સૌધર્મ દેવલોકના હિમપ્રભ નામના ઉત્તમ વિમાનમાં ચંદ્ર જેવા ધોળા દેવાંશુકથી ઢાંકેલી દેવશય્યામાં છીપમાં જેમ મોતી પેદા થાય, તેમ દેવપણે પેદા થયો. [૫૬–૫૭] ઉત્પન્ન થયા બાદ તુરતજ દેવાંશુકને દૂર કરીને બેસતો થઇ અતિ વિસ્મય હૃદયથી સઘળી બાજુએ જોતો થકો, અને " જય જય નંદા, જય જય ભદ્દા. " ઇત્યાદિક હર્ષિત હૃદયવાળી દેવાં-

॥ ૫૯ ॥ किं दिन्नं किं तविय–किं जिट्ठं वा मए पुराजंमे । इय चिंता वसओ ओहि–नाणविन्नायपवगभयो ॥ ६० ॥

सव्वाइं देवकिच्चाइं–मुतु बहुदेवदेविपरियरिओ । तत्थेव लहुं पत्तो–पणओ विणएण मुणिचरणे ॥ ६१ ॥ सिरिनाभेय जिणिंदं—अंचिय रोमंच अंचियसरीरो । साहु साहुं पुणो पुणो पणमिऊण पत्तो सुरो सग्गं ॥ ६२ ॥ इय दट्ठु सुनंदनिवो–संविग्गो तस्स साहुणो मूले । सहसाउहसुयवियरिय–रज्जो दिक्खं पवज्जेइ ॥ ६३ ॥ अह सहसाउह-राया–पणमेऊणं सुनंदरायरिसिं । कंपिल्लपुरे पत्तो तिवग्गसारं कुणइ रज्जं॥ ६४ ॥ सुचिरं सुनंदसाहू–विहरइ गुरुणा समं महियलंमि। दसविह सामायारी–पालणपवणो पसन्नमणो ॥ ६५ ॥

पडिकूलकम्ममब्भार–पिल्लिओ सो कयावि रायरिसि । गलिय सुहज्झवसाओ–चिंतिउ मेवं समाढत्तो ॥ ६६ ॥ पडिलेहणापमज्जण—

ગનાઓનાં મધુર વચનો સાંભળતો થકો, તે વિચારવા લાગ્યો કે, મેં પૂર્વ ભવે શું દીધું છે ? શું તપ કર્યું છે ? અથવા શું પૂજ્યું છે ? આવી ચિંતામાં અવધિ જ્ઞાનથી તે વાંદરાના ભવને જાણવા લાગ્યો. [૫૮–૫૯–૬૦]

તે દેવ સઘળાં દેવકૃત્ય છોડી ઘણાં દેવદેવીઓ સાથે તે મુનિ જ્યાં હતા, ત્યાં આવી મુનિના ચરણોમાં વિનયથી નમ્યો. [૬૧] બાદ રોમાંચિત થઈને શ્રી ઋષભ દેવને પૂજીને તથા તે સાધુને વારંવાર નમીને તે દેવ સ્વર્ગે ગયો. [૬૨] આ બનાવ જોઈને સુનંદ રાજા સંવેગ પામી પોતાના સહસ્રાયુધ નામના પુત્રને રાજ્ય સોંપી તે સાધુના પાસે દિક્ષા લેવા લાગ્યો. [૬૩] હવે સહસ્રાયુધ રાજા સુનંદ રાજર્ષિને નમીને કાંપિલ્યપુરમાં આવી ત્રણ વર્ગ સાચવીને રાજ્ય કરવા લાગ્યો. (૬૪) સુનંદ સાધુ પણ લાંબા વખત સુધી દશવિધ સામાચારી પાળવામાં તત્પર અને પ્રસન્ન મનવાળો રહીને ગુરૂની સાથે પૃથ્વીપર વિચરવા લાગ્યો. (૬૫)

હવે તે રાજર્ષિ એક વેળા પ્રતિકૂળ કર્મના જોરથી પ્રેરાયો થકો શુભ અધ્યવસા-

पमुहविहाणं विणावि किर सुगई । लब्भइ जीवेहिं नियइ भावओ नि-च्छियं एवं ॥ ६७ ॥ कह मन्नहा महाहव–वावारनिउत्त चित्तविरिओवि । देवत्तं संपत्तो–मित्तो वज्जाउहो मज्झ ? ॥ ६८ ॥ अइसुद्धचरणकिरिया–विगलोवि तया स वानरस्स जिओ । उत्तत्तजच्चकंचण–वन्नो तियसो समुप्पन्नो ॥ ६९ ॥ सुघंति य समएविहु–तह भव्वतुब्भवंतसामत्था । अकयकिरियावि मरुदेवि–माइणो सिवपयं पत्ता ॥ ७० ॥

ता तहभवत्तं मिय–कल्लाणकलावकारणं परमं । तदभावे पुण विहलो–सयलो कायव्ववावारो ॥ ७१ ॥ संजम तवाइएहिं–पागं सोएइ एयमवि तुच्छं । मरुदेवीपमुहाणं–तव्विरहे किंकओ पागो ॥ ७२ ॥ एवं चरणावारग–कम्मविरुज्झं तसुद्धपरिणामो । सो साहू तवकिरियासु–ईसि मंदायरो जाओ ॥ ७३ ॥ अह सुयबलेण नाउं–सुगुरू साहुस्स

યથી રહિત થઈને આ રીતે ચિંતવવા લાગ્યો કે—(૬૬) પડિલેહણા અને પ્રમાર્જના વગેરે ક્રિયા કર્યા વિના પણ જીવો નિયતિના ભાવથી સુગતિ પામી શકે છે, એ વાત નિ-શ્ચિત છે. (૬૭) નહિ તો મહા યુદ્ધના વ્યાપારમાં ચિત્ત અને બળને જોડનાર મારો વજ્રાયુદ્ધ નામે મિત્ર દેવતા કેમ થતે ? (૬૮) તેમજ તે વેળાએ અતિ શુદ્ધ ચારિત્રની ક્રિયાથી રહિત તે વાનરનો જીવ તપાવેલા ઉંચા સોના સમાન વર્ણવાળો દેવ થયો. [૬૯] સિદ્ધાંતમાં પણ સંભળાય છે કે, તથા ભવ્યતાના બળે કરીને મરૂદેવી વગેરે કંઇ પણ ક્રિયા કર્યા વગર મોક્ષે પહોંચ્યા છે. (૭૦)

માટે તથા ભવ્યતાજ કેવળ કલ્યાણ કળાપનું પરમ કારણ છે. જો તે ન હોય તો સઘળી કર્ત્તવ્ય ક્રિયા નિષ્ફળ થાય છે. [૭૧) સંયમ અને તપ વગેરેથી તથા ભવ્ય-ત્વભાવ પાકે છે, એમ કહેવું એ પણ તુચ્છ [નકામું] છે. કેમકે મરૂદેવી વગેરેને તપ સંયમ ન હતાં, છતાં તેનો કેમ પાક થયો ? [૭૨] આ રીતે ચારિત્રા વરણી કર્મથી શુદ્ધ પરિણામમાં અટકી પડી, તે સાધુ તપ અને ક્રિયામાં જરા ઓછા આદરવાળો થયો. (૭૩) હવે ગુરૂએ શ્રુત જ્ઞાનના બળથી તેનો અભિપ્રાય જાણી લીધો, અને તે

तस्स भिप्पायं । पन्नवणिज्जत्तं तह–महुरगिराए इमं भणइ ॥ ७४ ॥ भो भद्द पयगमणपउण—पडिलेहणाइकिरियाए । सुगइपहदीविगाए—खणंपि मा काहिसि पमायं ॥ ७५ ॥

नय एगंतेणं नियइ–भावओ होइ कज्जसंसिद्धी । जं पुरिसकार-कालाइणोवि हेऊ इहं भणिया ॥ ७६ ॥

तथाचोक्तं

कालो[१] सहाव[२] नियई[३]–पुव्वकयं[४] पुरिसकारणे[५] गंता । मिच्छत्तं ते चेव उ–समासओ हुंति समत्तं ॥ ७७ ॥ जंपिहु मरूदेवी पुव्व—मकयतवनियमसंजमविसेसा । तज्जम्मिच्चिय सुहभाव—जोगओ सिद्धि मणुपत्ता ॥ ७८ ॥ जयअच्छेरयभूयं—तदुदाहरणं तहावि विबुहेहिं । ववहार विलोवाओ–कयावि ना लंबणीयं ति ॥ ७९ ॥

तथाचागमः

પ્રજ્ઞાપનીય છે, એમ પણ જાણ્યું, તેથી તે મધુરવાણીથી એમ કહેવા લાગ્યા કે, હે ભદ્ર ! પલેડિહણાદિક ક્રિયા કે જે સુગતિના માર્ગની દીપિકા સમાન છે, તેમાં ક્ષણભર પણ પ્રમાદ મ કર. (૭૪–૭૫)

નિયતિ ભાવથીજ કાર્ય સિદ્ધિ થાય છે, એમ પણ કંઇ એકાંત નથી. કેમકે ઉદ્યમ અને કાળ વગેરેને પણ કાર્યના હેતુ કહેલા છે. (૭૬) જે માટે કહેલું છે કે, કાળ, સ્વભાવ નિયતિ, પૂર્વકૃત, અને પુરૂષાકાર એ પાંચ કારણને છુટા માનતાં મિથ્યાત્વ થાય છે, અને સાથે માનતાં સમ્યકત્વ રહે છે. [૭૭] વળી જે મરૂદેવી પૂર્વે તપ, નિયમ અને સંયમ કર્યા વગર તેજ ભવે શુભ ભાવના યોગે કરી સિદ્ધિ પામી. (૭૮) એ ઉદાહરણ જગતમાં જો કે આશ્ચર્યભૂત છે, તોપણ સમજુ જનોએ તે કદાપિ પકડવું જોઇએ નહિ. કેમકે તે રીતે વ્યવહારનો વિલોપ થઇ પડે. [૭૯]

જે માટે આગમમાં કહ્યું છે કે, જો જિનમત સ્વીકારો તો વ્યવહાર અને નિશ્ચય

जइ जिणमयं पवज्जह—ता मा ववहारनिच्छए मुयह । ववहार नउच्छेए–तित्थुच्छेओ जओ भणिओ ॥ ८० ॥ ववहारो विहु बलवं—जं वंदइ केवलीवि छउमत्थं । आहाकम्मं भुंजइ—सुयववहारं पमाणंतो ॥ ८१ ॥

किंच,

विहिसंपत्त महन्नो—पत्थितो जह जणो निरुत्तप्पो । इह नासइ तह पत्तेय—बुद्धलच्छिं पडिच्छंतो ॥ ८२ ॥ तहभव्वत्ताउ च्चिय—सिवलाभो दुक्कराइ किरियाए । करणं अणुचिय मेयंपि–सुंदरं नो जओ भणियं ॥ ८३ ॥

तित्थयरो चउनाणी–सुरमहिओ सिज्झियव्वयधुयंमि । अणिगूहिय-बलविरिओ–सव्वत्थामेण उज्जमइ ॥ ८४ ॥ इय जइ तेविहु नित्थिन्नपा-यसंसारसायरावि जिणा । अब्भुज्जमंति तो सेसयाण को इत्थ वामोहो

એ બંનેને મૂકો માં. કેમકે વ્યવહારને મૂકી દીધાથી તીર્થનો ઉચ્છેદ થાય, એમ કહેલું છે. [૮૦] વ્યવહાર પણ બળવાન્ છે, જે માટે કેવળ જ્ઞાન ઉપજ્યા છતાં, પણ જ્યાં સુધી તે પ્રગટપણે જણાયું ન હોય, ત્યાં સુધી તે કેવલિ શિષ્ય પોતાના છદ્મસ્થ ગુરૂને વાંદે છે, તથા શ્રુત વ્યવહારથી તપાસીને આણેલો આહાર કદાચ આધાકર્મિ હોય, તોપણ શ્રુત વ્યવહારને પ્રમાણ રાખવા ખાતર કેવળી જમે છે. [૮૧] વળી જેમ અભાગીઓ માણસ નિધાનમાં પડેલાં ધનને પણ ખોદીને નહિ કહાડતાં કેવલ પ્રાર્થના કરતો રહી નાશ પામે છે, તેમ અહીં જે પ્રત્યેક બુદ્ધની લક્ષ્મી મેળવવાની પ્રાર્થના કરે છે, તેના પણ એજ હાલ થાય. [૮૨] વળી તથા ભવ્યતાથીજ મોક્ષ મળે છે, માટે દુષ્કર ક્રિયા કરવાનું શું કામ છે ? એમ કહેવું પણ ઠીક નથી, જે માટે કહેલું છે કેઃ—(૮૩)

વળી દેવ પૂજ્ય ચતુર્જ્ઞાની તીર્થંકર જાણેજ છે કે, મારે નક્કી સિદ્ધિએજ જવાનું છે, છતાં બળવીર્ય ગોપવ્યા વગર પૂરતા જોરથી ઉદ્યમ કરતા રહે છે. [૮૪] આ રીતે લગભગ સંસારસાગરના પારે પહોંચેલા તીર્થંકરો પણ ઉદ્યમ કરે છે, તો પછી બી-

॥ ૮૫ ॥ इय हियउब्भवकुग्गह–निग्गहमंतोवमं गिरं गुरुणो । सोउं सुनंदसाहू–पन्नवणिज्जो महाभागो ॥ ८६ ॥ मुत्तुं नियय मसग्गह–मालोइय तह गुरूण पयमूले । सविसेस निच्चलमणो–अकलंकं कुणइ चारित्तं ॥ ८७ ॥ सुचिरं चरितु चरणं–दहिउं झाणानलेण कम्मवणं । अन्नाण-तिमिरतरणी–सिद्धिं पत्तो सुनंदपुणी ॥ ८८ ॥

सुनंदराजर्षिचरित्रमेवं—
श्रुत्वा मनःस्थैर्यकरं सुधर्मे ।
मुमुक्षवो सद्ग्रहनिग्रहाय—
प्रज्ञापनीयत्वमिदं श्रयंतु ॥ ८९ ॥

॥ इति सुनंदराजर्षिकथा ॥

(छ)

જનોએ અહીં શો અંદેશો લાવવાનો છે ? [૮૫] આ રીતે હૃદયમાં ઉત્પન્ન થએલા કુગ્રહને ટાળવા મંત્ર સમાન ગુરૂની વાણી સાંભળીને સુનંદ સાધુ પ્રજ્ઞાપનીય અને ભાગ્યવાન્ હોવાથી પોતાના અસદ્ગ્રહને છોડી ગુરૂની પાસે આલોયણા લઇ વિશેષે કરીને નિશ્ચળ મન રાખી અકલંક ચારિત્ર પાળવા લાગ્યો. (૮૬–૮૭) તે લાંબા વખત સુધી ચારિત્ર પાળી ધ્યાનાગ્નિથી કર્મવન બાળી અજ્ઞાનરૂપ અંધકારને સૂર્યની માફક દૂર કરીને સિદ્ધિપદ પામ્યો. (૮૮)

આ રીતે ધર્મમાં મનને સ્થિર કરનારૂં સુનંદ રાજર્ષિનું ચરિત્ર સાંભળીને મુમુક્ષુ જનોએ અસદ્ગ્રહને હઠાવવા માટે પ્રજ્ઞાપનીયપણું ધારણ કરવું છું. (૮૯)

આ રીતે સુનંદ રાજર્ષિની કથા છે.

इत्युक्तं प्रज्ञापनीयत्वमिति भावसाधोस्तृतीयं लिंगं—संप्रति क्रियास्वप्रमाद इति चतुर्थं लिंगं व्याख्यानयन्नाह.

[मूलं]

सुगइनिमित्तं चरणं-तं पुण छक्कायसंजमो येव।
सो पालिउं न तीरइ-विगहाइपमायजुत्तेहिं ॥ ११० ॥

(टीका)

शोभनागतिः सुगतिः सिद्धिरेव तस्यानिमित्तं कारणं चरणं यतिधर्म,-स्तदुक्तं,—

नो अन्नहावि सिद्धी पाविज्जइ जं तओ इमीएवि,
एसो चेव उवाओ-आरंभावट्टमाणो उ.

तथा

આ રીતે પ્રજ્ઞાપનીયપણારૂપ ભાવ સાધુનું ત્રીજું લિંગ કહ્યું, હવે ક્રિયાઓમાં અપ્રમાદરૂપ ચોથા લિંગની વ્યાખ્યા કરે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

સુગતિનું કારણ ચારિત્ર છે, અને છકાયનું રક્ષણ કરવું એજ ચારિત્ર છે, તે વિકથાદિક પ્રમાદમાં ફસેલા હોય, તેમનાથી પાળી શકાય નહિ. (૧૧૦)

ટીકાનો અર્થ.

શોભન [સારી] ગતિ તે સુગતિ એટલે કે સિદ્ધિજ સુગતિએ ગણાય, તેનું નિમિત્ત એટલે કારણ ચરણ એટલે યતિ ધર્મજ છે. જે માટે કહેલું છે કેઃ—

જે માટે બીજા પ્રકારે સિદ્ધિ પમાતી નથી, તે માટે એ સિદ્ધિનો એજ ઉપાય છે, તે એકે આરંભમાં નહિ વર્ત્તવું.

विरहिततरकांडाः बाहुदंडैः प्रचंडं—
कथमपि जलराशिं धीधना लंघयंति ।
ननु कथमपि सिद्धिः साध्यते शीलहीनै—
र्दृढयति यतिधर्मे चित्त मेवं विदित्वा ॥ (इति)

तत् पुनश्चरणं षट्कायसंयम एव पृथ्वीजलज्वलनपवनवनस्पतित्रसकायजीवरक्षैव—किमुक्तं भवति ? एतेषु षट्जीवनिकायेष्वेकमपि जीवनिकायं विराधयन् जगद्गर्तुं राज्ञाविलोपकारित्वादचारित्री संसारपरिवर्द्धकश्च.

तथा चाहुः प्रतिहतसकलव्यामोहतमिश्राः श्रीधर्मदासगणिमिश्राः

सव्वाओगे जह कोइ—अमच्चो नरवइस्स घित्तूण । आणाहरणे पावइ—वहबंधणदव्वहरणं वा ॥ १ ॥ तह छक्कायमहव्वय—सव्वनिवित्तीउ गिण्हिऊण जई । एगमवि विराहंतो—अमच्चरन्नो हणइ बोहिं ॥ २ ॥ तो

વળી કહેલું છે કે, વહાણ વગર પ્રકટ બાહુઓથી મોટા દરિયાને બુદ્ધિવાનો જેમ તેમ કરી ઉલ્લંઘી શકે છે, પણ શીળ વિના સિદ્ધિ મેળવી શકાતી નથી, એમ જાણીને યતિ ધર્મમાં ચિત્તને દ્રઢ કરવું.

તે ચરણ બીજું કંઈ નહિ, પણ ષટ્કાયનો સંયમ એટલે પૃથ્વી, પાણી, અગ્નિ, પવન, વનસ્પતિ અને ત્રસકાયના જીવોની રક્ષા કરવી તેજ છે. સારાંશ એ છે કે, સાધુ એ છકાયમાંથી એક પણ કાયની વિરાધના કરે, તો પરમેશ્વરની આજ્ઞાનો લોપ કરનાર થવાથી અચારિત્રી અને સંસારને વધારનાર થાય છે.

જે માટે સઘળા ભ્રમરૂપ અંધકારને હણનાર શ્રી ધર્મદાસગણી કહે છે કેઃ—

જેમ કોઇ અમાત્ય રાજાનો સર્વ કારભાર ચલાવવાનું કામ સ્વીકારી જો આજ્ઞાનો ભંગ કરે તો, તે વધ બંધન પામે છે, તથા તેનું દ્રવ્ય લઇ લેવામાં આવે છે, તેમ છકાયની હિંસાથી સર્વથા નિવૃત્તિરૂપ મહા વ્રત લઇને યતિ જો તેમાંના એક કાયને પણ વિરાધે, તોપણ અમાત્ય અને રાજાના દ્રષ્ટાંતે બોધિને હણે છે. [૧-૨] બોધિ હણાતાં પછી તે કરેલા અપરાધને અનુસરતા અમિત દુઃખ પામીને ફરીને સંસારસમુદ્રમાં પડયો થકો જરા મરણના ચક્રમાં ભમતો રહે છે. (૩) વળી યતિનો ધર્મ એ છે કે, છકાયના

हयबोही पच्छा–कयावराहाणुसरिस मिय मंमियं । पुणवि भवोयहि पडिओ–भमइ जरामरणदुग्गंमि ॥ ३ ॥

किंच,

छज्जीवनिकायमहव्वयाण परिपालणाइ जइधम्मो । जइ पुण ताइं न रक्खइ–भणाहि को नाम सो धंमो ॥ ४ ॥ छज्जीवनिकायदया–विवज्जिओ नेव दिक्खिओ न गिही । जइधंमाओ चुक्को–चुक्कइ गिहिदाणधम्माओ. इत्यादि

स पुनः संयमः पालयितुं वर्द्धयितुं–न तीरइत्ति न शक्यते–विकथा विरूद्धाः कथा राजकथाद्या रोहिणीकथायां सप्रपंचं प्ररूपिताः–आदिशब्दाद्विषयकषायादि–परिग्रह–स्तल्लक्षणः प्रमादो विकथादिप्रमाद–स्तद्युक्तैः संयमः प्रतिपालयितुं न शक्यतेऽतः सुसाधुभिरसौ न विधेयइति.

प्रमादस्यैव विशेषतोपायहेतुतामाह,—

જીવ તથા મહા વ્રત બરોબર પાળવાં, હવે જો તેમને રાખે નહિ, તો પછી કહો કે, તેનો શો ધર્મ રહ્યો ? [૪]

છકાયની દયાથી રહિત જે હોય, તે સાધુ પણ ન ગણાય, અને ગૃહસ્થ પણ ન ગણાય, તે યતિધર્મથી તો ભ્રષ્ટ થયો, ને ગૃહસ્થના દાન ધર્મથી પણ ભ્રષ્ટજ છે. ઇત્યાદિ.

હવે તે સંયમને વિકથા એટલે રોહિણીની કથામાં વિસ્તારથી વર્ણવેલી રાજકથા વગેરે તથા આદિ શબ્દથી વિષયકષાયાદિરૂપ પ્રમાદથી જે યુક્ત હોય, તે પાળી શકતા નથી, માટે સુસાધુ જનોએ આ વિકથાદિ પ્રમાદ નહિ કરવો.

પ્રમાદનેજ વિશેષથી નુકસાન કરનાર જણાવે છેઃ—

॥ मूलं ॥

पव्वज्जं विज्जंपिव–साहंतो होइ जो पमाइल्लो ।
तस्स न सिज्झइ एसा–करेइ गरुयं च अवयारं ॥ १११ ॥

[टीका]

प्रव्रज्यां जिनदिक्षां विद्यामिव स्त्रीदेवताधिष्ठितामिव साधयन् भवति यः पमाइल्लु ति प्रमादवान्–आल्विल्लोल्लालवंतमंतेत्तेरमणामतेारितिवचनात्–तस्य प्रमादवतो न सिध्यति न फलदानाय संपद्यते एषा पारमेश्वरी दीक्षा विद्येव–चकारस्य भिन्नक्रमत्वात्–करोति च गुरुं महांतमपकारमनर्थमिति. भावार्थः पुनरयं;—यथाऽत्र प्रमादवतः साधकस्य विद्या फलदा न भवति–ग्रहसंक्रमादिकमनर्थं च संपादयति, तथा शीतलविहारिणो जिनदीक्षापि

મૂળનો અર્થ.

પ્રવ્રજ્યાને વિદ્યાની માફક સાધતો થકો જે પ્રમાદિ થાય, તેને તે સિદ્ધ થતી નથી, અને ઉલટું ભારે નુકસાન કરે છે. [૧૧૧]

ટીકાનો અર્થ.

પ્રવ્રજ્યા એટલે જિનની દિક્ષા એ સ્ત્રી દેવતાથી અધિષ્ટિત વિદ્યા જેવી છે, તેને સાધતાં જે પ્રમાદિલ્લો એટલે પ્રમાદવાન્ થાય (અહાં મતુ પ્રત્યયને આલુ, ઇલ્લ, ઉલ્લ, આલ, વંત, મંત, ઇત્ત, ઇર અને મણ એટલા આદેશ થતા હોવાથી ઇલ્લ આદેશ વાપર્યો છે). લેવા પ્રમાદિને વિદ્યાની માફક એ પારમેશ્વરી દિક્ષા સિદ્ધ થતી નથી, અને ઉલટો મોટો અપકાર એટલે અનર્થ કરે છે.

ભાવાર્થ એ કે, જેમ આ જગતમાં પ્રમાદવાળા સાધકને વિદ્યા સિદ્ધ થતી નથી, અને ઉલટું ઘેલો, ગાંડો બનાવી દે છે, તેમ શીતળ વિહારિને જિન દિક્ષા પણ સુગતિ નહિ

न केवलं सुगतिसंपत्तये न भवति किंतु देवदुर्गतिदीर्घभवभ्रमणा-पायं च विदधाति, आर्यमंगोरिव.

उक्तंच—

सीयल विहारओ खलु-भगवंतासायणा निओएण ।
तत्तो भवो सुदीहो-किलेसबहुला जओ भणियं ॥
तित्थयरपवयणसुयं-आयरियं गणहरं महिड्ढीयं ।
आसायंतो बहुसो-अणंतसंसारिओ भणिओ (त्ति)
तस्मादप्रमादिना साधुना भवितव्यमिति.

आर्यमंगुकथा चैवं.

इह अज्जमंगुसूरी-ससमयपरसमयकणयकसवट्टो । बहुभत्तिजुत्तसु-स्सूस-सिस्सि सु [ग्रं० ८५००] त्तत्थदाणपरो ॥ १ ॥

આપે, એટલુંજ નહિ, પણ દેવ સંબંધી દુર્ગતિ તથા દીર્ઘ ભવ ભ્રમણરૂપ અનર્થ કરે છે. આર્યમંગુની માફક.

જે માટે કહેલું છે કે, શીતળ વિહાર કરવાથી નિયમા ભગવાનની આશાતના થાય છે, અને આશાતનાથી કલેશ ભરેલો લાંબો સંસાર વધી પડે છે. જે માટે કહેવાય છે કે—

તીર્થંકર, પ્રવચન (સંઘ), શ્રુત, અને મહા ઋદ્ધિવાન્ ગણધર આચાર્યની વારંવાર આશાતના કરનાર અનંત સંસારિ થાય છે.

માટે સાધુએ અપ્રમાદિ થવું જોઇએ.

આર્યમંગુની કથા આ રીતે છે.

ઇહાં આર્યમંગુ નામે આચાર્ય હતા, તે સ્વ સમય અને પર સમયરૂપ સોનાને પારખવા કસોટી સમાન હતા, તથા બહુ ભક્તિવાળા અને શુશ્રુષાવાળા શિષ્યને સૂત્રાર્થ દેવા તત્પર રહેતા હતા. [૧]

सद्धम्मदेसणाए–पडिबोहिय भवियलोयसंदोहो । कइयावि विहारेणं–पत्तो महुराइ नयरीए ॥ २ ॥ सो गाढपमायपिसाय–गहियहियओ विमुक्कतवचरणो । गारवतिगपडिबद्धो–सड्ढेसु ममत्तसंजुत्तो ॥ ३ ॥ अणवरयभत्तजणदिज्जमाणरूइरन्नवत्थलोभेण । वुत्थो तहिंचिय चिरं–दूरज्झियउज्जुय विहारो ॥ ४ ॥ दढसिढिलयसामन्नो–निस्सामन्नं पमाय मत्तइत्ता । कालेण मरिय जाओ–जक्खो तत्थेव निद्धमणे ॥ ५ ॥ मुणिउं नियनाणेणं–पुव्वभवं तो विचिंतए एवं । हाहा पावेण मए—पमायमयम त्तचित्तेण ॥ ६ ॥

पडिपुन्नपुन्नलब्भं—दोगच्चहरं महानिहाणं व । लद्धंपि जिणमयमिणं–कहं नु विहलत्त मुवणीयं ॥ ७ ॥ माणुस्सखित्तजाई–पमुहं लद्धंपि धम्मसामग्गिं । हा हा पमायभट्ठं–इत्तो कत्तो लहिस्सामि ? ॥ ८ ॥

તે સદ્ધર્મની દેશનાથી અનેક ભવ્ય લોકોને પ્રતિબોધતો થકો, એક વેળાએ વિહારક્રમે મથુરા નગરીમાં આવ્યો. (૨) તે ત્યાં સખ્ત પ્રમાદરૂપ પિશાચથી ઘેરાઇને તપશ્ચરણ મેલી દઇ, ત્રણ ગારવમાં પ્રતિબદ્ધ રહી, શ્રાવકોમાં મમત્વ કરવા લાગ્યો. [૩] તથા ભક્તજનોએ નિરંતર દેવા માંડેલા રૂડાં અન્ન, અને વસ્ત્રના લોભે કરીને ઉદ્યત વિહાર છોડી દઇ, ત્યાંજ લાંબો વખત પડી રહ્યો. (૪) આ રીતે સાધુપણામાં ખૂબ શિથિળ રહી, સખ્ત પ્રમાદને છોડ્યા વગર અવસરે મરણ પામી, તેજ નગરના નિદ્ધમનમાં [પાણી નીકળવાના માર્ગમાં] યક્ષપણે ઉત્પન્ન થયો. [૫] તે જ્ઞાને કરીને પોતાના પૂર્વભવને જાણીને ચિંતવવા લાગ્યો કે, હા હા, હું પાપી પ્રમાદરૂપ મદિરામાં કેવો મત્ત બની ગયો કે,—(૬)

દરિદ્રપણાને હરનાર મહાનિધાનના માફક પ્રતિપૂર્ણ પુણ્યે કરી મળતા જિનમતને પામીને પણ તેને કેવી રીતે મેં વિફળ કર્યું ? [૭] મનુષ્યક્ષેત્ર, મનુષ્યજાતિ પ્રમુખ ધર્મસામગ્રી પામીને પણ, હાય હાય ! મેં પ્રમાદથી ખોઇ નાખી, એટલે હવે તેને શી રીતે ફરીને પામીશ ? (૮) અરે નાઉમેદ પાપી જીવ ! તે વેળાએ તેં શાસ્ત્રના અર્થનો જાણુ

हा जीव पात्र तइया–इड्ढीरसमारवाण विरसत्तं । सत्थत्थजाणगेणवि–हयास नहु लक्खियं तइया ? ॥ ९ ॥ चउदसपुव्वधरा विहु–पमायओ जंति णंतकाएसु । एयंपि हहा हा पाव–जीव न तए तया सरियं ? ॥ १० ॥ धिद्धी मइसुहमत्तं—धिद्धी मह बहुयसत्थकुसलत्तं । धिद्धी परोवएस–प्पहाणपंडिच्च मच्चंतं ॥ ११ ॥

एवं पमायदुव्विलसियं नियं जायपरमनिव्वेओ । निंदंतो दिवसाइं गमेइ सो गुत्ति खित्तु व्व ॥ १२ ॥ अह तेण पएसेणं–वियारभूमीइ गच्छमाणा ते । दट्ठूण नियविणेए–तेसिं पडिबोहणनिमित्तं ॥ १३ ॥ जक्खपडिमामुहाओ–दीहं निस्सारिउं ठिओ जीहं । तं च पलोइय मुणिणो–आसन्ना होउ इय बिंति ॥ १४ ॥ जो कोइ इत्थ देवो–जक्खो रक्खो व किंनरो वा वि । सो पयडं चिय पभणउ–न किंपि एवं वयं मुणिमो ॥ १५ ॥ तो सविसायं जक्खो–जंपइ भो भो तवस्सिणो सो हं । तुम्ह गुरू किरियाए–मुपमत्तो अज्जमंगु त्ति ॥ १६ ॥

હોઇને પણ, ઋદ્ધિગારવ અને રસગારવનું વિરસપણું કેમ ન ઓળખ્યું ? [૯] ચૌદપૂર્વના ધરનાર પણ પ્રમાદથી નિગોદમાં જાય છે, એટલું પણ, હે પાપી જીવ ! તેં તે વેળા નહિ સંભાર્યું ? (૧૦) ધિક્કાર છે મારી બુદ્ધિની સૂક્ષ્મતાને, મારી બહુ શાસ્ત્રોમાં રહેલી કુશળતાને, અને કેવળ પરોપદેશ કરવામાંજ રહેલી અત્યંત પંડિતાઇને. (૧૧)

આ રીતે તે પરમ નિર્વેદ પામી પોતાના પ્રમાદના દુર્વિલસિતને નિંદતો થકો કેદખાનામાં પડ્યો હોય, તેમ દિવસો વ્યસાર કરવા લાગ્યો. (૧૨) હવે તે રસ્તે સ્થંડિલે જતા પોતાના શિષ્યોને જોઇ તેમના પ્રતિબોધના અર્થે, તે પોતાની પ્રતિમાના મુખમાંથી જીભ લાંબી કહાડીને રહ્યો. તેને જોઇને તે મુનિઓ નજીકમાં આવી આમ બોલ્યા કે, જે કોઇ ઇહાં દેવ, યક્ષ, રાક્ષસ કે કિંનર હોય, તે પ્રગટપણે બોલો, તે શિવાય આ રીતે અમે કંઇ પણ સમજી શકતા નથી. [૧૩–૧૪–૧૫] ત્યારે વિષાદ સાથે યક્ષ બોલ્યો કે, હે તપસ્વિઓ ! હું તે તમારા ક્રિયામાં પ્રમાદી બનેલો આર્યમંગુ ગુરૂ છું. [૧૬]

साहूहिवि पडिभणियं–विसन्नहियएहि हा सुयनिहाण । किह देव-दुग्गइ मिमं–पत्तो सि अहो महच्छरियं ! ॥ १७ ॥ जक्खोवि आह न इमं–चुज्जं इह साहुणो महाभागा । एसच्चिय होइ गई–पमायवसमि-ढिलचरणाण ॥ १८ ॥ ओसन्नविहारीणं–इड्ढी रससायगारवगुरूणं । उम्मुक्कसाहुकिरियाभराण अम्हारिसाण फुडं ॥ १९ ॥ इय मज्झ कुदेवत्तं–भो भो मुणिणो वियाणिउं संमं । जइ सुगईए कज्जं–जइ भीया कुगइ गमणाओ ॥ २० ॥ ता गयसयलपमाया–विहारकरणुज्जुया चरणजुत्ता । गारवरहिया अममा–होह सया तिव्वतवकलिया ॥ २१ ॥

भो भो देवाणुप्पिय–संमं पडिबोहिया तए अम्हे । इय जंपिय ते मुणिणो–पडिवन्ना संजमुज्जोयं ॥ २२ ॥

इति सूरिरार्यमंगु—
र्मंगुलफलमलभत प्रमादवशात् ।

ત્યારે સાધુઓએ પણ દિલગીર થઇને કહ્યું કે, અફસોસ કે તું આવો શ્રુતનિધાન થઇને કેમ આવી દેવદુર્ગતિને પામ્યો છે! અહો આ તો મોટું આશ્ચર્ય છે! [૧૭] યક્ષ બોલ્યો કે, હે મહાભાગ સાધુઓ! એમાં કંઇ કહેવાનું નથી, અહીં પ્રમાદના વશથી ચારિત્રમાં શિથિળ થનારા, અવસન્નવિહારી [મંદ વિહારવાળા], ઋદ્ધિરસ તથા સાતા-ગારવથી ભારી બનેલા, સાધુની ક્રિયા નહિ કરનાર મારા જેવાઓની એજ ગતિ થાય છે. [૧૮–૧૯] આ રીતે હે મુનિઓ! મારૂં કુદેવપણું કરી રીતે વિચારીને જો તમોને સુગતિનું કામ હોય, અને જો કુગતિમાં જવાથી બીતા હો, તો સઘળો પ્રમાદ છોડી વિહાર કરવામાં ઉજમાળ રહી હમેશાં ચારિત્રયુક્ત, ગારવ રહિત, મમતા રહિત, અને તીવ્ર તપયુક્ત થાઓ. [૨૦–૨૧]

ત્યારે તે સાધુઓ બોલ્યા કે, હે દેવાનુપ્રિય! તેં અમને ઠીક પ્રતિબોધ્યા, એમ કહીને તેઓ સંયમમાં ઉદ્યોગી થયા. (૨૨) આ રીતે આર્યમંગુસૂરિ પ્રમાદના વશથી

तत् सद्यः शुभमतयः—
सदोद्यता भवत चरणभरे ॥ २३ ॥

॥ इत्यार्यमंगुकथा ॥

(छ)

प्रमादस्यैव युक्त्यंतरेण निषेधमाह.

॥ मूलं ॥

पडिलेहणाइ चिट्ठा-छक्कायविघाइणी पमत्तस्स ।
भणिया सुयंमि तम्हा-अपमाई सुविहिओ हुज्जा ॥ ११२ ॥

(टीका)

प्रत्युपेक्षणा प्रतिलेखना-दिशब्दाद्गमनादिपरिग्रहः चेष्टा क्रिया व्यापार

માટું ફળ પામ્યો; માટે હે શુભ મતિઓ ! તમે ચારિત્રમાં હમેશાં તરતોતરત ઉદ્યમવાન્ થાઓ. [૨૩]

આ રીતે આર્યમંગુની કથા છે.

ફરીને પ્રમાદનોજ બીજી યુક્તિથી નિષેધ કરે છે.

મૂળનો અર્થ.

પ્રમત્તની પડિલેહણા વગેરે ચેષ્ટા છકાયની વિઘાત કરનારી શાસ્ત્રમાં કહેલી છે, માટે સુવિહિતે અપ્રમાદી થવું. (૧૧૨)

ટીકાનો અર્થ.

પ્રત્યુપેક્ષણા કરવી તે પડીલેહણા જાણવી. આદિ શબ્દથી ગમનાદિકથી લેવા.

इत्येकार्थः—षट्कायविघातिनी प्रमत्तस्य साधोर्भणितोक्ताश्रुते सिद्धांते,—

तद्यथा.

पडिलेहणं कुणंतो—मिहोकहं कुणइ जणवयकहं वा,
देइ व पच्चक्खाणं—वाएइ सयं पडिच्छइ वा. १
पुढवी आउक्काए–तेऊवाऊ वणस्सइ तसाणं,
पडिलेहणापमत्तो—छण्हंपि विराहओ होई. २
घडगाइ पलोट्टणया—मट्टी अगणी य वाय कुंथाई,
उदगगया व तसेयर—ओसुयसंघट्टझामणया. ३
इय दव्वओ उ छण्हं—विराहओ भावओ इहरहावि,
उवउत्तो पुण साहू—संपत्तीए अवहओ य. ४ इत्यादि.

तस्मात्सर्वव्यापारेष्वप्रमादी सुविहितः शोभनं विहितमनुष्ठानं यस्य स सुविहितो भवेज्जायेतेति.

તે રૂપ ચેષ્ટા એટલે ક્રિયા કે વ્યાપાર. કેમકે એ ત્રણે શબ્દ એક અર્થવાળા છે. તે પ્રમાદી સાધુની છકાયની વિધાતક હોય છે, એમ શ્રુત એટલે સિદ્ધાંતમાં કહેલું છે. જેમકેઃ—

પડિલેહણા કરતા થકાં જે માંહોમાંહે વાતચીત કરે, અથવા જનપદ કથા કરે, અથવા પચખાણ લીએ દીએ તો, તે પડિલેહણામાં પ્રમત્ત થઇ પૃથ્વી, અપ્, તેજસ, વાયુ, વનસ્પતિ, અને ત્રસ એ છકાયનો વિરાધક થાય છે. [૧–૨] કેમકે તેમ કરતાં જે ઘડો વગેરે ઢોળાઈ પડે તો માટી, અગ્નિ, વાયુ અને કુંથુ વગેરે તથા પાણીમાં રહેલા ત્રસ જીવ અને પાણીના જીવોની [વિરાધના થાય], તથા ઝાકળનો સંઘટ્ટો થતાં તેની વિરાધના થાય. [૩]

આ રીતે દ્રવ્યથી છએ કાયનો વિરાધક ગણાય છે, અને ભાવથી જે કાયની વિરાધના કરે તેનોજ વિરાધક ગણાય છે. પરંતુ ઉપયુક્ત સાધુ કદાચ વિરાધના કરે, તોપણ અવધક (અઘાતક–અવિરાધક)જ છે, ઇત્યાદિ.

માટે સુવિહિત એટલે રૂડા અનુષ્ઠાનવાળા મુનિએ સર્વ વ્યાપારમાં અપ્રમત થવું.

अथ कीदृगप्रमादीस्यादित्याहः—

(मूलं)

रक्खइ वएसु खलियं—उवउत्तो होइ समिइगुत्तीसु ।
वज्जइ अवज्जहेउं—पमायचरियं सुथिरचित्तो. ॥ ११३ ॥

टीका.

रक्षत्यकरणबुध्ध्या परिहरति व्रतेषु विषयभूतेषु स्खलितमतिचारं.

तत्र प्राणातिपातविरतौ त्रसस्थावरजंतूनां संघट्टनपरितापनोपद्रावणानि न करोति.—मृषावादविरतौ सूक्ष्ममनाभोगादिना बादरं वचनाभिसंधिनालीकं न भाषते.

अदत्तादानविरतौ सूक्ष्मंस्थानाद्यननुज्ञाप्य न करोति, बादरं स्वामिजीवतीर्थंकरगुरुभिरननुज्ञातं नादत्ते नापि परिभुंक्ते. चतुर्थव्रते,

---

હવે કેવો હોય તે અપ્રમાદી થાય તે કહે છે.

મૂળનો અર્થ.

વ્રતમાં સ્ખલિત ન કરે, સમિતિ ગુપ્તિમાં ઉપયોગ રાખે, પાપના હેતુ પ્રમાદાચરણને સ્થિર ચિત્ત કરીને વર્જે. (૧૧૩)

ટીકાનો અર્થ.

વ્રતમાં સ્ખલિત એટલે અતિચારને અકરણીય જાણીને ત્યાગ કરે.

ત્યાં પ્રાણાતિપાત વિરતિમાં ત્રસ સ્થાવર જીવોનું સંઘટ્ટન પરિતાપન અને ઉપદ્રાવણ ન કરે. મૃષાવાદ વિરતિમાં સૂક્ષ્મ એટલે અનાભોગાદિકે કરીને, અને બાદર એટલે બોલવે કરીને મૃષાવાદ વર્જે.

અદત્તાદાન વિરતિમાં સૂક્ષ્મ તે રજા વગર રહેવાનું વગેરે ન કરે, અને બાદર તે સ્વામિ, જીવ, તીર્થંકર, અને ગુરૂએ અનુજ્ઞાત નહિ કરેલું લે નહિ, અને ખાય નહિ.

वसहि[1] कह[2] निसिज्जि[3] दिय[4]–कुडुंतर[5] पुव्वकीलिय[6] पणीए[7] ।
अइमायाहार[8] विभूसणाइं[9] नव बंभगुत्तीओ ॥

इति नवगुप्तिसनाथं ब्रह्मचर्यं पालयति.

पंचमव्रते सूक्ष्मं वालादिममत्वं न करोति, बादरमनेषणीयाहारादि न गृह्णाति.

" परिग्गहो णेसणग्गहणे " इत्यार्षवचनात्.

उपकरणं वा न मूर्छया समधिकं धारयति,

" मुच्छा परिग्गहो वुत्तो " इतिवचनात्.

रात्रिभक्तविरतौ सूक्ष्मं शुष्कसंनिधिमपि न रक्षति, बादरं तु– " दिवागहियं दिवाभुत्तं, दिवागहियं राओभुत्तं, राओगहियं दिवाभुत्तं, राओगहियं राओभुत्त "–मिति चतुर्विधमपि रात्रिभुक्तं न करो–त्येवं सर्वव्रतेषुस्खलितं रक्षति.

तथोपयुक्तोदत्तावधानोभवति समितिषु प्रवीचाररूपासु

ચોથા વ્રતમાં વસતિ, કથા, નિષદ્યા ઇંદ્રિય, કુટયંતર, પૂર્વ ક્રીડિત,-પ્રણીત ભોજન, અતિ માત્ર આહાર અને વિભૂષણ એ નવ બ્રહ્મચર્યની ગુપ્તિઓ છે, તે નવ ગુપ્તિ સહિત બ્રહ્મચર્ય પાળે.

પાંચમા વ્રતમાં સૂક્ષ્મ તે વાળ વગેરેની મમતા ન કરે, અને બાદર તે અનેષણીય આહાર વગેરે ન લે. કેમકે અનેષણીય લેવું, તે પરિગ્રહ છે, એમ કહેલું છે, અથવા મૂર્છાએ કરીને અધિક ઉપકરણ નહિ ધારે. કેમકે મૂર્છા એ પરિગ્રહ છે, એમ કહેલું છે.

રાત્રિભોજન વિરતિમાં સૂક્ષ્મ તે સૂખડી પણ વાસી ન રાખે, બાદર તે દિવસે લીધું દિવસે ખાધું, દિવસે લીધું રાતે ખાધું, રાતે લીધું દિવસે ખાધું, રાતે લીધું રાતે ખાધું, એમ ચારે પ્રકારે રાત્રિભોજન ન કરે, એમ સર્વ વ્રતોમાં સ્ખલિતનું રક્ષણ કરે.

તેમજ ઉપયુક્ત એટલે સાવધાન હોય, સમિતિઓમાં એટલે પ્રવીચારરૂપે રહેલી અર્થાત્ પ્રવૃત્તિરૂપે રહેલી રીતિઓમાં.

उक्तंच,

समिओ नियमागुत्तो-गुत्तो समियत्तणंमि भइयव्वो।
कुसलवइ मुदीरंतो-जं वइगुत्तोवि समिओ वि.

गुप्तिष्वप्रवीचाररूपासु-उपयुक्तता चासु प्रवचनमात्रध्ययनोक्तविधिना विज्ञेया.

किं बहुना, वर्जयत्यवद्यहेतुं परिहरति पापकरणं प्रमादचरितं सुस्थिरचित्त इति स्पष्टार्थमेवेति.

तथा,

(मूलं)

कालंमि अणूणहियं-किरियंतरविरहिओ जहासुत्तं।
आयरइ सव्वकिरियं-अपमाई तो इह चरित्ती ॥ ११४ ॥

જે માટે કહેલું છે કેઃ—

સમિતિવાન્ હોય તે નિયમા ગુપ્ત ગણાય છે. ગુપ્તિવાન્માં સમિતિવાન્પણાની ભજના છે. જે માટે કુશળ વાણી બોલતો થકો વચનગુપ્તિવાન્ પણ ગણાય છે, અને સમિતિવાન્ પણ ગણાય છે.

તથા ગુપ્તિઓમાં એટલે અપ્રવીચારરૂપે રહેલીઓમાં.—એમાં ઉપયુક્તતા તે પ્રવચનમાતૃ નામના અધ્યયનમાં કહેલી વિધિથી જાણવી.

ઝાઝું શું કહીએ ? ટુકામાં અવદ્યહેતુ એટલે પાપનાં કારણ પ્રમાદચરિત્તને બરોબર સ્થિર ચિત્ત રાખીને વર્જન કરે, એ વાત સ્પષ્ટ અર્થવાળીજ છે.

વળી,

મૂળનો અર્થ.

સર્વ ક્રિયાને વખતસર અન્યુનાધિકપણે બીજી ક્રિયા છોડ-

[टीका]

कालेऽवसरे-यो यस्याः प्रत्युपेक्षणादिक्रियायाः प्रस्तावस्तस्मिन्नित्यर्थः कालमंतरेण कृष्यादयोपिनेष्टसिद्धयेस्युरित्यतः काले सर्वांक्रियां करोतितीयोगः—कथंभूतामन्यूनाधिकां न प्रमादातिशयादूनां नापि शून्यचित्ततयासमधिकां करो–त्यवसन्नताप्रसंगात्, यदाहुःश्रीभद्रबाहुस्वामिपादाः—

आवस्सयाइयाइं न करे अहवावि हीणमहियाइं ।
गुरुवयणबलाइ तहा–भणिओ एसो उ ओसन्नो ॥

तथा क्रियांतरविरहित इति एकस्याः क्रियाया द्वितीययांतरं–

ડીને સુત્રના અનુસારે આચરે, તે અપ્રમાદી ચારિત્રિઓ જાણવો. ૧૧૫

ટીકાનો અર્થ.

સર્વ ક્રિયાને વખતસર અન્યૂનાધિકપણે બીજી ક્રિયા છોડીને સૂત્રના અનુસારે આચરે, તે અપ્રમાદી ચારિત્રિઓ જાણવો.

કાળે એટલે અવસરે અર્થાત્ જે પડિલેહણા વગેરે ક્રિયાનો જે પ્રસ્તાવ [ટાંકણો] હોય તે વેળાએ—

અવસર વિના ખેતી વગેરે પણ ઇષ્ટસિદ્ધિ આપતી નથી, માટે અવસરે સઘળી ક્રિયા કરે એમ કહ્યું. તે કેવી રીતની કરે તે કહે છે—અન્યૂનાધિક એટલે પ્રમાદના જોરે ઉણી પણ ન કરે, અને શૂન્યચિત્ત રાખીને અધિક પણ ન કરે. કેમકે તેમ કરે તો, ઉસન્નો [અવસન્ન] કહેવાય છે; જે માટે પૂજ્ય શ્રીભદ્રબાહુસ્વામિએ કહ્યું છે કેઃ—

" આવશ્યકાદિક ન કરે, અથવા ઉણાં અદકાં કરે, અથવા ગુરૂના કહેવાથી કરે, તે ઉસન્નો કહેવાય છે. "

વળી ક્રિયાંતર વિરહિત રહે, એટલે કે એક ક્રિયાની વચ્ચે બીજી ક્રિયાનું અંતર

तेन विरहितः–प्रत्युपेक्षणादि कुर्वन्न स्वाध्यायं करोति–स्वाध्यायं कुर्वन्नव-स्त्रपात्रादिपरिकर्म गमनादिवे–त्यतएवोक्तमार्षे,—

इंदियत्थे विसज्झित्ता–सज्झायं चेव पंचहा ।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे–उवउत्तोरियं रिए ॥

यथासूत्रमिति सूत्रस्यानतिक्रमेण यथासूत्रं तत् पुनः—

सुत्तं गणहररइयं–तहेव पत्तेयबुद्धरइयं च,
सुयकेवलिणा रइयं–अभिन्नदसपुव्विणा रइयं.

इत्येषां च निश्चयतः सम्यग्दृष्टित्वेन सद्भूतार्थवादित्वा,—दन्य-ग्रथितमपितदनुयायि प्रमाणमेव–न पुनः शेषमिति, आचरति सर्वक्रियां अप्रमादी य इह चारित्रीति सुगममेवेति.

इत्युक्तं क्रियास्वप्रमादइति भावसाधोश्चतुर्थलिंगं.—सांप्रतं शक्या-नुष्ठानारंभ इति पंचमं लिंगं व्याख्यानयन्नाह.

ન પાડે—અર્થાત્ પડિલેહણા વગેરે કરતાં સ્વાધ્યાય ન કરે, અને સ્વાધ્યાય કરતાં વસ્ત્રપાત્ર વગેરેની સારફેર અથવા ગમન વગેરે ન કરે, એથીજ આગમમાં નીચે મુજબ કહેલું છેઃ—

ઇંદ્રિયાર્થ (વિષય) છોડીને પાંચ પ્રકારનો સ્વાધ્યાય કરતા રહી, તન્મૂર્ત્તિ [તન્મય] અને તત્પુરસ્કાર તેનેજ આગળ કરનાર થઇ ઉપયોગ ધરી કરતા રહેવું.

યથાસૂત્ર એટલે સૂત્રને નહિ ઉલંઘતાં—જેમ સૂત્રમાં હોય તેમ, ત્યાં સૂત્ર તે ગણધર, પ્રત્યેકબુદ્ધ, શ્રુતકેવળિ (ચૌદપૂર્વી), તથા પૂરા દશપૂર્વીનું રચેલું હોય તે જાણવું. કેમકે એટલા નિયમા સમ્યગ્દષ્ટિ હોવાથી ખરી વાતનાજ બોલનાર હોય છે. વળી તેને મળતું બીજાનું ચૂંથેલું પણ પ્રમાણજ ગણાય છે, પણ અણમળતું પ્રમાણ ન ગણાય. એ રીતે અપ્રમાદી ચારિત્રવાન્ હોય તે સર્વ ક્રિયા આચરે છે.

આ રીતે ક્રિયાઓમાં અપ્રમાદરૂપ ભાવસાધુનું ચોથું લિંગ કહ્યું. હવે શક્યાનુષ્ઠાના-રંભરૂપ પાંચમા લિંગની વ્યાખ્યા કરે છેઃ—

॥ मूलं ॥

संघयणादणुरूवं-आरंभइ सक्क मेवणुट्ठाणं ।
बहुलाभ मप्पछेयं—सुयसारविसारओ सुजई ॥ ११५ ॥

(टीका)

संहननं वज्रर्षभनाराचादि-आदिशब्दाद्द्रव्यक्षेत्रकालभावा गृह्यंते—तदनुरूपं तदुचितमेवारभते सर्वमनुष्ठानं तपःप्रतिमाकल्पादि यद्यस्मिन् संहननादौनिर्वोढुं शक्यते तदेवारभते-ऽधिकस्य निष्ठानयनाभावे प्रतिज्ञा-भंगसंभवात्.

कीदृशं पुनरारभते ? बहुलाभं विशिष्टफलप्रापकं अल्पच्छेदं स्तो-

મૂળનો અર્થ.

સંઘેણુ વગેરેને અનુરૂપ શક્ય અનુષ્ઠાન કે જે બહુ લાભ આપનાર, અને ઓછા નુકશાનવાળું હોય, તેનેજ શ્રુતના સારને જાણનાર સુયતિ આરંભે છે. (૧૧૫)

ટીકાનો અર્થ.

સંઘેણુ તે વજ્રર્ષભનારાચ વગેરે અને આદિ શબ્દથી દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવ લેવા. તેમને અનુરૂપ એટલે લાયક હોય તેવાજ સઘળા અનુષ્ઠાનને એટલે કે જે સંઘેણુમાં જે તપ, પ્રતિમા કે કલ્પ વગેરે કરી શકાય તેમ હોય તેનેજ કરે. તેથી અધિક કરવા જતાં પાર ન પહોંચે તો, પ્રતિજ્ઞાભંગ થવાનો સંભવ રહે છે.

કેવું આરંભે તે કહે છે, બહુ લાભવાળું એટલે વિશિષ્ટ ફળ આપનારું અને અલ્પ છેદવાળું એટલે થોડા નુકશાનવાળું, અલ્પશબ્દ અભાવવાચક ગણતાં સંયમને જે બાધાકારક

कव्यय—मल्पशब्दस्याभाववचनत्वात्— संयमाबाधकमितिभावः—श्रुतसारविशारदः सिद्धांततत्वाभिज्ञः सुयतिर्भावसाधुरिति.

कथं पुनरेवंविधंस्यादित्याह.—

॥ मुलं ॥

जह तं बहु पसाहइ—निवडइ आस्संजमे दढं न जओ।
जणिउज्जमं बहूणं—विसेसकिरियं तहा दवइ ॥ ११६ ॥

[टीका]

यथायेनप्रकारेण तदधिकृतमनुष्ठानं बहु प्रसाधयति पुनः पुनरासेवते, न निपतति असंयमे सावद्यक्रियामां दृढमत्यर्थंनैवयतोनुष्ठानात्—किंमुक्तंभवति ? अनुचितानुष्ठानपीडितो नपुनस्तत्करणायोत्सहेत—क-

---

ન હોય, તેવું એ પરમાર્થ નીકળે છે. કેાણ તો કે શ્રુતસાર વિશારદ એટલે સિદ્ધાંતના તત્ત્વનો જાણ સુયતિ એટલે ભાવસાધુ.

એવું કેમ થઇ શકે તે કહે છે.

મૂળનો અર્થ.

જેમ તેને બહુ સાધી શકે, અને જેનાથી ખાસ કરીને અસંયમમાં પડી ન જાય, તથા બીજા ઘણા જનોને તેમાં પ્રવર્ત્તાવી શકે, તે રીતે વિશેષ ક્રિયા કરે. [૧૧૬]

ટીકાનો અર્થ.

જેમ એટલે જે પ્રકારે તેને એટલે શરૂ કરવા ધારેલા અનુષ્ઠાનને બહુ સાધી શકે એટલે વારંવાર કરી શકે, અને જે અનુષ્ઠાનથી દૃઢપણે એટલે ખાસ કરીને અસંયમમાં એટલે સાવદ્ય ક્રિયામાં નહિ પડે—કેમકે અનુચિત અનુષ્ઠાનથી હેરાન થાય, તો ફરીને તે કરવા ઉમેદવાર નહિ થાય, તેમજ કોઈ વેળા દરદ પેદા થાય તો, તેની ચિકિત્સા કરાવતાં

दाचिदामयसंभवे च चिकित्सायामसंयम-स्तदकरणेचाविधिमृतस्य संयमांतरायोऽतएवोक्तं,

सोहु तवो कायव्वो-जेण मणो मंगुलं न चिंतेई,
जेण न इंदियहाणी-जेणय जोगा न हायंति (इति)

तथा जनितोद्यमं संपादितकरणमनोरथं बहूनामन्येषां समानधार्मिकाणां शिष्याणां—शक्यानुष्ठानेहि बहूनां चिकीर्षा संभवति नेतरस्मिन्निति—विशेषक्रियामधिकतरानुष्ठानं प्रतिमाभ्यासादिकं, तथाशब्दः समुच्चये-सचैवं योज्यते-शक्तौ सत्यां विशेषक्रियां चारभते न तां निःफलां विदधातीति.

कथंभूतां पुनर्विशेषक्रियां करोतीत्याह.

અસંયમ થાય, અને ચિકિત્સા ન કરાવે, તો અવિધિએ મરણ પામતાં સંયમમાં અંતરાય થાય—એટલા માટેજ કહેલું છે કે :—

તેજ તપ કરવું કે જેથી મન માઠું ચિંતવે નહિ, જેનાથી ઇંદ્રિયોને હરકત આવે નહિ, તથા જેનાથી યોગ (મન, વચન, કાયના વ્યાપાર) અટકી પડે નહિ.

વળી બીજા ઘણા સમાનધાર્મિક શિષ્યો તે કરવાનો મનોરથ કરી શકે તે રીતે. જે માટે શક્યાનુષ્ઠાનમાં ઘણાઓને કરવાની મરજી થાય, પણ અશક્યમાં નથી થતી.

તથા શબ્દ સમુચ્ચયાર્થે છે, તે એમ જોડવો કે, વળી શક્તિ છતાં વિશેષ ક્રિયા એટલે પ્રતિમાવહનની તુળના વગેરે પણ કરે—શક્તિને નિષ્ફળ ગમાવે નહિ.

વિશેષ ક્રિયા કેવી કરે, તે કહે છે.

॥ मूलं ॥

गुरुगच्छुन्नइहेउं—कयतित्थपभावणं निरासंसो ।
अज्जमहागिरिचरियं—सुमरंतो कुणइ सक्किरियं ॥ ११७ ॥

[टीका]

गुरोर्गच्छस्यचोन्नतिरुत्सर्पणा—धन्योयं गुरुर्गच्छो वा, यत्सान्निध्याद्देवंविधा दुःकरकारिणो दृश्यंते—इत्येवं जनश्लाघारूपा—तद्धेतुस्तत्कारणं,

तथा कृततीर्थप्रभावनां समुत्पादितजिनशासनसाधुवादां—साधुःसुंदरोयं जिनधर्मः सर्वधर्मेषु, वयमप्येनमेव कुर्म्म-इत्येवमादेयत्वसाधिकामितिभावः

निराशंस ऐहिकापुष्पिकाशंसाविप्रमुक्त-स्तदुक्तं,

મૂળનો અર્થ.

આર્યમહાગિરિનું ચરિત્ર સંભારીને આશંસા રાખ્યા વગર ગુરૂ અને ગચ્છની ઉન્નતિ કરનારી, અને તીર્થની પ્રભાવના વધારનારી સત્ક્રિયા કરે. [૧૧૭]

ટીકાનો અર્થ.

ગુરૂ અને ગચ્છની ઉન્નતિ એટલે ધન્ય છે આ ગુરૂને અથવા ગચ્છને, કે જેના સાથમાં આવા દુષ્કરકારિઓ દેખાય છે, એવી લોકપ્રશંસારૂપ ઉદ્દીપના, તેની કારણભૂત.

તથા તીર્થપ્રભાવના આમ તે રીતે એટલે જિનશાસનનો સાધુવાદ થાય તે રીતે—અર્થાત્ "સર્વે ધર્મોમાં આ જિનધર્મ વધારે સુંદર છે, અમે પણ એનેજ કરશું"—એ રીતે તેનું આદેયપણું વધારનાર હોય, તે પ્રભાવના છે.

નિરાશંસ રહીને એટલે આ ભવ તથા પરભવની આશંસાથી વેગળે રહીને,—જે માટે કહેલું છે કે:—

नो इहलोगट्ठयाए आयार महिट्ठिज्जा, नो परलोयट्ठयाए आयार महिट्ठिज्जा, नो कित्तिवन्नसद्दसिलोगट्ठयाए आयार महिट्ठिज्जा,–नन्नत्थ आरहंतिएहिं हेऊहिं आयार महिट्ठिज्जत्ति.

आर्यमहागिरेर्भगवतश्चरितं वृत्तांतं स्मरन् करोति सत्क्रियां भाव-साधुरिति गाथाक्षरार्थः–भावार्थस्तु कथानकादवसेयः

तच्चेदं.

आसी वीरविणेओ–नेओयहिपारगो सुहम्मपहू । समणजणसउणि-जंबू–जंबूसूरी तओ जाओ ॥ १ ॥ तस्सयसीसो गुणमणि–पभवो पभवो मुणी-सरो जाओ । तस्स विणेओ सिज्जंभवो भवोयहितरीतुल्लो ॥ २ ॥ तयणु मुणिंदो जाओ–जसभद्दो गरुयविमलजसभद्दो । भावारिअपरिभू-ओ–सूरी संभूयविजओ य ॥ ३ ॥ सिरिभद्दबाहुसामी–उवसामियकुम-

---

આ લોકના અર્થે અથવા પરલોકના અર્થે અથવા કીર્તિ વખાણ કે યશના અર્થે આચાર નહિ પાળવો, પણ આર્હંતિક [અરિહંતના કહેલા અથવા યોગ્ય] હેતુઓવડે કરીનેજ આચાર પાળવો.

આર્ય મહાગિરિનું ચરિત્ત એટલે વૃત્તાંત સંભારતો થકો ભાવસાધુ સદ્ક્રિયા કરે, એ રીતે ગાથાનો અક્ષરાર્થ છે. ભાવાર્થ તો કથાનક ઉપરથી જાણવો.

આર્ય મહાગિરિનું ચરિત્ર આ રીતે છે.

વીરપ્રભુના શિષ્ય સુધર્માસ્વામી થયા કે, જે જ્ઞેય પદાર્થરૂપ સમુદ્રના પારંગામિ હતા, તેમના શિષ્ય જંબુસૂરિ થયા કે, જે શ્રમણ જનરૂપ પક્ષિઓને જાંબુના ઝાડ માફક આધારભૂત હતા. (૧) તેમના શિષ્ય પ્રભવસૂરિ થયા, તે ગુણમણિના પ્રભવ [ખાણ જેમ] હતા. તેમના શિષ્ય શય્યંભવ હતા કે, જે સંસાર સમુદ્રમાં પ્રવહણ સમાન હતા. [૨] તેમના પછી ભારે નિર્મળ યશવાળા યશોભદ્રસૂરિ થયા, ત્યાર બાદ ભાવ શત્રુઓથી અપરાભૂત સંભૂત વિજયસૂરિ થયા. (૩) તેમના પછી શ્રી ભદ્રબાહુ સ્વામિ આચાર્ય

यकुग्गहपयासो । हरहासुज्जलकित्ती–कयमित्ती मुणिवरो जाओ ॥ ४ ॥

तइलोयलोय चमढण—विढत्तजय मयणमल्लबलदमणो । सिरिथूल भद्दसामी–जाओ सूरी जुगपहाणो ॥ ५ ॥ तस्सा सि दुन्नि सीसा—सीसामेलव्व समणसंघस्स । अज्जमहागिरिसूरी–अज्जसुहत्थी सिवसुहत्थी ॥ ६ ॥ तेय परुप्परपडिबंधबंधुरा धरियचरणकरणभरा । भवियजण-कुमुयबोहण–अखंडससिमंडलसमाणा ॥ ७ ॥ सरहसनमंतनरनाह–निवह-मणिमउड घिट्ठपयजुयला । जुगपवरगुणगरिट्ठा–सुचिरं विहरिंसु वसुहाए ॥ ८ ॥ अह सिस्स पसिस्साणवि–विहिपुव्वुवइट्ठसयलसुत्तत्थो । नियगण मप्पिऊणं–महागिरी सिरिसुहत्थिस्स ॥ ९ ॥

मण[1] परमोहि[2] पुलाए[3]–आहारग[4] खवग[5] उवसमे[6] कप्पे[7] । संजमतिय[8] केवलि[9] सिज्झणा य[10] जंबुम्मि वुच्छिन्ना ॥ १० ॥ इय

થયા, તે કુમતરૂપ કુગ્રહના પ્રકાશને દબાવનાર, અને મહા દેવના હાસ્યના જેવી ઉજળી કીર્તિવાળા હતા. (૪)

તેમના પછી શ્રી સ્થુલિભદ્ર સ્વામિ આચાર્ય થયા કે જે ત્રણ લોકના લોકોને જીતનાર કામદેવના બળને દબાવનાર, અને યુગપ્રધાન હતા. [૫] તેમના બે શિષ્ય હતાઃ—આર્ય મહાગિરિ અને મોક્ષ સુખના અર્થી આર્ય સુહસ્તિ, તે શ્રમણ સંઘના શીર્ષામલક [શિરોમણિ] સમાન હતા. [૬] તેઓ પરસ્પર પ્રીતિ ધરનારા, ચરણકરણના ભારને ઉપાડનાર, ભવ્ય જનરૂપ કુમુદોને બોધવા પૂર્ણ ચંદ્ર મંડળ સમાન ભક્તિથી નમતા રાજાઓના મણિવાળા મુગટોથી ઘસાતા પગવાળા અને યુગ પ્રવર ગુણે કરીને ગરિષ્ટ હોઇ ચિરંકાળ પૃથ્વીમાં વિચર્યા. (૭–૮) હવે શિષ્યો તથા પ્રશિષ્યોને પણ વિધિપૂર્વક સકળ સૂત્રાર્થ શીખવ્યા બાદ આર્યમહાગિરિએ પોતાનો ગચ્છ સુહસ્તિસૂરિને સોંપ્યો. [૯]

[બાદ તેમણે વિચાર્યું કે] મન પર્યવ, પરમાવધિ, પુલાક, આહારક, ક્ષપક, શ્રેણિ, ઉપશમ શ્રેણિ, જિન કલ્પ, ત્રણ સંયમ કેવલિપણું અને સિદ્ધિ એ દશ બાબતો જંબુ સ્વામિની સાથે વિચ્છિન્ન થઇ છે. [૧૦] તેથી જિનકલ્પને વિચ્છિન્ન થયેલો

नाउं जिणकप्पं वुच्छिन्नं तहवि तस्स परिकम्मं । कुणमाणो सो विहरइ-अममो गच्छस्स निस्साए ॥ ११ ॥ विहरंतो स महप्पा-पत्तो पाडलिपुरंमि कइयावि । तइया सुहत्थिगुरुणा-विबोहिओ तत्थ वसुभूई ॥ १२ ॥ नियसयण परियणे सोवि बोहए विविहहेउ जुत्तीहिं । नय तेसि कोवि बुज्झइ-तो सिट्ठी चिंतए एवं ॥ १३ ॥ सुगुणन्हियस्स वयणं-घयमहु सित्तु व्व पावओ भाइ । गुणहीणस्स न रेहइ—नेहविहूणो जह पइवो ॥ १४ ॥

इय चिंतिऊण तेणं-विन्नत्ता सूरिणो जहा भयवं । पसिय मह एह गेहं-करेह सयणाण पडिबोहं ॥ १५ ॥ अह नाउ नाणनिहिणो—गुरुणो गरुयं च तेसि उवयारं । कइवयपरिवारजुया-पत्ता वसुभूइगेहंमि ॥ १६ ॥ पारद्धा धम्मकहा-विचित्त जुत्तीहि तव्विबोहकए । इत्थंतरंमि पत्तो-महागिरी तत्थ भिक्खट्ठा ॥ १७ ॥ अब्भुट्ठिओय सहसा-सुह-

---

જાણતા થકાં પણ તેની નકલ કરતા થકાં તે ગચ્છની નિશ્રામાં રહી નિર્મમ થઇ વિચરવા લાગ્યા. (૧૧) તે મહાત્મા તે રીતે વિચરતા થકા એક વેળા પાટલિપુરમાં આવ્યા, ત્યાં સુહસ્તિ આચાર્યે વસુભૂતિ શેઠને પ્રતિબોધ્યો હતો. [૧૨] હવે તે શેઠ પોતાના સ્વજન પરિજનને અનેક હેતુ યુક્તિથી સમજાવવા લાગ્યો, પણ તે કોઇને પ્રતિબોધી શક્યો નહિ, ત્યારે ચિંતવવા લાગ્યો કે—ગુણવાનનું વચન ઘી અને મધથી સીંચેલા અગ્નિ માફક શોભે છે, અને ગુણહીનનું વચન તેલ વગરના દીવા માફક ઝાંખું રહે છે. [૧૩-૧૪]

એમ ચિંતવીને તેણે સુહસ્તિસૂરિને વીનંતી કરી કે હે ભગવન્ ! મહેરબાની કરી મારે ઘેર પધારો, અને મારા સ્વજનોને પ્રતિબોધ આપો. [૧૫] ત્યારે જ્ઞાનનિધિ ગુરૂ તેમને ભારે ઉપકાર થનારો જાણી કેટલાક પરિવારની સાથે વસુભૂતિના ઘરે પધાર્યા. (૧૬) ત્યાં આવી તેમણે તેમને પ્રતિબોધવા માટે વિચિત્ર યુક્તિઓથી ધર્મકથા કરવા માંડી, એટલામાં ત્યાં આર્યમહાગિરિ ભિક્ષાના અર્થે આવી ચડયા. [૧૭] તેમને જોઇ

त्थिणा सो तओ पडिनियत्तो । अह विम्हियचित्तेणं—पयंपिय सिट्ठिणा एयं ॥ १८ ॥ किंपिहु तुम्हवि अन्ने–मुणीसरा इह समत्थि गरुययरा । जं अब्भुट्ठिय मेवं–इमस्स तो जंपइ सुहत्थी ॥ १९ ॥ एयस्स महामुणिणो–न हवेमो चरणरेणुतुल्ला वि । जं अइए जिणकप्पे–तप्परिकम्मं कुणइ एसो ॥ २० ॥

तथाहि—

उवसग्गपरीसहसहण–पच्चलो निच्चलो सुहज्झाणे । बहुलमलपंकधारी–उज्झियपाणन्नभोई य ॥ २१ ॥ ससरीरेविहु मुच्छा–विवज्जिओ नियगणेवि अपमत्तो । सुन्नहरसुसाणाइसु–विवित्तठाणोवठाई य ॥ २२ ॥ इच्चेवमाइ जिणकप्प–विसयपरिकम्मकारिणो तस्स । गुणसंयवं करेउं–विबोहिउं सिट्ठिसयषे य ॥ २३ ॥

नीहरिओ तग्गेहा–तो सिट्ठी परियण नियं भणइ। जइ भिक्खाइ

સુહસ્તિસૂરિ ઝટપટ ઉભા થયા, એટલે તેઓ પાછા વળી નીકળ્યા, ત્યારે શેઠના મનમાં વિસ્મય થવાથી, તેણે એવું કહ્યું કે, શું વારૂ તમારાથી પણ બીજા મોટા મુનીશ્વરો છે કે, જેથી તમે તેમને જોઇ, આ રીતે અભ્યુત્થાન કર્યું ? ત્યારે સુહસ્તિ બોલ્યા. (૧૮–૧૯)

એ મહામુનિના ચરણની રજ જેવા પણ અમે નથી. જે માટે એઓ જિનકલ્પ વિચ્છેદ ગયા છતાં તેની નકલ કરતા રહે છે. (૨૦) તે આ રીતે કે ઉપસર્ગ, અને પરીષહ સહેવામાં દ્રઢ રહી શુભધ્યાનમાં નિશ્ચળ રહે છે, બહોળા મળ, અને પંકને ધારણ કરે છે, અને ઉજ્જિત [ફેંકી દેવા યોગ્ય] આહાર પાણી વાપરે છે. [૨૧] વળી પોતાના શરીરમાં પણ મૂર્છા નથી કરતા, પોતાના ગચ્છમાં પણ મમતા રહિત છે, અને સૂના ઘર તથા મસાણ વગેરે એકાંત સ્થાનમાં ઉભા રહે છે. (૨૨) એ વગેરે જિનકલ્પ સંબંધી પરિકર્મ કરનાર, તે મહાપુરૂષના ગુણોની પ્રશંસા કરીને, અને શેઠનાં સગાંવહાલાંને પ્રતિબોધ આપી સુહસ્તિસૂરિ—[૨૩]

તે શેઠના ઘેરથી નીકળ્યા, એટલે શેઠ પોતાના પરિજનને કહેવા લાગ્યો કે, એવી

इहिज्जा–कहमवि एवंविहो साहू ॥ २४ ॥ काउं विविहासणपाणगाइ उ-ज्झितगाणि ता तुब्भे । दुक्करकारिस्स मुणिस्स–तस्स दिज्जह पयत्तेणं ॥ २५ ॥ सुबहुप्फल मिह दिन्नं–हविज्ज एवं परूविए संते । तत्थ महा-गिरिसूरी–कयावि भिक्खट्ठ मणुपत्तो ॥ २६ ॥ वसुभूइदिन्नसिक्खा–णु-रूवओ परियणं च दट्ठुण । दाणट्ठ मुवट्ठिय मुज्झियन्नपाणप्पयारेण ॥ २७ ॥ दव्वाइसु उवउत्तो–महागिरी सायरुव्व बहुसत्तो । तं नाउ अणेसणियं–अगहियभिक्खो नियत्तेइ ॥ २८ ॥

कहइ य सुहत्थिणोणेसणा कया सो भणेइ पहु केण । तुमए मइ इंतंमी–अब्भुट्ठाणं कुणंतेणं ॥ २९ ॥ सुज्झइ न एसणा इह–इय प-त्ता दोवि वइदिसिपुरीए । जियपडिमं वंदित्ता–तत्थ ज्जमहागिरी भयवं ॥ ३० ॥ नयरंमि एलगच्छे–पत्तो तत्थय गयग्गपयसेले । काउं समाहि-णा अणसणं गओ अमरलोगंमि ॥ ३१ ॥

તરેહનો સાધુ જો ભિક્ષાના માટે કોઇ રીતે ઇહાં આવે. [૨૪] તો જૂદી જૂદી જાતના આહાર પાણી ઉજ્ઝિત કરીને તમારે, તે દુષ્કરકારી મુનિને ગમે તેમ કરીને પણ વહોરાવવાં, [૨૫] કેમકે તેને આપેલું બહુ ફળ આપશે, એમ શેઠે જણાવ્યા બાદ ત્યાં એક વેળા મહાગિરિ સૂરિ ભિક્ષાર્થે આવ્યા. [૨૬] ત્યારે વસુભૂતિએ આપેલી શીખવણીના અનુસારે, તેના પરિજનને ઉજ્ઝિત આહારપાણીવડે દાન આપવા તૈયાર રહેલા જોઇ–સા-ગરની માફક મહાસત્વવાન્ મહાગિરિ દ્રવ્યાદિકમાં ઉપયોગ ધરી તેને અનેષણીય જાણીને ભિક્ષા લીધા વગરજ ત્યાંથી પાછા ફર્યા. [૨૭–૨૮]

તેમણે સુહસ્તિને કહ્યું કે, અનેષણા કરી કે ? ત્યારે તે બોલ્યા કે, સ્વામિન્ ! કોણે કરી ? મહાગિરિએ કહ્યું, તમે હું આવતાં ઉઠી ઉભા થઇને કરી. (૨૯) માટે ઇહાં એષણા સૂઝશે નહિ, એમ વિચારીને તે બંને વૈદિશીપુરીમાં આવ્યા, ત્યાં અજિતનાથની પ્રતિમાને વાંદીને ભગવાન્ આર્યમહાગિરિ એલકાક્ષનગરમાં પધાર્યા. ત્યાં ગજાગ્રપદ પર્વત ઉપર તેઓ સમાધિથી અણસણ કરીને દેવલોકે પહોંચ્યા. (૩૦–૩૧) આ રીતે શરૂ-

इति स्फुरच्छारदवारिदप्रभं—
चरित्रमाकर्ण्य महागिरेर्गुरोः ।
विधत्त संसारसमुद्रमंथिनीं—
शुभाक्रियां साधुजना अनारतं ॥ ३२ ॥

॥ इति महागिरिकथा ॥

अमुमेवार्थं स्फुटतरं भावयन्नाह.

[मूलं]

सक्कंमि नो पमायइ—असक्ककज्जे पवित्ति मकुणंतो ।
सक्कारंभो चरणं—विसुद्ध मणुपालए एवं ॥ ११८ ॥

(टीका)

शक्ये सामर्थ्योचिते समितिगुप्तिप्रत्युपेक्षणास्वाध्यायाध्ययनादौ न

ઋતુનાં ઝળકતાં વાદળાં જેવું મહાગિરિ આચાર્યનું ચારિત્ર સાંભળીને હે સાધુ જનો ! તમે નિરંતર સંસારસમુદ્રને મંથન કરનારી શુભ કરણી કર્યા કરો. [૩૨]

આ રીતે મહાગિરિની કથા છે.

એજ વાતને ખુલાસાથી કહે છે.

મૂળનો અર્થ.

શક્યમાં પ્રમાદ ન કરે, અને અશક્ય કાર્યમાં પ્રવૃત્તિ ન કરે, એ રીતે શક્યારંભ થાય એવો પુરૂષ એ રીતે વિશુદ્ધ ચારિત્રને વધારે છે. (૧૧૮)

ટીકાનો અર્થ.

શક્ય એટલે પોતાના સામર્થ્યને યોગ્ય સમિતિ, ગુપ્તિ, પ્રત્યુપેક્ષણા, સ્વાધ્યાય

प्रमाद्यतिनालस्यवान् स्यात्—अशक्ये जिनकल्पमासक्षपणादौ प्रवृत्तिमंगीकारमकुर्वन् शक्यारंभोभवतीति गम्यते.—सच चरणं संयमं विशुद्धमकलंकं अनुरूपं कालसंहननादीनांपालयति वर्द्धयत्येव मुक्तन्यायेन;—सम्यगारंभस्येष्टसिद्धिहेतुत्वादिति.

ननुधर्ममपिकुर्वन् कश्चिदसदारंभः स्याद् ?—उच्यते, स्यादेव—मतिमोहमानातिरेकवशात्. कथमिव कइवेति पराकूतमाशंक्याह.—

॥ मुलं ॥

जो गुरु पवमन्नंतो—आरंभइ किर असक्कमवि किंचि।
सिवभूइ व्व न एसो–सम्मारंभो महामोहो ॥ ११९ ॥

તથા અધ્યયન વગેરેમાં પ્રમાદ નહિ કરે, એટલે આળસ્યવાળો ન થાય, અને અશક્ય એટલે જિનકલ્પ તથા માસખમણ વગેરેમાં પ્રવૃત્તિ ન કરે, એટલે તેને અંગિકાર ન કરે. એ રીતે શક્યારંભ [શક્યને શરૂ કરનાર] થાય, તે વિશુદ્ધ એટલે અકલંક ચારિત્રને કાળ અને સંઘેણુ વગેરેના અનુસારે પાળે છે, એટલે વધારે છે, એવી રીતે એટલે કહેલાં ધોરણે કરીને. કેમકે સમ્યક્ રીતે કરેલો મંડાણ ઇષ્ટ સિદ્ધિનો હેતુ છે.

વારૂ, શું ધર્મ કરતો થકો પણ કોઇ અસદારંભ થાય ? જવાબ—હા. થાયજ. મતિમોહ તથા અહંકારના વધારાને લીધે. શી રીતે અને કોની માફક ? એવી શંકા માટે જવાબ કહે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

જે કોઇ ગુરૂની અવજ્ઞા કરી, જે અશક્યને પણ કરવા માંડે, તે શિવભૂતિની માફક સમ્યક્ આરંભવાળો ન ગણાય. કેમકે તેમ કરવું, એ મહા મોહ છે. (૧૧૯)

(ટીકા)

यः कश्चिन्मंदमतिर्गुरुं धर्माचार्यमवमन्यमानोहीनाचारोयमित्यवज्ञयापश्यन्नारभते प्रकर्तुं प्रतिजानीतेऽशक्यमपि कालसंहननानुरूपं जिनकल्पादिकमपि गुरुभिरक्रियमाणमेव, नतुशेषमनुष्ठानमिति प्रकृतं, शिवभूतिरिवाद्यदिगंबरवत् नैवैष प्रक्रांतपुरुषः सम्यगारंभः सत्प्रवृत्ति-र्महामोहाद्धेतो,-रयमाशयो-नाकृतज्ञताऽज्ञानातिरेकौ विना कश्चिद्गुरोः परमोपकारिणश्छायाभ्रंशायोत्सहते इति गाथाक्षरार्थो-भावार्थः कथानकगम्यः

तच्चेदं.

रहवीरपुरे नयरे-सीहरहो नाम पत्थिवो हुत्था। साहसबलमाणधरो-सिवभूई तस्स पाइक्को ॥ १ ॥ सूरोत्ति समाइट्ठो-सो महुरासामिणो गहणकज्जे। सामंतमंतिसहिओ-दिन्नंमि पयाणए पढमे ॥ २ ॥ संदेहो संजाओ-सामंताईण तत्थ सव्वेसिं। उत्तरदाहिणमहुराणु-काणु

ટીકાનો અર્થ.

જે કોઇ મંદમતિ ગુરૂને એટલે ધર્માચાર્યને હલકો ગણતો થકો, એટલે એ તો હીનાચારિ છે, એમ અવજ્ઞાએ કરી તેના તરફ જોતો થકો કાળ અને સંઘેણને નહિ અનુસરતો, અને તેથીજ ગુરૂએ નહિ કરાતા જિનકલ્પાદિક અશક્ય કામને પણ કરવા માંડે છે, નહિ કે શકયને. તે પહેલા દિગંબર શિવભૂતિની માફક સમ્યક્ આરંભવાળો એટલે સત્પ્રવૃત્તિવાળો ન ગણાય. કારણ કે એમ કરવું, તે મહા મોહ છે. મતલબ એ કે અકૃતજ્ઞતા અને અજ્ઞાનના જોર સિવાય કોઇ પણ માણસ પરમ ઉપકારી ગુરૂની છાયાથી વેગળો નહિ થાય, એ ગાથાનો અક્ષરાર્થ છે. ભાવાર્થ કથાનકથી જણાશે.

શિવભૂતિનું કથાનક આ છે.

રથવીરપુર નગરમાં સિંહરથ નામે રાજા હતો, તેનું સાહસિક બળવાન્ અને માનવાળો શિવભૂતિ નામે એક પદાતિ [પેદલનો સુભટ] હતો [૧] તે શૂરો હોવાથી તેને મથુરાંના રાજાને પકડવા માટે ફરમાવવામાં આવ્યું, એટલે તે સામંત અને મંત્રિઓ

घित्तुं समाएसो ? ॥ ३ ॥ पुणपुच्छियंमिनियमा–रूसइ राय त्ति किंमिह कायव्वं । इय चिंताउलहियया–भणिया सिवभूइणा ते उ ॥ ४ ॥ भो भो किं चिंताए–सयराहं दोवि गिण्हिमो महुरे । बलियत्ते डिंभाणं–नहि दोसो होइ कइयावि ॥ ५ ॥

नवर महं एगागी—तुब्भे सव्वेवि होह एगत्थ । दुग्गेज्झ महं घित्थं—इयरं तुंब्भे य सव्वेवि ॥ ६ ॥ अह संमएण तेसिं—गहिओ सिवभूइणा पयंडेण । गंतूण दाहिणाए–महुराए सामिओ सहसा ॥ ७ ॥ इयरेवि उत्तराए–महुराए सामियं गहेऊण । रहवीरपुरं पत्ता—जुगवं वद्धाविओ राया ॥ ८ ॥ सिवभूइ साहसेणं–तुट्ठो तं पइ निवो पयंपेइ । मग्गसु वरं महाबल—सुहड फुडं नियमणोभिमयं ॥ ९ ॥ सिवभूइणा

સાથે રવાને થયો. બાદ પેહેલું પીયાણું લેતાં સામંતો. વગેરે સર્વને સંદેહ ઉત્પન્ન થયો કે, ઉત્તર અને દક્ષિણ મથુરાંમાંથી કઇ મથુરાં લેવાને માટે ફરમાન છે ? અને ફરી પૂછીએ તો નિયમા રાજા ગુસ્સે થાય, માટે આ બાબત શું કરવું ? એમ ચિંતામાં તેઓ આકુળ થન્યા, એટલે શિવભૂતિએ તેમને કહ્યું કે—અરે ભાઇઓ ! ચિંતા કાં કરો છો ? ગમે તેટલા ઉપાયોવડે આપણે બે મથુરાં લેશું. છોકરાં બળવાન્ થાય તેમાં કયારે પણ દોષ ગણવાનો નથી. [૨–૩–૪–૫]

વધારામાં કહેવાનું એ કે, એક તરફ હું એકલો જાઉં, અને એક તરફ તમે સર્વ જાઓ. તેમાં જે મુસ્કેલીએ પકડાય તેને હું પકડું, અને બીજાને તમે પકડો. (૬) ત્યારે તેઓએ તેને સંમત કરતાં તે પ્રચંડ શિવભૂતિએ જઇને દક્ષિણ મથુરાંના સ્વામિને ઓચિંતો પકડયો, અને બીજાઓએ ઉત્તર મથુરાંના સ્વામિને પકડયો. બાદ તેઓએ સ્થવીરપુરમાં આવીને સમકાળે રાજાને વધામણી દીધી. [૭–૮] ત્યારે શિવભૂતિના સાહસથી રાજા ખુશી થઇ, તેને કહેવા લાગ્યો કે, મહા બળ સુભટ ! તને જે જોઇએ, તે ખુલ્લી રીતે માગ. (૯) શિવભૂતિએ કહ્યું કે, હે દેવ ! જો તમે ખરોખર ખુશી થયા હો, તો મને

પવુત્તં–જઇ તુટ્ઠો સુટ્ઠુ, દેહિતો દેવ । મહ ઇચ્છિયં પયારં–નયરે રત્તિં વ દિવસં વા ॥ ૧૦ ॥

એવં તિ પત્થિવેણં–પડિવન્ને નિબ્ભઓ ભમઇ એસો । ન ગણઇ કાલમકાલં–અક્ખલિઓ નયરરક્ખેહિં ॥ ૧૧ ॥ કઇયાવિ મજ્ઝરત્તે—અહિએ ઊણે વ એઇ કઇયાવિ । ભજ્જા ય જાયમાણી–ચિટ્ઠઇ જા તસ્સ આગમણં ॥ ૧૨ ॥ નિવિન્ના સાસૂએ–સાહઇ સો તુજ્ઝ નંદણો એસો । એઇ ચિરાઓ ગેહં–અહંપિ દુક્ખેણ જગ્ગામિ ॥ ૧૩ ॥ સા ચિંતઇ જઇ રાયા–તુટ્ઠો, ન તહાવિ એરિસં જુત્તં । ઉસ્સિંખલત્ત મેયસ્સ–સિક્ખવિસ્સામિ તો એયં ॥ ૧૪ ॥ તો ભણઇ સુવસુ સુણ્હે–તુમ, મહયંચેવ અજ્જ જગ્ગેમિ । ઇય ભણિય પિહિયદારા–પજગ્ગિયા સાસુયા તત્તો ॥ ૧૫ ॥

સો મજ્ઝરત્તિસમએ–ઉગ્ઘાડાવેઇ જાવ ઘરદારં । ભો ભણિયં જણણીએ–રુટ્ઠાએ એરિસં વયણં ॥ ૧૬ ॥ એત્તિયમિત્તનિસાએ ઉગ્ઘાડં જત્થ

આ નગરમાં રાતે કે દિવસે ગમે ત્યાં હરવા ફરવાની છુટ બક્ષો. (૧૦)

રાજાએ તે કબુલ રાખ્યું, એટલે હવે શિવભૂતિ નિર્ભય થઇ ભમવા લાગ્યો. તે કાળ કે અકાળનો દરકાર રાખ્યા વગર ફરતો, અને ચોકીદારોથી અટકાવી શકાતો નહિ. [૧૧] તે પોતાના ઘેર કયારેક મધરાતે આવે, કયારેક તેથી મોડો વહેલો આવે, ત્યાં લગણ તેની સ્ત્રી તેના આવવાની વાટ જોતી જાગતી બેસી રહેતી. (૧૨) તે નારાજ થઇને સાસુને કહેવા લાગી કે, આ તમારો દીકરો મોડેથી ઘેર આવે છે, અને હું જાગી જાગીને થાકું છું. [૧૩] હવે તે સાસુ વિચારવા લાગી કે, રાજા ભલે ખુશી થયો છે, પણ તેમ છતાં એ આ રીતે ઉચ્છૃંખળ થાય, એ ઠીક નહિ, માટે એને મારે શીખવવું જોઇએ. (૧૪) એથી તે કહેવા લાગી કે, વહુ ! તું સૂઇ જા. હું જ આજ જાગતી રહીશ, એમ કહીને દરવાજા બંધ કરી, તે સાસુ જાગવા લાગી, અને વહુ સૂઇ ગઇ. [૧૫]

હવે તે મધરાતની વખતે આવીને બારણું ઉઘડાવવા લાગ્યો, ત્યારે તેની માએ ગુસ્સે થઇને એવું કહ્યું કે, આટલી રાતે જ્યાં ઉઘાડું બારણું તારા જોવામાં આવે, ત્યાંજ

पिच्छसे दारं । तत्थेव गच्छ पुत्तय–न इह गिहे जगिए कोवि ॥ १७ ॥ जणणीवयणं सोउं–गहिओ माणेण माणसे एसो । साहूवस्सय दारं–निच्चुग्घाडं नियइ कहवि ॥ १८ ॥ तत्थ नियच्छइ सूरिं–भयसंगविवज्जियं जियकसायं । नामेण अज्जकण्हं–सज्झायंतं महुरघोसं ॥ १९ ॥ धन्नो एस कयत्थो–रहिओ माणावमाण दुक्खेहिं । इय चिंतंतो वंदइ–सूरिं भूलुलियभालयलो ॥ २० ॥

भणइ य भयवं भीओ–भवभमणाओ तुहा गओ सरणं । नियदिक्खादाणेणं–करेहि ता पहु पसायं मे ॥ २१ ॥ भणइ गुरू कोसि तुमं–किंवा पव्वयसि सोवि पडिभणइ । नयरेस्सरस्स भिच्चो–सिवभूई भवविरत्तो हं ॥ २२ ॥ कह रायाण मपुच्छिय–पव्वावेमि त्ति जंपिए गुरुणा । सो भणइ तुम्ह पुरओ–दिक्खं तो हं सयं गिण्हे ॥ २३ ॥ इय भणिय जाव लोयं–एसो सयमेव काउ मारद्धो । ता दिक्खिओ

દીકરા ચાલ્યો જા. અહીં કોઇ જાગતું નથી. (૧૬–૧૭) આ રીતે માતાનું વચન સાંભળીને તે મનમાં માનથી ઘેરાયો, અને તેને સાધુના અપાશરાનું બારણું નિત્ય ઉઘાડું રહેતું યાદ આવ્યું, એટલે ત્યાં ગયો. [૧૮] ત્યાં તેણે ભય અને સંગથી રહિત જિનકષાય આર્યકૃષ્ણસૂરિને મધુર સ્વરે સ્વાધ્યાય કરતા જોયા. [૧૯] તેણે ચિંતવ્યું કે, આ મહાત્માને ધન્ય છે, અને એજ કૃતાર્થ છે. કેમકે એમને માન, અપમાનનું કશું દુઃખ લાગતું નથી, એમ ચિંતવીને તે જમીનપર માથું અડાવી, તે આચાર્યને વાંદવા લાગ્યો (૨૦)

બાદ તે બોલ્યો કે, હે ભગવન્ ! હું સંસારમાં ભ્રમણ કરવાથી બીને તમારા શરણે આવ્યો છું, માટે હે પ્રભુ ! તમારી દિક્ષા આપીને મારાપર મેહેરબાની કરો. (૨૧) ગુરૂ બોલ્યા કે, તું કોણ છે, અને કેમ પ્રવ્રજ્યા લે છે ? તે બોલ્યો કે, હું આ નગરના રાજાનો શિવભૂતિ નામે ચાકર છું, અને સંસારથી વૈરાગ્ય પામ્યો છું. [૨૨] ગુરૂએ કહ્યું કે, ત્યારે રાજાની રજા સિવાય તને કેમ દિક્ષા આપું ? ત્યારે તે બોલ્યો કે, તમારી આગળ ઉભો રહી હું પોતેજ દિક્ષા લઇ લઇશ, એમ કહીને તે પોતેજ લોચ કરવા

गुरूहिं-अणवत्थादोसभीएहिं ॥ २४ ॥ बलिमड्डाए राया-उप्पव्वाविस्सइ त्ति संकाए । सव्वेवि समुच्चलिया-पत्ता देसंतरं अन्नं ॥ २५ ॥

कालेण पुणो रन्ना-भत्तिब्भरनिब्भरेण आहूओ । सिवभूई तंमि पुरे-कण्हायरिएहिं सह पत्तो ॥ २६ ॥ दंसणहेउं तो सो—आहूओ नियगमंदिरं रन्ना । संमाणिओ य सुंदर-कंबलरयणप्पयाणेण ॥ २७ ॥ आलोइयंमि गुरूणा-भणिओ, किं पुण इमं महामुल्लं । गहियं ति सो पयंपइ-दक्खिन्नाओ नरिंदस्स ॥ २८ ॥ दिन्नं गुरूहिं तं से-मुच्छाए न परिभुंजए एसो । तं नाउ मिमस्स तओ—मुच्छावुच्छेयणनिमित्तं ॥ २९ ॥ बहिभूमिगयस्स कयावि-तस्स गुरूणा कया निसिज्जाओ । अप्पत्तिएण गहिओ-सिवभूई तो मणे मणयं ॥ ३० ॥

अह अन्नयाकयाई-उवहिवियारो गुरूहिं पारद्धो । जिणकप्प-थेरकप्पे-पडुच्च एवं सुयप्पसिद्धो ॥ ३१ ॥ जिणा बारस रूवाइ-थेरा

માંડ્યો, તેટલે ગુરૂએ અનવસ્થા દોષની બીકે તેને દીક્ષિત કર્યો. (૨૩–૨૪] બાદ બળવાનપણાના કારણે રાજા એની પ્રવ્રજ્યા છોડાવશે, એમ શંકા લાવીને તે સર્વે ત્યાંથી રવાને થઇ દેશાંતરે આવી પહોંચ્યા. (૨૫)

બાદ કેટલાક કાળે રાજાએ તેને ભક્તિપૂર્વક તેડાવ્યો, ત્યારે કૃષ્ણાચાર્યની સાથે શિવભૂતિ તે નગરમાં આવ્યો. [૨૬] ત્યારે રાજાએ તેનાં દર્શન કરવા માટે તેને પોતાના મહેલમાં બોલાવ્યો, અને તેને સુંદર કંબલરત્ન આપીને સન્માનિત કર્યો. [૨૭] તે તેણે ગુરૂને બતાવતાં, તેમણે કહ્યું કે, આ મહા મૂલ્ય વસ્ત્ર કેમ લીધું ? તે બોલ્યો કે, રાજાની દાક્ષિણ્યતાથી લીધું છે. (૨૮) ત્યારે ગુરૂએ તે તેનેજ આપ્યું, પણ તે તેનાપર મૂર્છા રાખી, તેને વાપર્યા વગર સાચવી રાખવા લાગ્યો. તે જાણીને તેની મૂર્છા તોડવા બાતર તે એક વેળા બહિર્ભૂમિએ ગયો હતો, ત્યારે ગુરૂએ તેના પાથરણા કરી નાખ્યા, તેથી શિવભૂતિના મનમાં જરાક અપ્રત્યય (દ્વેષ ભાવ) ઉત્પન્ન થયો. [૨૯–૩૦]

હવે એક વેળા ગુરૂએ નીચેની રીતે જિનકલ્પિ અને સ્થવિરકલ્પિના માટે શાસ્ત્રમાં પ્રસિદ્ધ રહેલો ઉપધિનો વિચાર ચલાવવા માંડ્યો. (૩૧) જિનકલ્પિને બાર ઉપકરણ હોય,

चउदसरूविणो । अज्जाणं पन्नवीसंतु-अओ उद्दं उवग्गहो ॥ ३२ ॥ दुगतिगचउक्कपणगं-नवदसएक्कारसे व बारसगं । एए अट्ठविगप्पा-उवहिंमिउ हुंति जिणकप्पे ॥ ३३ ॥ मुत्तीरयहरणेहिं-दुविहो तिविहो य इक्ककप्पजुओ । चउहा कप्पदुगेणं-कप्पतिगेणं तु पंचविहो ॥ ३४ ॥ दुविहो तिविहो चउहा-पंचविहो विहु सपायनिज्जोओ । जायइ नवहा दसहा-इक्कारसहा व बारसहा ॥ ३५ ॥

केवल उस्सग्गमउ त्ति—दुक्करो एस मंदसत्ताणं । सुकरो य उत्तमो तह-उत्तम सत्ताण सत्ताण॥ ३६ ॥तं सोउं सिवभूई-जंपइ जइ सए उत्तमो कप्पो । काउं जुज्झइ परलोय-साहणे बद्धकच्छाणं ॥ ३७ ॥ ता एस किं न कीरइ-साहूहिं मुक्खसुक्खकंखीहिं । मोत्तूण वत्थपत्ताइ संगहं जिणवराविहियं ? ॥ ३८ ॥ जं किर गुरुस्स लिंगं—तं चिय सीसस्स जुज्जए काउं । लोएवि लिंगिणो जं-नियनियदेवाणुरूवंति ॥३९॥

સ્થવિરકલ્પિને ચૌદ હોય, અને આર્યાઓને પચીશ હોય. તેથી વધારેનાં તે ઔપગ્રહિક ઉપકરણ જાણવાં. [૩૨] જિનકલ્પમાં બે, ત્રણ, ચાર, પાંચ, નવ, દશ, અગ્યાર અને બાર ઉપકરણ એમ ઉપકરણ બાબતના આઠ વિકલ્પ છે. [૩૩] બે ઉપકરણ તે મોંપતી ને રજોહરણ. તેમાં કલ્પ (ઓઢવાનું વસ્ત્ર) ઉમેરતાં ચાર થાય, ત્રણ કલ્પ ઉમેરતાં પાંચ થાય. એ દરેકના સાથે સાત પાત્રના ઉપકરણ જોડતાં અનુક્રમે નવ, દશ, અગ્યાર અને બાર ઉપકરણ થાય. [૩૪–૩૫]

પણ એ જિન કલ્પ કેવળ ઉત્સર્ગમય હોવાથી મંદ સત્ત્વવાળાં જીવોને દુષ્કર છે; બાકી ઉત્તમ સત્ત્વવાન્ જીવોને તે સુકર છે, અને તેજ ઉત્તમ છે. (૩૬) તે સાંભળીને શિવભૂતિ બોલ્યો કે, જો એ કલ્પ ઉત્તમ છે, તો પરલોક સાધવા બદ્ધકક્ષ (કમર બાંધી તૈયાર થએલા) પુરૂષોએ કરવોજ જોઇએ. [૩૭] માટે મોક્ષના સુખના અર્થી સાધુઓ જિનેશ્વરે નહિ કરેલ વસ્ત્રપાત્રાદિ સંગ્રહને છોડીને એ જિન કલ્પ કાં કરતા નથી? (૩૮) વળી જે ગુરૂનું લિંગ હોય, તેજ તેના શિષ્યને પણ રાખવું જોઇએ. કેમકે લોકમાં પણ દરેક લિંગિ પોતપોતાના દેવને મળતું લિંગ રાખે છે. [૩૯]

गुरुणा पडिभणियं:—

तित्थंकराणुचिन्नं-किरियं अम्हारिसा कहकुणंति ? । किं करिवरपल्लाणं-तरंति नणु रासभा वोढुं ? ॥ ४० ॥ पढमेच्चिय संघयणे-सा कीरइ गरुयसत्तसारेहिं । केवल मुववूहच्चिय-कायव्वो तस्स अम्हेहिं ॥ ४१ ॥ तित्थंकराणुकारं-काउं नहु तरइ पागओ पुरिसो । गत्ताकोलो हरिकुंजरस्स किं लहइ तुल्लत्तं ? ॥ ४२ ॥ आणावत्तित्तंचिय-पहुणो आराहणं इह पहाणं । नय को य रि उ सेवइ-रायाणं रायचिन्हेहिं ॥ ४३ ॥ पंचविहो उवइट्ठो-कप्पो वीरेण तं च जहजुग्गं । जहसत्तीइ कुणंतो-आणं आराहए तस्स ॥ ४४ ॥

पढमो य थविरकप्पो-परिहारविसुद्धिकप्पजिणकप्पा । पडिमाकप्पो भणिओ-तहा अहालंदकप्पो य ॥ ४५ ॥ तत्थय इच्छा[1] मिच्छा[2]-तहकारो[3] वस्सिया य[4] निस्सीही[5] । आपुच्छण[6] पडिपुच्छा[7]-छंदण य[8]

ગુરૂ જવાબ આપવા લાગ્યા કે:—

તીર્થંકરે આચરેલી ક્રિયા આપણા જેવા કેમ કરી શકે ? શું હાથીના પલાણને ગધેડાં ઉપાડી શકે ? (૪૦) તે ક્રિયા તો પહેલાં સંઘેણવાળા ભારે સત્ત્વવાન્ જીવોજ કરી શકે; બાકી આપણે તો તેની પ્રશંસા માત્ર કરી શકીએ. (૪૧) પ્રાકૃત પુરૂષ [સાધારણ માણસ] કંઈ તીર્થંકરની નકલ કરી શકે ? શું ખાડમાં ફરનાર કોળું સિંહની તુલ્યતા પામી શકે ? (૪૨) આજ્ઞામાં વર્ત્તવું એજ પ્રભુની મુખ્ય આરાધના છે. કેમકે કોઇ પણ રાજચિન્હ ધારણ કરીને રાજાની સેવા કરતો નથી. (૪૩) વીરપ્રભુએ પાંચ પ્રકારના કલ્પ કહ્યા છે. તેમાંથી જે યોગ્ય હોય, તેને યથાશક્તિએ કરતાં થકાં તેની આજ્ઞા આરાધી શકાય છે. [૪૪]

પહેલો સ્થવિર કલ્પ, બીજો પરિહાર વિશુદ્ધિ કલ્પ, ત્રીજો જિન કલ્પ, ચોથો પ્રતિમા કલ્પ અને પાંચમો યથાલંદ કલ્પ. [૪૫] ત્યાં ઇચ્છાકાર, મિથ્યાકાર, તથાકાર, આવસ્સિયા, નિસ્સીહી, આપૃચ્છના, પ્રતિપ્રચ્છા, છંદના, નિમંત્રણા અને ઉપસંપદા એ દશવિધ સામાચારી

निमंतणा९ चेव ॥ ४६ ॥ उवसंपय त्ति दहविह–सामायारीइ पालणं निच्चं । मासकप्पविहारो–सयावि वासो गुरुकुलंमि ॥ ४७ ॥ एमाइसुद्ध-किरिया–करणं खलु होइ थेरकप्पो त्ति । परिहारसुद्धिकप्पो–इय भणिओ जिणवरिंदेहिं ॥ ४८ ॥ गिम्हसिसिरवासासु–चउत्थयाई उ बारसंतो य । परिहारियाण उ तवो–जहन्नमज्झुक्कसो कमसो ॥ ४९ ॥

पारणगे आयामं पंचसु गह दोसु भिग्गहो भिक्खे । अणुपरिहारियकप्प–ट्ठियाण निच्चंपि आयामं ॥ ५० ॥ एवं छम्मासतवं–चरिउं परिहारिया अणुचरंति । अणुचरगे परिहारिय–पयट्ठिए जाव छम्मासा ॥ ५१ ॥ कप्पट्ठिओवि एवं–छम्मासतवं करेइ सेसा उ । अणुपरिहारियभावं–वयंति कप्पट्ठिगत्तं व॥ ५२ ॥ इय अट्ठारसमासो–परिहारतवोय तं तु पडिवज्जे । जंमेण तीसवरिसो–परियाएणं च गुणवीसो ॥ ५३ ॥ क-

---

નિત્ય પાળવી, માસકલ્પ વિહાર કરવો, હમેશાં ગુરૂ કુળમાં રહેવું, એ વગેરે શુદ્ધ ક્રિયા કરવી, તે સ્થવિર કલ્પ જાણવો. હવે પરિહાર વિશુદ્ધિ કલ્પ જિનેશ્વરે આ રીતે કહેલો છે:— [૪૬–૪૭–૪૮] ગ્રીષ્મ, શિશિર, અને વર્ષાકાળમાં જઘન્ય, મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટપણે ચોથથી માંડીને બારસ સુધીનું પરિહાર કલ્પવાળાનું તપ છે. [૪૯]

પરિહાર કલ્પવાળા એ ત્રણે કાળને વિષે પારણામાં આંબિલ કરે છે, અને સંસૃષ્ટાદિક સાત ભિક્ષા થાય છે, તેમાંની છેલ્લી પાંચનું ગ્રહણ કરે છે, અને આગલી બેનો ત્યાગ કરે છે. એ ચાર પરિહારિકનું તપ જાણવું, અને બીજા જે કલ્પ સ્થિતાદિક પાંચ છે, તેમાં વાચનાચાર્ય તથા ચાર અનુચારિઓ છે, એ સર્વે નિત્ય આંબિલ કરે છે. [૫૦] એ રીતે ૬ માસ લગી તપ કરીને પછી તેઓ ૬ માસ લગી અનુપરિહારિક પદમાં રહી તપ કરે, અને અનુપરિહારિક હોય, તે પરિહારિક પદમાં ૬ માસ લગી આવે. [૫૧] એ રીતે પાછો ૬ માસ લગી કલ્પસ્થિત રહીને તપ કરે. બાકીના અનુપરિહારિકપણાને અથવા કલ્પસ્થિતપણાને ધારણ કરે છે. (૫૨) એ રીતે બાર માસ વીત્યા પછી કલ્પસ્થિતને વાચનાચાર્ય તે પણ પૂર્વોક્ત ન્યાયે કરી ૬ માસ લગી પરિહારિક તપ કરે, અને બાકીના આઠ અનુપરિહારિક તે વૈયાવૃત્યપણું કરે, તથા વાચનાચાર્યપણાને કલ્પસ્થિતપણે

પ્પસમત્તીઇ તયં–જિણકપ્પં વા ઉવિંતિ ગચ્છં વા। પડિવજ્જમાણગા પુણ-જિણસ્સ ગાસે પવજ્જંતિ ॥ ૫૪ ॥

જિણપાસપવન્નસ્સ વ–પાસે તં પુરિમપચ્છિમાણં વા। હોઇ જિણાણં તિત્થે–પરિહારવિસુદ્ધિ ચરણં તુ ॥ ૫૫ ॥ જિણકપ્પિયા ઉ દુવિહા—પાણીપાયા પડિગ્ગહધરાય। પાઉરણ મપાઉરણા–ઇક્કિક્કા તે ભવે દુવિહા ॥ ૫૬ ॥ તવેણ[૧] સુત્તેણ[૨] સત્તેણ[૩]–એગત્તેણ[૪] બલેણ ય[૫]। તુલણા પંચહા વુત્તા–જિણકપ્પં પડિવજ્જઓ ॥ ૫૭ ॥ છમ્માસિએણ તવસા[૧]–સુત્તેણુ ક્કોસઓ ઉ કિંચૂણે। દસપુવ્વે ઉ જહન્ને–અટ્ઠપુવ્વે નવમવત્થુતિયં[૨] ॥ ૫૮ ॥ સીહાઇભયવિમુક્કો[૩]–અણવિક્ખંતો ય લિઇયસાહિજ્જં[૪]। આઇમસંઘયણતિએ–પવટ્ટમાણો[૫] ભવે જુગ્ગો ॥ ૫૯ ॥

રહીને ગ્રહણ કરે છે, એટલે સાત વૈયાવૃત્યકર થાય, અને એક વાચનાચાર્ય થાય છે. અઢાર માસનો પરિહાર વિશુદ્ધિક તપ છે. તેને જન્મથી ત્રીશ વર્ષનો હોય, તે તથા પર્યાયથી ઓગણીશ વર્ષનો હોય તે સ્વીકારે છે, અને કલ્પ સમાપ્ત થતાં તે જિનકલ્પિ થાય છે, અથવા ગચ્છમાં પાછો આવે છે. અને એના કરનારા ખુદ જિનેશ્વરની પાસે તેને અંગીકાર કરે છે. (૫૩–૫૪–૫૫]

અથવા તો જિનના પાસે જેણે લીધું હોય, તેના પાસેથી અંગીકાર કરાવાય છે. તે પરિહાર વિશુદ્ધિ ચારિત્ર પહેલા અને છેલ્લા તીર્થંકરના વારે હોય છે. (૫૫) જિનકલ્પિ બે પ્રકારના છેઃ— પ્રાણિપાત્ર અને પાત્રધારી. તે દરેકના પાછા બે ભેદ છે, પ્રાવરણી અને અપ્રાવરણી. [૫૬] જિન કલ્પ અંગીકાર કરતાં પાંચ પ્રકારની તુલના કરાય છે, તે એ કે, તપે કરી, સૂત્રે કરી, સત્ત્વે કરી, એકત્ત્વે કરી, અને બળે કરી. (૫૭) ત્યાં તપથી તે છમ્માસી તપ કરે, સૂત્રે કરી ઉત્કૃષ્ટપણે કાંઇક ઉણા દશ પૂર્વ, અને જઘન્યથી આઠ પૂર્વ અને નવમાની ત્રણ વસ્તુ જાણે. (૫૮) સત્ત્વે કરી તે સિંહાદિકના ભય થકી રહિત રહે, એકત્વે કરી તે બીજાની સાહાયની અપેક્ષા નહિ રાખે, અને બળે કરી પહેલા ત્રણ સંઘેણમાં વર્ત્તતો હોય, તે જિન કલ્પને યોગ્ય થાય છે. (૫૯)

जिणकप्पिया य साहू-उक्कोसेणं तु एग वसहीए । सत्तय हवंति कहमवि-अहिया कइयावि नो होंति ॥ ६० ॥ मासाई सत्तंता[७] पढमा[८] बिय[९] तइय[१०] सत्त राइदिणा । अहराय[११] एगराई[१२]-भिक्खूपडिमाण बारसगं ॥ ६१ ॥ पडिवज्जइ एयाओ—संघयणधिईजुओ महासत्तो । पडिमा उ भाविअप्पा-सम्मं गुरुणा अणुन्नाओ ॥ ६२ ॥ गच्छि च्चिय निम्माओ-जा पुव्वा दस भवे असंपुन्ना । नवमस्स तइय तइयवत्थू—होइ जहन्नो सुयाभिगमो ॥ ६२ ॥ वोसट्ठचत्तदेहो-उवसग्गसहो जहेव जिणकप्पी । एसण अभिग्गहीया-भत्तं च अलेवडं तस्स ॥ ६४ ॥

गच्छा विणिक्खमित्ता-पडिवज्जइ मासियं महापडिमं । दत्ते ग भोयणस्सा-पाणस्स व तत्थ एग भवे ॥ ६५ ॥ जत्थत्थमेइ सूरो—न तओ ठाणा पयंपि संचलइ । ता एगराइवासी-एगं च दुगं च अन्नाए ॥ ६६ ॥ दुट्ठाण हत्थिमाईण-नो भएणं पयंपि ओसिरइ ।

જિનકલ્પિ સાધુ એક વસતિમાં ઉત્કૃષ્ટા સાત રહે, પણ તેથી અધિક કયારે પણ નહિ રહે. [૬૦] સાધુની બાર પ્રતિમા આ પ્રમાણે છેઃ—પહેલી સાત માસાદિ છે. આઠમી, નવમી, અને દશમી સાત અહોરાત્રની છે. અગીઆરમી એક અહોરાત્રની અને બારમી એક રાતની છે, એમને સંઘેણ અને ધૈર્યવાળો ભાવિતાત્મા મહા સત્વ હોય, તે રૂડી રીતે ગુરૂની અનુજ્ઞા લઇને સ્વીકારે છે. [૬૧-૬૨] તે જ્યાં લગી દશ પૂર્વ પૂરા નહિ થયા હોય, ત્યાં સુધી ગચ્છમાં નિર્માયી થઇને રહે, તેને જઘન્યથી નવમા પૂર્વની ત્રીજી વસ્તુ જેટલું શ્રુત જ્ઞાન હોય. (૬૩) તે શરીરને વોસરાવીને જિનકલ્પિની માફક ઉપસર્ગ સહે છે, તેની એષણા અભિગ્રહવાળી હોય છે, અને તેનું અલેપ ભક્ત હોય છે. (૬૪)

ગચ્છથી નીકળીને માસિકી મહા પ્રતિમાને ધારણ કરે, ત્યાં ભોજનની એક દાતી તથા પાનકની પણ એકજ દાતી હોય. [૬૫] ને જ્યાં સૂર્ય આથમે તે સ્થાનથી એક પગ પણ ભરે નહિ. જે સ્થળે તે પ્રતિમા પ્રતિપન્ન છે, એવી ખબર પડી જાય, ત્યાં એક રાત રહે, અને જાણ ન પડેલી હોય, ત્યાં એક દિવસ ને બે રાત રહે. [૬૬] દુષ્ટ

एमाइ नियमसेवी–विहरेइ अखंडिओ मासो ॥ ६७ ॥ पच्छा गच्छ मुवेई–एव दुमासी तिमासी जा सत्त । नवरं दत्ती वड्ढइ–जा सत्तउ सत्तमासीए ॥ ६८ ॥ तत्तो य अट्ठमीया–अहवा इह पढम सत्तराइंदी । तीइ चउत्थ चउत्थेण–पाणएणं अह विसेसो ॥ ६९ ॥

उत्ताणग पासल्ली—नेसज्जीवा वि ठाण ठाइत्ता । घोरुवसग्गे सहए–दिव्वाईए अकंपमणो ॥ ७० ॥ दोच्चा वि एरिस च्चिय–लहिया गामाइयाण नवरं तु । उक्कड लगंडसाई–दंडाययउद्धठाई वा ॥ ७१ ॥ तच्चेव एरिस च्चिय–नवरं ठाणं तु तस्स गोदोही । वीरासण महवावी-ठाइज्जा अंबखुज्जो वा ॥ ७२ ॥ एमेव अहोराई–छट्ठं भत्तं अपाणगं नवरं । गामनगराण बहिया–वग्घारिय पाणिए ठाणं ॥ ७३ ॥ एमेव

હાથી વગેરેના ભયમાં એક ડગલું પણ પાછો ન હઠે ઇત્યાદિક નિયમને સેવતો થકો આખો માસ વિચરે. એમ દ્વિમાસી, ત્રિમાસી, એમ સાત માસી લગીની સાત જાણવી, તે સાથે દાતી પણ દરેકમાં વધતી જાણવી. યાવત્ સાતમીમાં સાત દાતી હોય, તે બાદ આઠમી અથવા બહાંના હિસાબે પહેલી પ્રતિમા સાત રાતની હોય, તેમાં ચોથનું તપ ચોવીહાર એકાંતરી હોય, તથા પૂર્વે કહેલી પ્રતિમાઓથી એ વિશેષ છે કે, પારણે આંબિલ કરે. (૬૭–૬૮–૬૯)

તે ઉંચી પાંસળીઓવડે પડીને અથવા નિષદ્યાના સ્થાને રહીને દિવ્યાદિક ઘોર ઉપસર્ગોને અડગ મનથી સહે છે. (૭૦) બીજી પ્રતિમા પણ એવીજ પણ તે ગામની બાહેર ઉત્કુટુક આસને રહે, અથવા વાંકાં લાકડાં માફક સૂતો રહે, અથવા દંડ માફક લાંબો થઈ પડી રહે, અથવા ઉભો રહે. (૭૧) ત્રીજીપણ એવીજ છે, પણ જ્યાં સ્થાન તે ગોદોહિકાસન, વીરાસન અથવા આમ્રકુબ્જાસન હોય, એજ રીતે અહોરાત્રિકી પ્રતિમા પણ જાણવી. તેમાં પાનક વગરનું છઠ ભક્ત હોય, અને તે ગામનગરની બાહેર વાઘ વગેરે પ્રાણિઓની પડોશમાં રહેવાનું હોય છે, એજ એક રાત્રિ પ્રતિમા પણ સમજવી, તેમાં અઠમ

एगराई–अट्ठमभत्तेण ठाणदाहिरओ । ईसीपब्भारगए—अणमिसनयणेग-दिट्ठीए ॥ ७४ ॥

लंदि त्ति होइ कालो–सो पुण उक्कोस मज्झिमजहन्नो । उदइल्ल-करो जा इह–मुक्कइ सो होइ हु जहन्नो ॥ ७५ ॥ उक्कोस पुव्वकोडी–मज्झ पुण हुंत णेगठाणाइं । उक्कोस महालंदं–पण रत्तं इत्थ निद्दिट्ठं ॥ ७६ ॥ जन्हा उ पंचरत्तं–चरंति तम्हा उ हुंत हालंदि । पंचेव होइ गच्छे तेसिं उक्कोसपरिमाणं ॥ ७७ ॥ जा चेवय जिणकप्पे–मेरा साचेव लंदियाणंपि । नाणत्तं मुण सुत्ते–भिक्खाए मासकप्पे य ॥ ७८ ॥ अहलंदियाण गच्छे–अप्पडिबद्धाण जह जिणाणं तु । नवरं काल वि-सेसो–उडुवासे पणग चउमासे ॥ ७९ ॥

गच्छे पडिबद्धाणं–अहलंदीणं पुणो विसेसो यं । जो तेसि उग्गहो

ભક્તતપ હોય છે, અને બાહેર ઇષત્પ્રાગ્ભાર પૃથ્વીમાં આંખે મલકારા માર્યા શિવાય એક નજરથી જોતો રહી ઉભો રહે. (૭૨–૭૩–૭૪)

લંદ એટલે કાળ. તે ઉત્કૃષ્ટ, મધ્યમ અને જઘન્ય એમ ત્રણ ભેદે છે, ત્યાં જઘન્ય કાળ તે ભીંજેલો હાથ સૂકાય, તેટલી વેળા જાણવી. (૭૫) ઉત્કૃષ્ટ કાળ તે ક્રોડ પૂર્વ જાણવા. મધ્યમનાં અનેક સ્થાન થાય છે, હવે ઇહાં ઉત્કૃષ્ટું યથાલંદપણું પાંચ રાતનું કહેલું છે. [૭૬] જે માટે પાંચ રાત લગી આ કલ્પ પાળે છે, તે માટે તે યથાલંદ કહેવાય છે, તેઓ ગચ્છમાં ઉત્કૃષ્ટા પાંચજ હોય. (૭૭) જે મર્યાદા જિનકલ્પમાં છે, તેજ મર્યાદા યથાલંદ કલ્પવાળાની જાણવી, પ્રકત સૂત્રમાં, ભિક્ષામાં અને માસકલ્પમાં તફાવત હોય છે. [૭૮] ગચ્છમાં અપ્રતિબદ્ધ યથાલંદોની મર્યાદા પણ જિનકલ્પીની માફકજ છે. ફક્ત કાળમાં વિશેષ છે, તે એ કે ઋતુવાસ પંચ હોય છે, અને ચોમાસું હોય છે. (૭૯)

ગચ્છ પ્રતિબદ્ધ યથાલંદિઓનો આ વિશેષ છે કે, જે તેમનો અવગ્રહ હોય છે,

किर–सो आयरियाण आभवइ ॥ ८० ॥ एगवसहीइ पणगं–छव्वीहीओ कुणंति गामंमि । दिवसे दिवसे अन्नं–अडंति वीहिं तु नियमेण ॥ ८१ ॥ पडिबद्धा इयरे विय–इक्किक्का ते जिणाय थेरा य । अत्थस्सुयदेसंमी—असमत्ते तेसि पडिबंधा ॥ ८२ ॥ लग्गाइसु दूरेते—तो पडिवज्जित्तु खित्तबाहिठिया । गिण्हंति जं न गहियं–तत्थय गंतूण आयरिओ ॥ ८३ ॥ तेसिं पयं पयच्छइ–खित्तं इंताण तेसिमो दोसो । वंदंत मवंदंते–लोगंमि य होइ परिवाओ ॥ ८४ ॥

न तरिज्ज जइय गंतुं–आयरिओ ता हिएय सो चेव । अंतरपल्लिं पडिवसभ–गामबहि अन्नवसहिं वा ॥ ८५ ॥ तीए य अपरिभोगे—ते वंदंते न वंदए सोउ । तं घित्तु मपडिबद्धा–तओ जहिच्छाइ विहरंति ॥ ८६ ॥ जिणकप्पिया व तहियं–किंपि चिगिच्छं नमेव कारिंति ।

તે આચાર્યોનો પણ ગણાય છે. [૮૦] તેઓ એક વસતિમાં પાંચ રહ્યા હોય, તો ગામમાં છ પાડા કરે, અને નિયમા દરરોજ જુદા જુદા પાડામાં ભિક્ષાર્થે જાય. (૮૧) પ્રતિબદ્ધ અને અપ્રતિબદ્ધ એ દરેકના પાછા બે ભેદ છેઃ—જિનકલ્પી અને સ્થવિરકલ્પી. ત્યાં અર્થશ્રુત દેશે કરીને અસમાપ્ત હોય, ત્યાં સુધી ગચ્છ પ્રતિબદ્ધપણે રહે, તે પ્રતિબદ્ધ જાણવા. [૮૨] ત્યાં લગ્નાદિક ફરીને લાંબા આવતા હોય તો, તેઓ યથાલંદ કલ્પને તરતજ ગ્રહણ કરી ક્ષેત્રની બાહેર રહી જે નહિ લીધેલું શ્રુત હોય, તે ગ્રહણ કરે, તે એ રીતે કે, ત્યાં આચાર્ય જઇને તેમને પદ આપી આવે. બાકી તેઓ ક્ષેત્રમાં આવે તો આ દોષ લાગે છે કે, તેઓ ન વાંદે, અને આચાર્ય તેમને વાંદે એટલે લોકમાં નિંદા થાય. [૮૩–૮૪]

જો આચાર્ય આવી શકે તેમ ન હોય તો, તે યથાલંદજ વચ્ચેની પલ્લિમાં, પડોશમાં, કે ગામની બહાર બીજી વસતિમાં આવે. [૮૫] તે વસતિના અપરિભોગમાં, તેઓ વાંદે પણ આચાર્ય ન વાંદે. એ રીતે શ્રુત ગ્રહણ કરીને પછી તેઓ અપ્રતિબદ્ધ થઇ ઇચ્છા પ્રમાણે વિચરે. [૮૬] તેઓ જિનકલ્પી હોય તો, કાંઇ પણ ચિકિત્સા કરાવે નહિ. શરી-

निप्पडिकम्मसरीरा–अच्छिमलंपिहु न अवणिंति ॥ ८७ ॥ थेराणं णाणत्तं–अतरंतं अप्पिणंति गच्छस्स । ते तस्स फासुएणं–करिंति सव्वंपि परिकम्मं ॥ ८८ ॥ इक्किक्क पडिग्गहगा–सप्पाउरणा हवंति थेराउ । जे पुण सिं जिणकप्पे–भयए सिं वत्थपायाइ ॥ ८९ ॥

गणमाणओ जहन्ना–तिन्नि गण सयग्गसो उ उक्कोसा । पुरिसपमाणे पनरस–सहस्ससो चेव उक्कोसा ॥ ९० ॥ पडिवज्जमाणगा—वा इक्काइ हविज्ज ऊणपक्खेवि । होंति जहन्ना एए—सयग्गसो चेव उक्कोसा ॥ ९१ ॥ पुव्व पडिवन्नगाणवि–उक्कोस जहन्नओ परीमाणं । कोडिपुहुत्तं भणियं–मुणीण हालंदियाणं तु ॥ ९२ ॥ पंचवि इमे पहाणा–अन्नुन्ननिंदयाण साहूणं । अन्नुक्करिस विसूइय–विवज्जयाणं जओ भणियं ॥ ९३ ॥ जोवि दुवत्थतिवत्थो–एगेण अचेलओ व संथरइ । नय ते दूसिंति परं–सव्वेविय ते जिणाणाए ॥ ९४ ॥

રનું કંઈ પણ પ્રતિકર્મ કરે નહીં, અને આંખનું મળ પણ ઉતારે નહિ. [૮૭] સ્થવિરકલ્પિ હોય, તો એટલો વિશેષ છે કે, અણ સહી શકતાને ગચ્છમાં સોંપે છે, અને તે ગચ્છવાળા, તેની પ્રાશુક ઉપાયોથી સઘળી ચિકિત્સા કરે છે. [૮૮] સ્થવિર કલ્પિ હોય, તો જેટલા પાત્રવાળા હોય, તેટલા પ્રાવરણવાળા હોય છે, અને જેઓ એમાં જિનકલ્પિ હોય, તેમનાં વસ્ત્રપાત્રમાં ભજના હોય છે. [૮૯]

ગચ્છના માનમાં જઘન્યથી ત્રણ ગચ્છ હોય, ઉત્કૃષ્ટા સો ગચ્છ હોય. પુરૂષના પ્રમાણમાં ઉત્કૃષ્ટા પંદર હજાર હોય. [૯૦] પ્રતિપદ્યમાનના હિસાબે ઓછામાં ઓછા જઘન્યથી એક હોય, અને ઉત્કૃષ્ટા એક સો હોય. [૯૧] પૂર્વ પ્રતિપન્ન યથાલંદ મુનિઓ ઉત્કૃષ્ટ, અને જઘન્યપણે બે ક્રોડથી નવક્રોડ સૂધી હોય. [૯૨] આ રીતે પાંચે પ્રકારના કલ્પવાળા મુનિઓ અન્યોઅન્ય અનિંદક અને બીજાના ઉત્કર્ષની વિશ્રુચિકાથી રહિત સાધુ જનોમાં પ્રધાન ગણાય છે. જે માટે કહેલું છે કે, જે બે વસ્ત્ર રાખે, ત્રણ રાખે, એક રાખે કે, વસ્ત્ર વગરજ નભાવે, તે એક બીજાને દૂષે નહિ, કેમકે તે સર્વે જિનાજ્ઞાને અનુસરીનેજ વર્ત્તે છે. [૯૩-૯૪]

इत्थ किर थेरकप्पो–निच्चो जम्हा इमंमि निप्पन्ना । सेसाण हुंति जोग्गा–तित्थं च इमेण निव्वहइ ॥ ९५ ॥ दुब्बल संघयणाणं–एसच्चिय वट्टमाणपुरिसाणं । उचिओ कप्पो तम्हा–एयंमि हविज्ज उज्जुत्तो ॥ ९६ ॥ इय विविह जुत्तिसारं–पंनविओ सूरिणा तहवि एसो । गाढाभिमाण-वसओ–पडिभणिउं एव माढत्तो ॥ ९७ ॥ जइ ताव मंदसत्ता–तुब्भे सुहलंपडा न उज्जमह । सइसामत्थे किमहं–पमायसीलो हविस्सामि ? ॥ ९८ ॥ इय जंपंतो बहुहा–वारिज्जंतोवि छुट्टवसहिंतो । पडिवन्ननग्ग-भावो–सिवभूई निग्गओ सहसा ॥ ९९ ॥

नेहेण य पव्वइया–लहुभइणी तस्स उत्तरा नाम । तं वच्चंतं दट्ठुं चिंतइ मह भाउणा नूणं ॥ १०० ॥ एएण पगारेणं–दिट्ठो परलोय साहणोवाओ । इय चिंतिय संचलिया–तहेव सानग्गओ तस्स ॥ १०१ ॥ लज्जाकरि त्ति काउं–वेसाए साडिया नियत्था से । त मणिच्छंतिं

એમાં સ્થવિરકલ્પ છે, તે નિત્ય છે. કેમકે એમાં તૈયાર થઇને શેષ કલ્પોને યોગ્ય થાય છે, તેમજ તીર્થ પણ એના વડેજ ચાલે છે. (૯૫) આજ કાલ વર્ત્તતા દુર્બળ સંઘેણવાળા પુરૂષોને એજ કલ્પ ઉચિત છે, માટે એમાં ઉદ્યુક્ત રહેવું. [૯૬] આ રીતે અનેક યુક્તિઓથી આચાર્યે સમજાવ્યા છતાં ગાઢ અભિમાનના વશે કરીને આ રીતે જ-વાબ આપવા લાગ્યો કે, તમે મંદ સત્વવાળા,, અને સુખલંપટ હોઇને જો કે ઉદ્યમ નથી કરતા, છતાં હું સામર્થ્યવાન્ છતાં શા માટે પ્રમાદશીલ થાઉં ? [૯૭-૯૮] આ રીતે બોલતો થકો, અને છુટો પડતાં ઘણા પ્રકારે નિવાર્યો થકો પણ નગ્નપણું ધારણ કરીને શિવભૂતિ ઝટ દઇને છુટો પડ્યો. [૯૯] તેની ઉત્તરા નામે નાની બ્હેન હતી, તે તેના સ્નેહથી પ્રવ્રજિત થયેલી હતી, તે તેને જતો જોઇને વિચારવા લાગી કે, મારા ભાઇએ નક્કી આ પ્રકારે પરલોક સુધારવાનો ઉપાય દીઠો લાગે છે, એમ ચિંતવીને તે પણ તેનાજ માફક નગ્ન થઇને તેના પાછળ ચાલી. (૧૦૦-૧૦૧) ત્યારે તે લજ્જવે છે, એમ વિચારીને વેશ્યાએ તેના ઉપર સાડી મેલી, તેને અણઇચ્છતી જોઇને ભાઇએ કહ્યું કે,

दट्ठूण-भाउणा सा इमं भणिया ॥ १०२ ॥ देवयदिन्नं एयं-मा मुंचसु सुयणु साडियं एगं । इय एगसाडियत्तं-संजायं तस्स अज्जाणं ॥ १०३ ॥ एवं सो मोहंधो-आरंभेऊण कट्ठणुट्ठाणं । जाओ मिच्छादिट्ठी-दुग्गइ दोहग्गभागी य ॥ १०४ ॥

तथाचागमः—

ऊहाए पन्नत्तं-बोडिय सिवभूइउत्तराहि इमं । मिच्छादंसण मिणमो-रहवीरपुरे समुप्पन्नं ॥ १०५ ॥

अशक्यानुष्ठाने सुबहुशिवभूतिर्हतमतिः—
प्रवृत्तिं कुर्वाणः समजनि भवे दुःखभवनं ।
इति ज्ञात्वा सम्यक् सपदि परिहृत्याग्रहमिमं-
सदा शक्यारंभं कुरुत यतयो निर्मलधियः ॥ १०६ ॥

॥ इति शिवभूतिकथा ॥

(छ)

હે સુતનુ ! દેવતાએ આપેલી આ એક સાડીને તું મૂકમાં. એ રીતે તેની આર્યાઓ એક સાડીવાળી થઇ. (૧૦૨-૧૦૩) એ રીતે તે મોહથી અંધ થએલો શિવભૂતિ કષ્ટાનુષ્ઠાન આરંભીને મિથ્યાદ્રષ્ટિ તથા દુર્ગતિ, અને દૌર્ભાગ્યનો ભાગિઓ થયો. [૧૦૪]

જે માટે આગમમાં કહેલું છે કે,

બોટિક શિવભૂતિ, અને ઉત્તરાએ પોતાની ઉહા (મતિકલ્પિત વિચારણા) થી પ્રરૂપેલું આ મિથ્યાદર્શન રથવીરપુરમાં પહેલું ઉત્પન્ન થયું. [૧૦૫] આ રીતે અશક્યાનુષ્ઠાનમાં દુર્મતિ શિવભૂતિ ઘણી પ્રવૃત્તિ કરીને દુઃખી થયો. એમ રૂડી રીતે જાણીને આગ્રહને ઝટ છોડી દઇને હમેશાં હે નિર્મળ બુદ્ધિવાન્ યતિઓ ! તમે આ શક્યારંભ કરતા રહો. [૧૦૬]

આ રીતે શિવભૂતિની કથા છે.

महामोहताचास्य गुरावज्ञाबुध्यात्मानमुन्नमयितुं प्रवृत्तत्वात् द्रष्टव्या.—गुर्वाज्ञया शासनोन्नतिकारिणो लब्धिख्यातिनिरपेक्षस्य साधोरधिकतपःकर्मातापनादिकरणं च वीर्याचाराराधनरूपत्वाद् गुणकरमेवेति.

इत्युक्तं शक्यानुष्ठानारंभरूपं पंचमं भावसाधोर्लिंग-मिदानीं षष्ठं गुणानुरागमाह.

[मूलं]

जायइ गुणेसु रागो-सुद्धचरित्तस्स नियमओ पवरो।
परिहरइ तओ दोसे-गुणगणमालिन्नसंजणए ॥ १२० ॥.

[टीका]

जायते संपद्यते गुणेषु—
वय[५] समणधम्म[१०] संजम[१७]-वंयावच्चं[१०] च बंभगुत्तीओ[९]।

શિવભૂતિને મહામૂઢ એટલા માટે જાણવો કે, તે ગુરૂમાં અવજ્ઞાબુદ્ધિ રાખી પોતાને ઉંચો બતાવવા પ્રવૃત્ત થયો. બાકી ગુરૂની આજ્ઞાએ શાસનની ઉન્નતિ કરનાર, અને લબ્ધિ કે ખ્યાતિની અપેક્ષા નહીં રાખનાર સાધુનું અધિક તપકર્મ તથા આતાપનાદિકનું કરવું, તે તો વીર્યાચારની આરાધના રૂપે હોઇને ફાયદાકારકજ થાય છે.

આ રીતે શક્યાનુષ્ઠાનારંભરૂપ ભાવ સાધુનું પાંચમું લિંગ કહ્યું. હવે ગુણાનુરાગ રૂપ છઠ્ઠું લિંગ કહે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

શુદ્ધ ચારિત્રવાળાને ગુણોમાં નિયમા પ્રવર રાગ થાય છે, તેથી તે ગુણોને મલિન કરનાર દોષોને ત્યાગ કરે છે. (૧૨૦)

ટીકાનો અર્થ.

ગુણોમાં એટલે પાંચ મહાવ્રત, દશવિધયતિધર્મ, સત્તર સંયમ, દશવિધ વૈયાવચ્ચ,

नाणाइतियं[३] तव[१२] कोह-निग्गहा[४] इय चरण मेयं ॥ १ ॥
पिंडविसोही[४] समिई[५]-भावण[१२] पडिमाउ[१२] इंदियनिरोहा[५] ।
पडिलेहण[२५] गुत्तीओ[३]-अभिग्गहा[४] चेव करणं तु ॥ २ ॥

इत्यागमप्ररूपितेषु मूलगुणोत्तरगुणसंज्ञितेषु रागः प्रतिबंधः शुद्धचारित्रस्य निष्कलंकसंयमस्य नियमतोऽवश्यंभावेन प्रवरः प्रधानो न मिथ्याइतिभावः—परिहरतिवर्जयति ततस्तस्माद्गुणानुरागाद्दोषान्दुष्टव्यापारान्, किंविशिष्टान् ? गुणगणमालिन्यसंजनकान्ज्ञानादीनामशुद्धिहेतून् भावसाधुरिति.

गुणानुरागस्यैव लिंगमाह—

॥ मूलं ॥

गुणलेसंपि पसंसइ-गुरुगुण बुड्डीइ परगयं एसो ।
दोसलवेणवि नियगं-गुणनिवहं निग्गुणं गणइ ॥ १२१ ॥

નવવિધ બ્રહ્મચર્યની ગુપ્તિ, જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર, બાર પ્રકારનું તપ ચાર ક્રોધાદિક કષાયનો નિગ્રહ એ રીતની ચરણ સત્તરિ છે. તથા—

ચાર પ્રકારની પિંડ વિશુદ્ધિ, પાંચ સમિતી, બાર ભાવના, બાર પ્રતિમા, પાંચ ઇંદ્રિયોનો નિરોધ, પચીશ પડીલેહણા, ત્રણ ગુપ્તિ, અને ચાર જાતના અભિગ્રહ એ કરણસત્તરી છે. આગમમાં વર્ણવેલા મૂળ ગુણ અને ઉત્તર ગુણોમાં રાગ એટલે પ્રતિબંધ [પ્રીતિ] શુદ્ધ એ રીતે ચારિત્રવાળા પુરૂષને નિયમા પ્રવર એટલે પ્રધાન હોય. નહિ કે, ઉપર ટપકાંનો જુઠો રાગ હોય, તે ગુણાનુરાગથી તે ભાવ સાધુ જ્ઞાનાદિક ગુણોને મલિન કરનાર દોષોને એટલે દુષ્ટ વ્યાપારોને પરિહરે છે, એટલે વર્જે છે.

ગુણાનુરાગનું જ લિંગ બતાવે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

પરમાં રહેલા લેશ ગુણને પણ મહાન્ ગુણની બુદ્ધિએ તે પ્રશંસે છે, અને લવ જેટલા દોષવડે પોતાના ગુણોને નિર્ગુણ ગણે છે. [૧૨૧]

(ટીકા)

गुणलेशम–प्यास्तां महीयांसं गुणमित्यपेरर्थः–प्रशंसति श्लाघते परगतमन्यसत्कमेष भावसाधु,— रुत्तमप्रकृतित्वान्महतोपि दोषानुत्सृज्य स्वल्पमपि परगतं गुणं पश्यति,—कुथितकृष्णशारमेयशरीरे सितदंतपंक्तिं पुरुषोत्तमवत्;—तथा दोषलवेनाप्यल्पप्रमादस्खलितेनापि निजकमात्मीयं गुणनिवहं गुणकलापं निर्गुणमसारं गणयति कल्पयति धिङ्मां प्रमादशीलमिति भावनया प्रकृतो भावयति,— कर्णस्थापितविस्मृतशुंठीखंडापश्चिमदशपूर्वधरश्रीवज्रस्वामिवदिति.

पुरुषोत्तमचरितं पुनरेवं.

अत्थि सुरट्ठाविसए–बारवई नाम पुरवरी रम्मा । कंचणमणिमयमंदिर–पायारा धणयनिम्मविया ॥ १ ॥ तत्थय हरिकुलनहचल–हरिणंको अरिसमूहमयमहणो । महुमहणो नाम निवो–दाहिणभरहद्धरज्जधरो

ટીકાનો અર્થ.

એ એટલે ભાવ સાધુ પરગત એટલે બીજાના ગુણ, લેશને પણ—મોટો ગુણ તો દૂર રહો—પ્રશંસે છે, વખાણે છે—મતલબ કે તે ઉત્તમ સ્વભાવવાળો હોવાથી મોટા દોષોને છોડીને પારકા થોડા ગુણને પણ જોઇ શકે છે—કાળા કૂતરાના સડેલ શરીરમાં ધોળા દાંતની પંક્તિને વખાણનાર શ્રીકૃષ્ણ માફક. વળી તે દોષના લવથી કરીને પણ એટલે પ્રમાદના કારણે થએલી થોડી ભૂલવડે કરીને પણ પોતાના ગુણ સમૂહને નિર્ગુણ એટલે અસાર ગણે છે—એટલે કે હું કેવો પ્રમાદશીળ છું, એવી ભાવનાવડે પોતાને ધિક્કારે છે. કાનપર રાખેલા સુંઠના કટકાને વીસરનાર છેલ્લા પૂર્વધર શ્રીવજ્ર સ્વામિ માફક.

પુરૂષોત્તમ (શ્રીકૃષ્ણ)નું ચરિત્ર આ પ્રમાણે છે.

સોરઠ દેશમાં દ્વારવતી નામે મનોહર નગરી છે કે, જે સોના અને મણિમય મંદિર તથા કોટવાળી છે, અને ધનદ [કુબેર]ની બનાવેલી છે. (૧) ત્યાં હરિકુળ (યાદવ વંશ) રૂપ નભસ્તળમાં ચંદ્રમા સમાન અને દુશ્મનોના મદને ઉતારનાર

॥ २ ॥ तत्थ कयाविहु विहुणिय-अइघणचणघाइकम्मपब्भारो । दुरियदुमदलणनेमी-अरिट्ठनेमी समोसरिओ ॥ ३ ॥ सिरिरेवयगिरिसंट्ठिय-उज्जाणे नंदणंमि रमणीए । सुररइयसमोसरणे-उवविट्ठो देसणं काउं ॥ ४ ॥

तत्तो निउत्तपुरिसा-जिणआगमणं सुणेवि हिट्ठमणो । चलिओ भरहद्धवई-वंदणहेउं जिणिंदस्स ॥ ५ ॥ चलिया तेण समाणं-दसवि दसारा समुद्दविजयाई । तहचेव महावीरा-पंचवि बलदेवपामुक्खा ॥ ६ ॥ सोलस रायसहस्सा-संचलिया उग्गसेणनिवपमुहा । इगवीससहस्सा-वीरसेणपमुहाण वीराण ॥ ७ ॥ दुद्दंतकुमाराणं—सट्ठिसहस्साण संबपमुहाणं । पज्जुन्नप्पमुहाओ—अट्ठट्ठकुमारकोडीओ ॥ ८ ॥ छप्पन्नं च सहस्सा—महसेणप्पमुहबलवगाणंपि । अन्नोवि सिट्ठिमाई—नागरलोगो अणेगविहो ॥ ९ ॥

મધુમથન [શ્રીકૃષ્ણ] નામે દક્ષિણ ભરતાર્દ્ધનો રાજા હતો. [૨] ત્યાં એક વેળા અતિ આકરા ઘાતિ કર્મને તોડનાર, અને દુરિતરૂપ ઝાડને ભાંગવા પૈડાની ધારા સમાન અરિષ્ટ નેમિ ભગવાન્ સમોસર્યા. [૩] તે શ્રી રૈવતગિરિ ઉપર રહેલા નંદન નામના રમણીય ઉદ્યાનમાં દેવોએ રચેલા સમવસરણમાં દેશના આપવા માટે બિરાજમાન થયા. (૪)

ત્યારે ખબર આપવા રોકેલા માણસ મારફત જિનેશ્વર પધાર્યા સાંભળી, હર્ષિત થઇને ભરતાર્દ્ધ પતિ તેમને વાંદવા ચાલ્યો. [૫] તેના સાથે સમુદ્રવિજય વગેરે દશ દશાર્હ તેમજ બળદેવ પ્રમુખ પાંચ મહાવીર (મોટા બળવાન્) ચાલતા થયા. [૬] વળી ઉગ્રસેન વગેરે સોળ હજાર રાજાઓ, તથા વીરસેન પ્રમુખ એકવીશ હજાર શૂરવીર સુભટો ચાલતા થયા. [૭] તેમજ સાંબ પ્રમુખ સાઠ હજાર દુર્દાંત [બેપરવા] કુમારો તથા પ્રદ્યુમ્ન પ્રમુખ સાડી ત્રણ ક્રોડ કુમારો ચાલતા થયા. (૮) વળી મહાસેન પ્રમુખ છપ્પન હજાર બળવાનો તથા બીજા અનેક શેઠ શાહુકાર વગેરે નાગરિક લોકો નીકળી પડ્યા. (૯)

इत्तो सोहम्मवई–विण्हुमणं ओहिणा मुणेऊण । गाढं हरिसियहियओ–सहागओ भणइ नियअमरे ॥ १० ॥ हंहो पिच्छह पिच्छह–एए किरकेसवा महाभागा । गुरुगुणबुद्धीइ नियंति–परगयं गुणलवंपि सया ॥ ११ ॥ सिमुणो इव खलु पहुणो–जहतह जंपंति इय विचिंतेउं । सिग्घं परिक्खणत्थं–एगो अमरो इहं पत्तो ॥ १२ ॥ ओसरणगमणमग्गे–गयजीयं परमदुरहिगंधड्ढं । विहसिपमुहसियदंतं–एगं साणं विउव्वेइ ॥ १३ ॥ तग्गंधेण भिजूयं–सिन्नं सयलंपि अन्नओ हुत्तं । दढपिहियवयणनासा–उडं फुडं गंतुमारद्धं ॥ १४ ॥

कण्हो पुण वच्चंतो–तेणेव पहेण दट्ठु तं साणं । परगुणलेसग्गहणंमि–लालसो जंपए एवं ॥ १५ ॥ एयस्स कसिणसाणस्स–भाणणे सेयदंतघणपंती । एसा मरगयथाले–मुत्तामालेव कह सहइ ॥ १६ ॥ इय नाउं हरिचरियं–कहवि न दोसं वयंति सप्पुरिसा । सो जायपच्च-

---

એવામાં સૌધર્મ ઇંદ્રે અવધિ જ્ઞાનથી વિષ્ણુનું મન જાણીને બહુ હર્ષ પામી સભામાં પોતાના દેવોને કહેવા લાગ્યો કે, આ મહાભાગ વાસુદેવો પરાયા લવ જેટલા ગુણને પણ મોટા ગુણની બુદ્ધિથી જુવે છે. (૧૦–૧૧) ત્યારે એક દેવતાએ વિચાર્યું કે, બાળકોની માફક પ્રભુઓ [મોટાઓ] પણ જેમ તેમ બોલે છે, એમ વિચારી તેની પરીક્ષા કરવા, તે ઇહાં આવ્યો. [૧૨] તેણે સમવસરણમાં જવાના માર્ગમાં અતિ દુર્ગંધિ દાંતો બુલ્લા કરી રહેલું મરેલું કૂતરું વિકુર્વ્યું. [૧૩] તેની ગંધથી મુંઝાઇને સઘળું સૈન્ય પડખે થઇને, તથા મોઢું અને નાક બરોબર ઢાંકીને ચાલવા લાગ્યું. (૧૪)

પરંતુ શ્રીકૃષ્ણ તો તેજ માર્ગે ચાલીને પરાયા ગુણના લેશને પણ ગ્રહણ કરવામાં લાલસ હોવાથી આ રીતે કહેવા લાગ્યા કે, આ કાળા કુતરાના મોઢામાં ધોળા દાંતની હાર જાણે મરકત મણિના થાળમાં મોતીઓની માળા પડી હોય, તેવી શોભે છે. [૧૫–૧૬] આ રીતે શ્રીકૃષ્ણનું ચરિત્ર [આચરણ] જોઇને તે દેવતાને " સત્પુરૂષો કદાપિ દોષ બોલતા નથી. " એમ ઇંદ્રે કહેલાં વચનમાં ખાતરી આવ્યાથી તેણે પોતાનું રૂપ પ્રગટ કર્યું. (૧૭)

ओ सुरवइंमि, पयडेइ नियरूवं ॥ १७ ॥ परगुणगहणपहाणं–बहुसो थुणिउं हरिं सबहुमाणं । असिवोपसमणभेरिं च–दाउ अमरो गओ सग्गं ॥ १८ ॥ तत्तो कण्हो पत्तो–ओसरणे जिणवरं नमिय विहिणा । उचियट्ठाणे निसियइ–इय सामी कहइ धम्मकहं ॥ १९ ॥

भो भविया भवगहणे–दुलहं कहकहवि लहिय संपत्तं । तस्स विसुद्धिनिमित्तं–संतगुणपसंसणं कुणह ॥ २० ॥ जह सयलतत्तविसया–अरुई संमत्तनासिगा भणिया । तह संतगुणाणुववूहणा वि अइयारसंजणणी ॥ २१ ॥ जइ संतावि नहु गुणा–पसंसणं पाउणंति सत्ताणं । तो बहुकिलेससज्जाण–ताण को आयरं कुज्जा ॥ २२ ॥ ता नाणाईविसए–गुणलेसं जत्थ जत्तियं पासे । संमत्तंगं अवगम्म–तत्थ संसिज्ज तावइयं ॥ २३ ॥ जो पुणमच्छरवसओ–पमायओ वा गुणे न संसिज्जा। संतेवि सो दुहाइं–पावइ भवदेव सूरि व्व ॥ २४ ॥

બીજા પરાયા ગુણને ગ્રહણ કરવા તત્પર શ્રીકૃષ્ણને બહુ માનપૂર્વક વારંવાર વખાણીને તથા અશિવને ઉપશમાવનાર ભેરી, તેને આપીને તે દેવતા સ્વર્ગે પહોંચ્યો. [૧૮] તે પછી શ્રીકૃષ્ણ સમવસરણમાં આવી વિધિપૂર્વક જિનને નમીને ઉચિત સ્થાને બેઠો, ત્યારે ભગવાને આ રીતે ધર્મ કથા કહેવા માંડી. [૧૯]

હે ભવ્યો ! આ ભવરૂપ અટવીમાં દુર્લભ સમ્યક્ત્વને જેમ તેમ કરી પામીને તેની વિશુદ્ધિના માટે છતા ગુણોની પ્રશંસા કરો. [૨૦] જેમ સઘળા તત્વોમાં અરુચિ તે સમ્યક્ત્વને નાશ કરનારી છે, તેમ છતા ગુણોની પ્રશંસા નહિ કરવી, તે તેમાં અતિચાર લગાડનારી છે. [૨૧] જો જીવોના છતા ગુણ પણ પ્રશંસાય નહિ, તો પછી બહુ કલેશથી સધાતા ગુણોમાં કોણ આદર કરશે ? (૨૨) માટે જ્ઞાનાદિકની બાબતમાં જ્યાં જેટલો ગુણાંશ દેખાય, તેને સમ્યક્ત્વનું અંગ માનીને તેટલાની પણ પ્રશંસા કરવી. (૨૩) કારણ કે, જે મચ્છરના લીધે, અથવા પ્રમાદના વશથી છતા ગુણોને પણ નહિ પ્રશંસે, તે ભવદેવસૂરિની માફક દુઃખો પામે છે. (૨૪)

पुच्छइ य हरी भयवं–भवदेवो नाम एस को सूरि। भणइ पहू इह भरहे–आसि पुरा एस मुणिनाहो ॥ २५ ॥ बुद्धीइ सुरगुरुसमो नवरं चरणंमि ईसिसिढिलमणो। तस्सयएगो सीसो–नामेणं बंधुदत्तु त्ति ॥ २६ ॥ सो पुण निम्मलचरणो–सुहुममई वायलद्धि संपन्नो। तक्कागमेसु कुसलो–अमच्छरिल्लो विणिओ य ॥ २७ ॥ तो तस्स पायमूले–जिणसमयवियक्खणा समणसंघा। सत्थवियट्टासट्ठावि–विणयपवणा कयंजलिणो ॥ २८ ॥ निसुणंति जिणिंदागम–मुवउत्तमणा तहत्ति जंपंता। पकुणंति य बहुमाणं–पवित्तचारित्तजुत्तु त्ति ॥ २९ ॥

तो भवदेवो सूरी–मच्छरभरिओ विचिंतए हियए। मं मुत्तु इमे मुद्धा–किं एयं पज्जुवासंति ? ३० ॥ अहवा मुद्धा मुणिणो–गिहिणो व इमे कुणंतु जंकिंपि। एस उण कीस सीसो–तहा मए दिक्खिओ वि फुडं ? ॥ ३१ ॥ तह बहुसुओ मइ च्चिय—कओवि तह गुरुगुणेसु ठ-

---

શ્રીકૃષ્ણે પૂછ્યું કે, ભગવન્ ! ભવદેવ નામે કોણ આચાર્ય હતા ? ભગવાન્ બોલ્યા કે, આ ભરતમાં પૂર્વે ભવદેવ નામે એક આચાર્ય હતો. [૨૫] તે બુદ્ધિથી બૃહસ્પતિ સમાન હતો, પણ ચારિત્રમાં લગાર ઢીલાં મનવાળો હતો, તેને એક બંધુદત્ત નામે શિષ્ય હતો, નિર્મળ ચારિત્રવાન્, સૂક્ષ્મ બુદ્ધિવાળો, વાદલબ્ધિ સંપન્ન, તર્ક તથા આગમમાં કુશળ, મત્સર રહિત અને વિનીત હતો. [૨૬–૨૭] તેથી તેની પાસે જિન સમયના જાણ શ્રમણો તથા શાસ્ત્રમાં કુશળ શ્રાવકો વિનયપૂર્વક હાથ જોડી ઉપયોગ રાખીને જિનાગમ સાંભળતા, અને તેને તહત્ત કરી માનતા, તથા તેને ચારિત્રવાન્ ગણીને તેનું બહુ માન કરતા. (૨૮–૨૯)

ત્યારે ભવદેવસૂરિ મત્સરે ભરાઇને હૃદયમાં ચિંતવવા લાગ્યો, મને છોડીને આ મૂર્ખો એને કાં સેવે છે ? [૩૦] અથવા આ મુનિઓ અને શ્રાવકો તો ભોળા છે, માટે ગમે તે કરો, પણ આ ચેલો મારો બુડેલો હોઈ આમ કેમ કરે છે ? (૩૧) મેંજ એને બહુશ્રુત કર્યો છે, અને મેંજ એને મોટા ગુણોમાં સ્થાપિત કર્યો છે, છતા મને

बिओवि । मं अवगणिउं एवं—वट्टइ परिसाइ भेयंमि ॥ ३२ ॥ नरनाहंमि जियंते—न छत्तभंगो हवेइ, एसोवि । एएण अणज्जेणं—मन्ने ण सुओ जणपवाओ ॥ ३३ ॥ जइ संपइ वारिज्जइ—इमो मए धम्मकहणमाईयं । तो मच्छरि त्ति लोगो—मुद्धो मं मन्नए एस ॥ ३४ ॥

ता काउ उवेह च्चिय—इमंमि मूढंमि इण्हि मह उचिया । इय जा मच्छरपुन्नो—सो सूरी गमइ कइवि दिणे ॥ ३५ ॥ ता पाडलि पुरनयरा संघाएसेण तस्सपासंमि । पत्तो मुणिसंघाडो—मुणीहि अब्भुट्ठिओ सोवि ॥ ३६ ॥ अथ तस्ययतिपतेर्यति—जनस्य कृत्वा यथोचितं सर्वं । मुनिशृंगाटक एवं—संघादेशं न्यवीविदत ॥ ३७ ॥ प्रज्ञावज्ञातगुरु—र्विदुराख्यो व्यक्तलिंगिकस्तत्र । स्वैरं विजहार चिरं—षट्दर्शनविप्लुतिं कुर्वन् ॥ ३८ ॥

तथाहि

અવગણીને આ રીતે જુદી પર્ષદા ભરે છે ! [૩૨] " રાજા જીવતાં છતાં તેના છત્રનો ભંગ ન થાય. " આ કહેવતને પણ હું ધારૂં છું કે, તે અનાર્યે સાંભળી નથી. (૩૩) હવે જો હમણાં એને હું ધર્મ કથા વગેરેથી અટકાવું તો આ મુગ્ધ લોકો મને મત્સરી માની બેસે. (૩૪)

માટે આ મૂઢ શિષ્ય તરફ મારે હાલ ઉપેક્ષાજ કરવી ઉચિત છે, એમ વિચારી તે આચાર્ય મત્સરથી ભરેલો રહી, કેટલાક દિવસ પસાર કરવા લાગ્યો. (૩૫) એવામાં પાટલિપુર નગરથી સંઘની આજ્ઞાએ તેની પાસે એક મુનિનો સંઘાડો આવ્યો, એટલે મુનિઓએ ઉભા થઇ તેને માન આપ્યું. (૩૬) હવે તે સંઘાડાએ તે આચાર્ય તથા યતિઓનું સઘળું ઉચિત સાચવીને આ રીતે સંઘનો આદેશ જણાવ્યો કે, [૩૭] ત્યાં પ્રજ્ઞાથી બૃહસ્પતિને પણ હલકો પાડનાર વિદુર નામનો અવ્યક્તલિંગી છ દર્શનને તોડીને યથેચ્છપણે ત્યાં લાંબા વખતથી વિચરતો રહ્યો છે. [૩૮]

તે આ રીતે કે:—

काणादा नमदान् प्रणष्टधिषणाधिक्यान् बहून् गौतमान्–शाक्यान् तर्कवचोविचारविमुखान् सांख्यानसंख्यानपि । कौलान् भ्रष्टबलान् निरस्तयशसो मीमांसकान् व्यंसकान्–कुर्वन् वारणवद्विशंकमचरत् सर्वत्र गर्वोद्धरः ॥ ३९ ॥ संप्रति जैनमुनींद्रैः–सार्द्धं स्पर्द्धां चिकीर्षते दुष्टः । तद्दर्शनकृत्यमिदं–कर्त्तुं तत्रैत लघु यूयं ॥ ४० ॥ इय सोउं सो सूरी–जा चलिओ पाडलीपुराभिमुहं । पवयणपभावणत्थं–ता जाया अभिमुहा छीया ॥ ४१ ॥ वामा खेमा, लाभंमि दाहिणा पच्छिमा नियत्तेइ । छीया नूण मभिमुहा–कयंपि कज्जं विणासेइ ॥ ४२ ॥

इय चिंतिऊण सूरी–विहारकरणाउ उवरओ सहसा । तो भणियं आगंतुय–मुणि संघाडेण वयण मिणं ॥ ४३ ॥ जइ तुम्हाण विहारो–सउणअभावाउ तत्थ नहु जाओ । ता बंधुदत्तसाहुं–लहु पेसह वायल-द्धिल्लं ॥ ४४ ॥ तो सूरिणा बहुविहं–विचिंतिउं संविसज्जिओ तत्थ ।

તેણે કણાદના મતને માનનારાઓનો મદ ઉતારી નાંખ્યો છે, ગૌતમના મતને માનનારાઓ ઘણુકોને અકલના જોરમાં ઓછા કરી દીધા છે, બૌદ્ધોને તર્કના વિચારથી વેગળા કર્યા છે, સાંખ્યોને સંખ્યાહીન બનાવ્યા છે, કૌલોને નબળા પાડયા છે, તથા મીમાંસકોના યશને તોડી બાયલા બનાવ્યા છે, એમ તે નિઃશંક થઇને ગર્વે ચડી, સઘળા સ્થળે ફરતો રહેતો હતો. [૩૯] પણ હમણાં તે દુષ્ટ જૈન મુનિઓ સાથે બાથ ભીડવા ચાહે છે, માટે આ દર્શનનું કામ કરવા તમે જલદી ત્યાં પધારો. (૪૦) એમ સાંભળીને તે આચાર્ય પ્રવચનની પ્રભાવના કરવા પાટલીપુર તરફ રવાના થયો, તેવામાં તેના સામે છીક થઇ. [૪૧] (છીકના માટે એવું કથન છે કે,) ડાબી છીક થાય તે ક્ષેમકારક છે, જમણી થાય તે પણ લાભકારી છે, પછવાડે થાય તો પાછું વાળે, અને સામે થાય તો તે નક્કી કરેલા કામને પણ બગાડે છે. [૪૨] એમ ચિંતવીને તે આચાર્ય વિહાર કરતાં ઝટ અટકી ગયો, ત્યારે આવેલા સંઘાડાએ આ રીતે કહ્યું કે, જો શકુન સારાં ન થવાથી તમો ત્યાં નથી પધારી શકતા, તો વાદલબ્ધિ સંપન્ન બંધુદત્ત સાધુને ત્યાં મોકલાવો. [૪૪]

पत्तो थोवदिणेहिं–सुसउण परिवुड्ढिउच्छाहो ॥ ४५ ॥ दिट्ठो तत्थ नरिंदो–कया पइन्ना इमा दुन्हेहिंपि । जो जेण नूण जिप्पइ–स तस्स सीसो हवेउ त्ति ॥ ४६ ॥ तो बंधुदत्तमुणिणा–सियवायविसुद्धबुद्धिविहवेण । बहुवयणवित्थरेणं–वायंमि पराजिओ विदुरो ॥ ४७ ॥

लद्धं च विजयपत्तं–विदुरो पव्वाविओ तया चेव । विहसियमुहकमलेणं–पसंसिओ सयलसंघेण ॥ ४८ ॥ विदुरविणेयसमेओ–पएपए बहुजणेण थुव्वंतो । तो बंधुदत्तसाहू–पत्तो नियसूरिपासंमि ॥ ४९ ॥ तेण पुण मच्छरवसा–न मणागंपिहु पसंसिओ एस । नय दिट्ठो ससिणेहं–आलविओ सहरिसं नेव ॥ ५० ॥ हा जइ गुरुणोवि मए–न रंजिया मंदबुद्धिकलिएण । ता सेसाण गुणाणं–समज्जणेणं हवउ मज्झ ॥ ५१ ॥ इय चिंताउलचित्तो–हिययंमि वहंतओ महाखेयं । तप्पभिइ बंधुदत्तो–जाओ गुणअज्जणे विमुहो ॥ ५२ ॥

ત્યારે આચાર્યે ઘણો વિચાર કરીને તેને ત્યાં મોકલાવ્યો હવે તેને સારાં શકુન થયાં, તેથી તે વધતા ઉત્સાહે થોડા દિવસમાં ત્યાં આવી પહોંચ્યા. (૪૫) તેણે ત્યાં રાજાની મુલાકાત કરી, બાદ બે જણાએ એવી પ્રતિજ્ઞા કરી કે, જે હારે તેણે જીતનારના શિષ્ય થવું. [૪૬] બાદ બંધુદત્ત મુનિએ સ્યાદ્વાદથી વિશુદ્ધ થએલી બુદ્ધિના જોરથી બહુવચનોના વિસ્તારથી વિદુરને વાદમાં જીતી લીધો. [૪૭] તેને વિજય પત્ર મળ્યો, અને તેજ વેળા વિદુરને પ્રવજ્યા આપી, એટલે વિકસિત મુખ કમળથી સકળ સંઘ તેની પ્રશંસા કરવા લાગ્યો. [૪૮] બાદ તે વિદુર શિષ્યને સાથે લઇ, પગલે પગલે બહુ જનોથી વખણાતો થકો પોતાના ગુરૂ પાસે આવ્યો. [૪૯] પણ તે ગુરૂએ મત્સરના લીધે તેની લગારે પ્રશંસા ન કરી, અને સ્નેહપૂર્વક તેના તરફ દ્રષ્ટિ પણ ન કરી, તથા હર્ષપૂર્વક તેને બોલાવ્યો પણ નહિ. [૫૦] ત્યારે તે વિચારવા લાગ્યો કે, હાય હાય ! મારા જેવા મંદ બુદ્ધિએ ગુરૂને પણ રાજી ન કર્યા, તો હવે બીજા ગુણો ઉપાર્જન કરવાનું મારે શું કામ છે ? [૫૧] એમ ચિંતવીને હૃદયમાં મહા ખેદ ધરી, તે દિવસથી માંડીને તે બંધુદત્ત વધતા ગુણ ઉપાર્જન કરવામાં વિમુખ થઇ રહ્યો. [૫૨]

अकयनियदोससुद्धी–भवदेव मुणी सरोवि मरिऊण । पयड बहु-किव्विसेसुं–किव्विसिएसुं सुरो जाओ ॥ ५३ ॥ तयणु दरिद्दियदियनं-दणो य सो मूयओ समुप्पन्नो । कहकहवि लहिय बोहिं–काउ तवं सग्ग मणुपत्तो ॥ ५४ ॥ इय सोउ कण्हपमुहा–लोया भवदेवसूरिणो चरियं । जाया पमुइय हियया–परगुण गहणिक्कतल्लित्था ॥ ५५ ॥ भुज्जो भुज्जो नेमिं–पणमिय पत्ता सएसु ठाणेसु । समणगणसंपरिवुडो–विहरइ अन्नत्थ सामीवि ॥ ५६ ॥

इति स्फुरद्दोषलतालवित्रं—
निशम्य विष्णो रुचिरं चरित्रं ।
दुष्कर्मनीरौघभिदानिदाघं—
सुसाधवो धत्त गुणानुरागं ॥ ५७ ॥

॥ इति पुरुषोत्तमचरित्रं ॥

બાદ ભવદેવસૂરિ પોતાના દોષની શુદ્ધિ કર્યા વિના મરીને પ્રગટ રીતે બહુ પાપ-વાળો દેખાતો કિલ્વિષિક દેવ થયો. [૫૩] ત્યાર બાદ તે એક દરિદ્ર બ્રાહ્મણનો મુંગો પુત્ર થયો, બાદ જેમ તેમ કરી બોધિ પામી, તપ કરીને સ્વર્ગે ગયો. (૫૪) એમ ભવદેવ-સૂરિનું ચરિત્ર સાંભળીને કૃષ્ણ વગેરે લોકો હર્ષિત થઇ, પારકા ગુણ ગ્રહણ કરવામાં તત્પર થયા. [૫૫] તેઓ ફરી ફરીને નેમિનાથ ભગવાનને નમીને પોતપોતાના સ્થાનકે ગયા, અને ભગવાન્ પણ શ્રમણગણની સાથે અન્ય સ્થળે વિચરવા લાગ્યા. (૫૬) આ રીતે ઉંચે ચડતી દોષલતાને કાપવા દાતરડા સમાન શ્રીકૃષ્ણના મનોહર ચરિત્રને સાંભ-ળીને હે સુસાધુઓ ! તમે દુષ્કર્મરૂપ પાણીને ચુસવા ઉનાળા સમાન ગુણાનુરાગને ધારણ કરો. [૫૭]

આ રીતે પુરૂષોત્તમ [શ્રીકૃષ્ણ] નું ચરિત્ર છે.

श्रीवज्रस्वामिचरितं पुनः प्रायः सुप्रतीतत्वात् दिनकृत्यटीकायां सुप्रपंचितत्वाच्चनेह वितन्यत इति.

गुणानुरागस्यैव लिंगांतरमाह.

(मूलं)

पालइ संपत्तगुणं—गुणड्ढसंगे पमोय मुव्वहइ ।
उज्जमइ भावसारं—गुरुतर गुणारयण लाभत्थी ॥ १२२ ॥

(टीका)

पालयति रक्षाति वर्द्धयति च-जननीव प्रियपुत्रं-संप्राप्तं सम्यक्कर्म-क्षयोपशमलब्धं गुणं ज्ञानदर्शनचारित्रादिरूपं; तथा गुणैराढ्यानां संगे

શ્રી વજ્રસ્વામિનું ચરિત્ર પ્રાયે પ્રસિદ્ધ છે, તથા અમે દિનકૃત્યની ટીકામાં વર્ણુવેલ છે, તેથી અહીં નથી કહેતા.

ગુણાનુરાગનાંજ બીજાં લિંગ કહે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

સંપ્રાપ્ત થએલા ગુણને પાળતો રહે, અધિક ગુણવાનનો સંગ થતાં પ્રમોદ પામે, અને ભાવપૂર્વક ઉદ્યમ કરે, કેમકે તે બહુ કિમતી ગુણરૂપી રત્નોને મેળવવા ઇચ્છનાર હોય છે. (૧૨૨)

ટીકાનો અર્થ.

પાળે એટલે પ્રિય પુત્રને તેની જનેતા જેમ રાખે તથા વધારે, તેમ રહી રીતે થએલાં કર્મના ક્ષયોપશમથી મળેલા જ્ઞાન દર્શન ચારિત્રાદિ ગુણને સાચવે તથા વધારે. વળી

मीलके—चिरप्रोषितस्निग्धबंधुसंप्रयोग इव-प्रमोदमानंदमुत्प्राबल्येन वहति प्राप्नोति,—

तद्यथा—

असतां संगपंकेन—यन्मनो मलिनीकृतं ।
तन्मेद्य निर्मलीभूतं—साधुसंबंधवारिणा ॥ १ ॥
पूर्वपुण्यतरोरद्य—फलं प्राप्तं मयानघं ।
संगेनासंगचित्तानां—साधूनां गुणधारिणां ॥ २ ॥

तथा गुणानुरागादेवोद्यच्छति प्रयतते भावसारं सद्भावसुंदरं यथाभवति ध्यानाध्ययनतपःप्रभृतिकृत्येष्विति गम्यते. किमित्यत आह-गुरुतराणि क्षायिकभावभावित्वाद् यानि गुणरत्नानि क्षायिकज्ञानदर्शन-चारित्राणि तेषां यो लाभस्तदर्थी तदभिलाषवां-स्तथाहि-भवत्येवोद्यमव-तामपूर्वकरणक्षपकश्रेणिक्रमेण केवलज्ञानादिसंप्राप्तिः—सुप्रतीतमेतदिति.

ગુણોથી જે આઢ્ય એટલે ભરપુર હોય, તેમના સંગ એટલે મેળાપમાં લાંબા વખતપર પરદેશ ગએલા સ્નેહવાળા ભાઇને મળતાં જેમ આનંદ થાય, તેમ ખુબ આનંદ પામે.

તે આ રીતે કેઃ—

અસત્ પુરૂષોના સંગરૂપ પંકથી જે મેલું મન કર્યું હતું, તે મારૂં મન સાધુ પુરૂષના સંબંધરૂપ પાણીથી આજ નિર્મળ થયું છે. [૧] અસંગ ચિત્તવાળા ગુણવાન્ સાધુજનોના સંગથી આજ હું પૂર્વે રોપેલા પુણ્યરૂપ તરૂનું ઉત્તમ ફળ પામ્યો છું. (૨)

વળી ગુણાનુરાગથીજ તે ધ્યાન, અધ્યયન, તપ, વગેરે કૃત્યોમાં ભાવસાર થઇને એટલે સદ્ભાવપૂર્વક ઉજમાળ થાય છે, એટલે પ્રયત્ન કરે છે. કેમકે તે ગુરૂતર એટલે ક્ષાયિક ભાવથી થનારા હોવાથી મહાન્ ગણાતાં ગુણ રત્ન એટલે ક્ષાયિક, જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર તેમના લાભનો અર્થી એટલે અભિલાષી હોય છે. જે માટે ઉદ્યમ કરનારાઓને અપૂર્વ કરણ અને ક્ષપક શ્રેણીના ક્રમે કરીને કેવળજ્ઞાન વગેરાની પ્રાપ્તિ થાય છે, એ વાત સુપ્રતીત [પાધરી] જ છે.

(मूलं)

सयणुत्ति व सीस त्ति व—उवगारि त्ति व गणिव्वउ व्व त्ति ।
पडिबंधस्स न हेऊ–नियमा एयस्स गुणहीणो ॥ १२३ ॥

(टीका)

स्वकीयो जनः स्वजन—इति शब्दस्तद्भेदसूचको–वा शब्दः समुच्चये–ह्रस्वत्वं प्राकृतशैल्या,—शिष्यो विनेय–इति वा शब्दौपूर्ववत्,—उपकारी भक्तपानदानादिना पूर्वमुपकृतवा–निति वा शब्दौ प्राग्वत्,—गणिव्वउ व्वत्ति एकगच्छवासी—तिवाशब्दौ पूर्ववदेव,—एतेषामेकैकोपि—प्रायः प्रतिबंधकारणं भव,—त्येतस्य पुनर्गुणानुरागिणो नियमान्निश्चयेन न नैव हेतुर्निमित्तमेकोपि भवत्येतेषां,—किंविशिष्टः सन्नित्याह—गुणहीनोनिर्गुणः,—

મૂળનો અર્થ.

એવા ગુણાનુરાગિને સગો, શિષ્ય, ઉપકારી, કે ગચ્છવાળો જે કોઇ ગુણહીન હોય, તેનાપર નિયમા પ્રતિબંધ હેતો નથી. (૧૨૩)

ટીકાનો અર્થ.

સ્વકીય જન તે સ્વજન છે, એથી કરીને અહીં ઇતિ શબ્દ તેના પ્રકાર બતાવે છે, અને વા શબ્દ સમુચ્ચયાર્થે છે, તે પ્રાકૃતના કારણે હ્રસ્વ થએલો છે, અથવા શિષ્ય છે એટલા માટે, અથવા ઉપકારી એટલે ભાત પાણી આપીને એણે પૂર્વે ઉપકાર કરેલો છે એટલા માટે, અથવા ગણિઓ એટલે એક ગચ્છવાસી છે એટલા માટે, એમાનો કોઇ પણ પ્રાયે પ્રતિબંધનો હેતુ થાય છે, પણ આ ગુણાનુરાગી પુરૂષને તો એમાંનો કોઇ પણ નિર્ગુણ હોય, તો પ્રતિબંધનો હેતુ થતો નથી.

सीसो सज्जिलओ वा-गणिव्वओ वा न सोग्गइं नेइ,
जे तत्थ नाणदंसण-चरणा ते सोग्गईमओ (इति कृत्वा)
अथ चारित्रिणां तेषां स्वजनादीनां किं विधेयमित्याह.

[मुलं]

करुणावसेण नवरं-अणुसासइ तंपि सुद्धमग्गंपि।
अच्चंताजोग्गं पुण-अरत्तदुट्ठो उवेहेइ ॥ १२४ ॥

(टीका)

करुणा परदुःखनिवारणबुद्धिः,—उक्तंच.

परहितचिंता मैत्री-परदुःखनिवारिणी तथा करुणा।
परसुखतुष्टिर्मुदिता—परदोषोपेक्षणमुपेक्षा.

કારણ કે તે એમ ગણે છે કે, શિષ્ય અથવા સહાયી અથવા ગણિયો કોઇ સુગતિએ લઇ જનાર નથી, બાકી ત્યાં જે જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર છે, તેજ સુગતિનો માર્ગ છે.

ત્યારે ચારિત્રવાળાએ તે સ્વજનાદિકનું શું કરવું, તે કહે છે.

મૂળનો અર્થ.

નિઃકેવળ કરૂણા લાવીને તેમને પણ શુદ્ધ માર્ગમાં (લાવવા) શીખામણ આપે, અને જો તેઓ અત્યંત અયોગ્ય જણાય, તો તેમનાપર અરક્તદ્વિષ્ટ રહી તેમની ઉપેક્ષા કરે. (૧૨૪)

ટીકાનો અર્થ.

કરૂણા એટલે પરાયા દુઃખ નિવારવાની બુદ્ધિ. જે માટે કહેલું છે કેઃ—

પરાયું હિત ચિંતવવું, તે મૈત્રિ ભાવના છે, પરાયાં દુઃખ નિવારવાં, તે કરૂણા ભાવના છે, પરને સુખી જોઇ સંતોષ પામવો, તે મુદિતા ભાવના છે, અને પરના દોષ જોઇ ઉવેખી મેળવવા, તે ઉપેક્ષા ભાવના છે.

तद्वशेन तद्रसिकतया नवरं केवलं रागदोषपरिहारेणानुशास्ति शिक्षयति तमपि स्वजनादिक—मपिशब्दात्तदितरमपि,—कृत्याह—शुद्धमार्गे यथावस्थित मोक्षाध्वविषये, तद्यथा—

किं नारकतिर्यङ्नर—विबुधगतिविचित्रयोनिभेदेषु ।
बत संसरन्न सततं—निर्विण्णो दुःखनिलयेषु ॥ १ ॥
येन प्रमादमुद्धत—माश्रित्य महाधिहेतुमस्खलंतं ।
संत्यज्य धर्मचित्तं—रतस्त्वमार्येतराचरणे ? ॥ २ ॥
यन्न प्रयांति जीवाः—स्वर्गं यच्च प्रयांति विनिपातं ।
तत्र निमित्तमनार्यः—प्रमाद इति निश्चितमिदं मे ॥ ३ ॥

किंच

केवलं रिपुरनादिमानयं—सर्वदैव सहचारितामितः ।
यः प्रमाद इति विश्रुतः परा—मस्य वित्तशठतामकुंठितां ॥ ४ ॥

તે કરૂણાના વશે કરીને એટલે તેમાં રસિક થઇને કેવળ એટલે રાગ દ્વેષ છોડીને ફક્ત કરૂણાથી તે સ્વજનાદિકને પણ અનુશાસિત કરે, એટલે શિક્ષણ આપે. અપિ શબ્દથી બીજાને પણ આપે. શી બાબતમાં તે કહે છે. શુદ્ધ માર્ગમાં એટલે કે મોક્ષ માર્ગની બાબતમાં. તે આ રીતે કેઃ—

શું તું નરક—તિર્યંચ—નર અને દેવગતિઓ અને વિચિત્ર યોનિઓ કે, જે દુઃખનીજ સ્થાનરૂપ છે, તેમાં નિરંતર ભમતો થકો હજુ થાકયો નથી ? કે જેથી પીડાના હેતુ ભારે એવા પ્રમાદને કંઇ પણ ખલલ કર્યા વગર વશવર્તિ રહીને ધર્મમાં દિલ નહિ આપતાં તું અનાર્ય આચરણમાં રકત બનેલો છે ? [૧–૨] જીવો જે સ્વર્ગે નથી જઇ શકતા, તથા જે નરકે જઇ પડે છે, ત્યાં ભુંડો પ્રમાદજ કારણભૂત છે, એમ મને પકકી ખાતરી છે. (૩)

વળી,

જે પ્રમાદ છે, તેજ કેવળ અનાદિ કાળનો દુશ્મન છે, અને તે સદાકાળ સાથેનો સાથે રહેતો આવેલો છે, માટે તમારે એની અતિ સખત લુચ્ચાઇને ઓળખવી જોઇએ. (૪)

यत् करोति विकथाः प्रेर्थावती—र्यत्खलेषु विषयेषु दृप्यति ।
सुप्तमत्त इव यद्विचेष्टते—यन्नवेत्ति गुणदोषयोर्भिदां ॥ ५ ॥
क्रुध्यति स्वहितदेशनेपि यत्—यच्च सीदति हितं विदन्नपि ।
लोक एष निखिलं दुरात्मन—स्तत्प्रमादकुरिपोर्विजृंभितं ॥ ६ ॥
इत्यवेत्य परिपोष्य पौरुषं—दुर्जयोपि रिपुरेष जीयतां ।
यत् सुखाय न भवंत्युपेक्षिता व्याधयश्चरिपवश्च जातुचित् ॥ ७ ॥

इत्यादिविविधवाचोर्युक्तिभिरुत्पादितसंवेगं तं शुद्धधर्मे प्रवर्तयति—प्रज्ञापनीयश्चेदसौ स्यात्.—अत्यंतायोग्यं बाढमप्रज्ञापनीयं पुनस्त मरक्तद्विष्टो रागद्वेषरहित उपेक्षते अवधीरय—" त्युपेक्षानिर्गुणेष्वि " ति वाक्यमनुसृत्येति गाथार्थः

गुणानुरागस्यैव फलमाह.

જે વિસ્તારીને વિકથા કરાય છે, જે ભુંડા વિષયોમાં ગૃદ્ધ થવાય છે, જે સૂતેલા તથા છકેલા માફક ચેષ્ટા કરાય છે, જે ગુણ અને દોષનો ભેદ જાણવામાં નથી આવતો, જે પોતાના હિતનો ઉપદેશ સાંભળતાં પણ ગુસ્સો લાગે છે, અને જે હિત સમજતાં છતાં છતાં, પણ કહી શકાતું નથી, તે બધું આ દુનિયામાં દુરાત્મા પ્રમાદરૂપ દુશ્મનનું વિજૃંભિત [તોફાન] છે. [૫–૬] એમ જાણીને હિમ્મત પકડી, એ દુર્જય દુશ્મનને જીતવો જોઇએ. કેમકે વ્યાધિઓ અને દુશ્મનોની જો કયારે પણ ઉપેક્ષા કરીએ, તો તે નુકસાન કર્યા વિના રહેતાં નથી. (૭) ઇત્યાદિ અનેક વચનોથી તેમને સંવેગ ઉપજાવીને શુદ્ધ ધર્મમાં પ્રવર્ત્તાવે, પણ એમ ત્યારે બને કે, જ્યારે તેઓ પ્રજ્ઞાપનીય હોય. આવી અત્યંત અયોગ્ય હોય તો, તેમનાપર રાગ દ્વેષ નહિ લાવતાં " નિર્ગુણોમાં ઉપેક્ષા કરવી " એ વાકયને અનુસરીને ઉપેક્ષા કરે. એ રીતે ગાથાનો અર્થ છે.

ગુણાનુરાગનુંજ ફળ કહી બતાવે છે.

॥ મુલ ॥

उत्तमगुणाणुराया—कालाइदोसओ अपत्तावि ।
गुणसंपया परत्थावि—न दुल्लहा होइ भव्वाणं ॥ १२५ ॥

(ટીકા)

उत्तमा उत्कृष्टागुणाज्ञानादयस्तेष्वनुरागः प्रीतिप्रकर्षस्तस्माद्धेतोः कालो दुःषमारूप आदिशब्दात् संहननादिपरिग्रहः त एव दोषा दूषणानि विघ्नकारित्वात्—ततोऽप्राप्ता—प्यास्तां तावत्प्राप्तेत्यपरर्थः—गुणसंपत् परिपूर्णधर्मसामग्री वर्त्तमानजन्मनीति गम्यते—परत्र भाविभवे—षिःसंभावनेसंभवात्च एत—न्नैवदुर्लभादुरापाभवति भव्यानां मुक्तिगमनयोग्यानामिति.

उक्तं गुणानुरागरूपं षष्ठं भावसाधोर्लिंगं. संप्रति गुर्वाज्ञाराधनरूपं सप्तमं लिंगमाह.

મૂળનો અર્થ.

ઉત્તમ ગુણોના અનુરાગથી કાળાદિકના દોષે કરીને કદિ આ ભવમાં ગુણસંપદા નહિ મળે, તો પણ પર ભવમાં ભવ્ય જીવોને દુર્લભ નહિ થાય. (૧૨૫)

ટીકાનો અર્થ.

ઉત્તમ એટલે ઉત્કૃષ્ટ ગુણો એટલે જ્ઞાનાદિક ગુણો તેમાં અનુરાગ એટલે પૂર્ણપ્રીત તેને લીધે કાળ એટલે દુઃષમાકાળ તથા આદિ શબ્દથી સંઘેણ વગેરે લેવાં. તે ૩૫ દોષ એટલે વિઘ્નકારક હોવાથી દૂષણો તેના યોગે વર્ત્તમાન જન્મમાં ગુણસંપત્ એટલે પરિપૂર્ણ ધર્મ સામગ્રી નહિ મળી હોય, તોપણ પરભવમાં તો તે ભવ્ય જનોને દુર્લભ નજ થાય, એમ ધારી શકાય છે.

આ રીતે ગુણાનુરાગરૂપ છઠું લિંગ કહ્યું, હવે ગુર્વાજ્ઞારાધનરૂપ સાતમું લિંગ કહે છે.

॥ मूलं ॥

गुरुपयसेवानिरओ—गुरुआणाराहणंमि तल्लित्थो ।
चरणभरधरणसत्तो—होइ जई नन्नहा नियमा ॥ १२६ ॥

अत्र कश्चिदाह.

पूर्वाश्चार्यैश्चारित्रिणो लिंगषटकमेवोक्तं—यदवाचि—

मग्गाणुसारि[१] सद्धो[२]—पन्नवणिज्जो[३] क्रियावरो चेव[४] ।
गुणरागी[५] सक्कारंभसंगओ[६] तहय चारित्ती ॥

तत्कुत्रेदं सप्तमं गुर्वाज्ञाराधनरूपं भावसाधोर्लिंगं भणितं ?

उच्यते—

चतुर्दशशतप्रकरणप्रासादसूत्रधारकल्पप्रभुश्रीहरिभद्रसूरीभिरुपदेशपद शास्त्रे भणितमेवेदमपि लिंगं. तथाचैतत्सूत्रं.

મૂળનો અર્થ.

ગુરૂના ચરણની સેવામાં લાગેલો રહી ગુરૂની આજ્ઞા આરાધવામાં તત્પર રહે, અને ચારિત્રનો ભાર ઉપાડવામાં સમર્થ હોય, તેજ યતિ જાણવો, અન્યથા નિયમા નહિ. [૧૨૬]

અહીં કોઇ શંકા કરે કે.

પૂર્વાચાર્યોએ ચારિત્રિયાનાં છ લિંગજ કહ્યાં છે, જે માટે કહેલું છે કે—

માર્ગાનુસારી હોય, શ્રદ્ધાવાન્ હોય, પ્રજ્ઞાપનીય હોય, ક્રિયામાં તત્પર રહેનાર હોય, ગુણરાગી હોય, અને શક્યારંભવાળો હોય, તે ચારિત્રી છે.

માટે આ સાતમું ગુર્વાજ્ઞારાધનરૂપ ભાવ સાધુનું લિંગ કયાં કહેલું છે ?

જવાબ.

ચૌદસો પ્રકરણરૂપ પ્રાસાદના સૂત્રધાર સમાન પ્રભુ શ્રી હરિભદ્રસૂરિએ ઉપદેશ પદ ગ્રંથમાં આ લિંગ પણ કહેલજ છે. જુઓ તેનું આ સૂત્ર છેઃ—

एयं च अत्थि लक्खण-मिमस्स नीसेस मेव धन्नस्स ।
तह गुरु आणा संपाडणं च गमगं इहं लिंगं ॥

इत्यलं विस्तरेण.—प्रकृतं सूत्रं व्याख्यानयन्नाह.

गुरवः षट्त्रिंशद्गुणयुक्तास्तथाहि—

देसकुलजाइरूवी—संघयणी धिइजुओ अणासंसी ।
अविकत्थणो अमाई—थिरपरिवाडी गहियवक्को ॥ १ ॥

जियपरिसो जियनिद्दो—मज्झत्थो देसकालभावन्नू ।
आसनलद्ध पइभो—नाणाविहदेसभासन्नू ॥ २ ॥

पंचविहे आयारे—जुत्तो सुत्तत्थ तदुभयविहिन्नू ।
आहरण हेउकारण—नयनिउणो गाहणाकुसलो ॥ ३ ॥

ससमयपरसमयविऊ—गंभीरो दित्तिमं सिवो सोमो ।
गुणसय कलिओ जुत्तो—पवयणसारं परिकहेउं ॥ ४ ॥

એ ભાગ્યશાળી ભાવ સાધુનાં એ બધાં લક્ષણ છે, અને વળી ગુરૂની આજ્ઞાનું સંપાદન કરવું, એ ઇહાં ગમક લિંગ છે.

આટલો ઉત્તર બસ છે. હવે પ્રકૃત સૂત્રની વ્યાખ્યા કરીએ છીએ. ગુરૂ છત્રીશ ગુણયુક્ત હોય છે. તે આ રીતે કે:—

દેશ, કુળ, જાતિ, અને રૂપવાન્, સંઘેણવાળો, ધીરજવાળો, અનાશંસી, અવિકત્થન, અમાયી, સ્થિરપરિપાટિવાળો, ગૃહીતવાક્ય, જિતપર્ષદ્, જિતનિદ્ર, મધ્યસ્થ, દેશકાળ અને ભાવનો જાણુ, આસન્નલબ્ધપ્રતિભ, નાનાવિધ દેશ ભાષાનો જાણુ, પાંચ પ્રકારના આચારમાં વળગેલો, સૂત્ર અર્થ અને તદુભયનો જાણુ, ઉદાહરણ—હેતુ— કારણ અને નય લાગુ પાડવામાં નિપુણ, ગ્રાહણા કરાવવામાં કુશળ, સ્વસમય પર સમયનો જાણુ, ગંભીર, દીપ્તિમાન્, શિવ અને સોમ એમ સેંકડો ગુણે કરીને જે યુક્ત હોય, તે પ્રવચનનો સાર કહેવાને યોગ્ય થાય છે. [૧-૨-૩-૪]

तत्र आर्यदेशोद्भूतः सुखावबोधवचनो भवति—ततो देशग्रहणं[१] कुलं पैतृकमिक्ष्वाकादि—तज्जातश्च यथोत्क्षिप्तभारवहने न श्राम्यति[२], जातिर्मातृकी—तत्संपन्नोहि विनयादिगुणवान् स्यात्[३], " यत्राकृतिस्तत्र गुणाभवंती "—ति रूपग्रहणं[४], संहननधृतियुतो न व्याख्यानादिषु खेदमेति[५-६], अनाशंसी श्रोतृभ्यो न वस्त्राद्याकांक्षति[७], अविकत्थनो हितमितभाषी[८], अमायी विश्वास्यः[९], स्थिरपरिपाटिः—स्थिरः परिचितग्रंथस्य सूत्रार्थगलनाभावात्[१०], ग्राह्यवाक्यः सर्वत्रास्खलिताज्ञः[११], मध्यस्थः शिष्येषु समचित्तः[१२], देशकालभावज्ञः सुखेनैव गुणवद्देशादौ विहरति[१३-१४-१५], आसन्नप्रतिभोद्रेके परवाद्युत्तरदानसमर्थः[१६], नानाविधदेशभाषाज्ञः नानादेशजान् शिष्यान् सुखेनैवावबोधयति[१७], ज्ञानाद्याचारपंचकयुक्तः श्रद्धेयवचनः स्यात्[१८-२२], सूत्रार्थतदुभयविधिज्ञः उत्स-

---

તે આર્ય દેશમાં થએલો હોય, તેની ભાષા સુખે સમજી શકાય છે, માટે દેશનું ગ્રહણ કર્યું ૧. કુળ તે પિતા સંબંધી ઇક્ષ્વાકાદિ વંશ, તેમાં જન્મેલો હોય, તે નાખેલા ભારને ઉપાડતાં થાકતો નથી ૨. જાતિ તે માતા સંબંધી જાણવી. જાતવંત હોય, તે વિનયાદિ ગુણવાળો હોય ૩. જ્યાં આકૃતિ હોય, ત્યાં ગુણો હોય છે, એ કહેવતને અનુસરી રૂપનું ગ્રહણ કર્યું છે ૪. સંઘેણ અને ધીરજવાળો વ્યાખ્યાન વગેરેમાં થાકે નહિ ૫-૬. અનાશંસી હોય, તે સાંભળનારાઓ પાસેથી વસ્ત્ર વગેરેની ઇચ્છા રાખે નહિ ૭. અવિકત્થન હોય, તે હિત મિતભાષી રહે છે ૮. અમાયી હોય, તે વિશ્વાસ કરવા યોગ્ય રહે છે ૯. સ્થિરપરિપાટિ એટલા માટે કહ્યો છે કે, સ્થિરપરિચિત ગ્રંથવાળાના સૂત્રાર્થ ગળી નહિ જાય ૧૦. ગ્રાહ્યવાક્ય હોવાથી બધાને આજ્ઞામાં ચલાવી શકે છે ૧૧. મધ્યસ્થ હોવાથી શિષ્યોપર સમચિત્ત રાખી શકે છે ૧૨. દેશકાળ ભાવનો જાણુ હોવાથી સુખે કરી ગુણવાળા દેશાદિકમાં વિચરી શકે છે ૧૩-૧૪-૧૫. તરત બુદ્ધિવાળો હોવાથી પરવાદિને ઉત્તર દેવા સમર્થ રહે છે ૧૬.

અનેક દેશની ભાષાઓનો જાણુ હોવાથી, અનેક દેશના શિષ્યોને સુખે સમજાવી શકે છે ૧૭. જ્ઞાનાદિક પાંચ આચારવાળો હોવાથી, તેનું વચન શ્રદ્ધા રાખવા યોગ્ય ગણાય

र्गापवादप्रपंचं यथावदाज्ञापयति२३-२५, आहरणं दृष्टांतः—हेतुरन्वयव्यतिरेकवान्—कारणं दृष्टांतादिरहितमुपपत्तिमात्रं—नया नैगमादय—एषु निपुणः सुखेनैतान् प्रयुंक्ते२६-२९, ग्राहणाकुशलः बहीभिर्युक्तिभिः शिष्यान् बोधयति३०, स्वसमयपरसमयज्ञः सुखेनैव तत्स्थापनाभ्यूहौ विधत्ते३१-३२, गंभीरो लब्धमध्यः३३ दीप्तिमान् पराधृष्यः३४, शिवहेतुत्वाच्छिव-स्तदधिष्ठिते देशेमार्याद्युपशमनात्३५, सौम्यः सर्वजनमनोनयनरमणीयः३६, गुण शतकलितः प्रश्रयाद्यनेकगुणोपेतो युक्तोर्हत्प्रवचनसारं परिकथयितुं प्रवचनानुयोगयोग्यो भवतीत्यर्थः

अथवा षट्त्रिंशद् गुणाः—

अट्ठविहा गणिसंपय-चउग्गुणा नवरि हुंति बत्तीसं ।
विणओ य चउब्भेयो-छत्तीस गुणा इमे तस्स ॥ १ ॥

છે ૧૮-૨૨. સૂત્ર અર્થ, અને તદુભયની વિધિનો જાણ હોવાથી, ઉત્સર્ગ તથા અપવાદની ભાંજગડને બરોબર જાણી શકે છે ૨૩-૨૫. આહરણ એટલે દૃષ્ટાંત-હેતુ એટલે અન્વય વ્યતિરેકિ સાધન, કારણ એટલે દૃષ્ટાંત વગરનું ફક્ત દલીલ માત્ર, અને નયો તે નૈગમાદિક નય, એ બધામાં કુશળ હોવાથી સુખે તેમને વાપરી શકે છે ૨૬-૨૯. ગ્રાહણા કુશળ હોવાથી ઘણી યુક્તિઓવડે શિષ્યોને બોધી શકે છે ૩૦. સ્વ સમય અને પર સમયનો જાણુ હોવાથી, સુખે કરી તેનું સ્થાપન અને તર્ક કરી શકે છે ૩૧-૩૨. ગંભીર હોવાથી તેનો ભરમ પમાતો નથી ૩૩. દીપ્તિમાન્ હોવાથી સામો કોઇ ટકી શકતો નથી ૩૪. શિવનો હેતુ હોવાથી શિવ ગણાય છે, કેમકે તેના અધિષ્ઠિત દેશમાં મરકી વગેરે દબાઇ જાય છે ૩૫. સૌમ્ય હોવાથી સૌ જનનાં મન અને આંખને રમણીય લાગે છે ૩૬. એમ સેંકડો ગુણો એટલે પ્રશ્રય [પ્રેમ] વગેરે અનેક ગુણોથી જે યુક્ત હોય, તે પ્રવચનનો સાર કહેવાને એટલે પ્રવચનનો અનુયોગ કરવાને યોગ્ય થાય છે.

અથવા છત્રીશ ગુણો આ રીતે છેઃ—આઠ પ્રકારની ગણિ સંપત્ તેને ચોગણા કરતાં બત્રીશ થાય, તેમાં ચાર પ્રકારનો વિનય ઉમેરતાં તેના છત્રીસ ગુણ થાય. ૧.

गणोगच्छोऽस्यास्तीतिगणी आचार्यस्तस्य संपत् समृद्धिः—साच अष्टविधा,—

आयार[१] सुय[२] सरीरे[३]—वयणे[४] वायण[५] मई[६]पओग मई[७],

एएसु संपयाखलु—अट्ठमिया संगहपरिन्ना[८].—

आचार[१]-श्रुत[२]-शरीर[३]-वचन[४]-वाचना[५]-मति[६]-प्रयोगमति[७]-संग्रहपरिज्ञा[८]-भेदादष्टधा—नवरं चतुर्गुणाश्चतुर्भिर्गुणिता भवंतिद्वात्रिंशत् सूरिगुणाः—

तत्रा चारोनुष्ठानं सएव संपत् सा चतुर्द्धा—तद्यथा—संयमध्रुवयोगयुक्तता चरणेनित्यं समाध्युपयुक्तेत्यर्थः,[१] असंप्रग्रह आत्मनोजात्याद्युत्सेकरूपाग्रहवर्जनं[२] अनियतवृत्तिरनियतविहारः,[३] वृद्धशीलतावपुर्मनसो निर्विकारता.[४]

एवं श्रुतसंपच्चतुर्द्धाः—बहुश्रुतता युगप्रधानागमतेत्यर्थः[१] परिचितसूत्रता उत्क्रमक्रमवाचनादिभिः स्थिरसूत्रता,[२] विचित्रसूत्रता स्वसमयादि-

---

ગણુ જેને હોય, તે ગણિ એટલે આચાર્ય, તેની સંપત્ એટલે સમૃદ્ધિ, તે આઠ પ્રકારની છેઃ—આચાર, શ્રુત, શરીર, વચન, વાચના, મતિ, પ્રયોગમતિ, એ સાત બાબતોમાં સંપત્, અને આઠમી સંગ્રહપરિજ્ઞા છે; એમ આચાર, શ્રુત, શરીર, વચન, વાચના, મતિ, પ્રયોગમતિ, અને સંગ્રહપરિજ્ઞા, એ ભેદોવડે આઠ પ્રકારની સંપદ્ છે. તેમને ચારે ગુણી એટલે બત્રીશ ગુણ થાય છે. ત્યાં આચાર એટલે અનુષ્ઠાન તે રૂપ સંપત્, તે ચાર પ્રકારની છેઃ—સંયમધ્રુવયોગયુક્તતા એટલે ચારિત્રમાં હમેશાં સમાધિના સાથે ઉપયોગ ૧. અસંપ્રગ્રહ એટલે પોતાના જાતિ વગેરેના ગર્વરૂપ આગ્રહનું વર્જન કરવું ૨. અનિયત વૃત્તિ એટલે અનિયત વિહાર ૩. અને વૃદ્ધ શીળતા એટલે શરીર અને મનનું નિર્વિકારિપણું ૪.

એ રીતે શ્રુત સંપત્ ચાર પ્રકારની છેઃ—બહુશ્રુતતા એટલે તે યુગમાં સૌ કરતાં પ્રધાન આગમનું જાણપણું ૧. પરિચિતસૂત્રતા એટલે ઉત્ક્રમ, અને ક્રમ વાચનાદિકથી સ્થિરસૂત્રતા ૨. સ્વસમયાદિ ભેદે કરીને વિચિત્રસૂત્રતા ૩. અને ઉદાત્ત વગેરે સ્વર વિજ્ઞાનથી ઘોષ વિશુદ્ધિકરણતા ૪.

भेदात्,[3] घोषविशुद्धिकरणता उदात्तादिविज्ञानात्.[४]

शरीरसंपच्चतुर्द्धाः—आरोहपरिणाहयुक्तता उचितदैर्घ्यादिविस्तरतेत्यर्थः,[१] अनवत्रप्यता अलज्जनीयांगता,[२] परिपूर्णेंद्रियता अनुपहतचक्षुरादिकरणता,[३] स्थिरसंहननता तपःप्रभृतिषु शक्तियुक्तता.[४]

वचनसंपच्चतुर्द्धाः—आदेयवचनता,[१] मधुरवचनता,[२] अनिश्रितवचनता मध्यस्थवचनतेत्यर्थः[३] असंदिग्धवचनता.[४]

वाचनासंपच्चतुर्द्धाः—विदित्वोद्देशनं परिणामकादिकं शिष्यंज्ञात्वेत्यर्थः[१] विदित्वा समुद्देशनं,[२] परिनिर्वाप्यवाचना—पूर्वदत्तालापकान् शिष्यमधिगम्य पुनः सूत्रदानं,[३] अर्थनिर्वापणा—अर्थस्य पूर्वापरसांगत्येन गमनिका.[४]

मतिसंपच्चतुर्द्धाः—अवग्रहे[१]-हा[२]-वाय[३]-धारणा[४] भेदात्.

प्रयोगमतिसंपच्चतुर्द्धाः—इह प्रयोगो वादमुद्रा—तत्रात्मपरिज्ञानवादा-

---

શરીર સંપત્ ચાર પ્રકારની છેઃ— આરોહપરિણાહયુક્તતા એટલે ઉચિત ઉંચાઇ વગેરે વિસ્તાર ૧. અનવત્રપ્યતા એટલે અળજ્જનીય શરીર ૨. પરિપૂર્ણેંદ્રિયતા એટલે આંખો વગેરેની ખોડ ન હોય તે ૩. અને સ્થિર સંહનનતા એટલે તપ વગેરે કરવામાં સમર્થ સંઘેણ ૪.

વચન સંપત્ના ચાર પ્રકાર આ રીતે છેઃ—આદેય વચનતા, મધુર વચનતા, અનિશ્રિત વચનતા એટલે મધ્યસ્થ વચનતા, અને અસંદિગ્ધ વચનતા.

વાચના સંપત્ના ચાર પ્રકાર આ છેઃ—ઉદ્દેશવું જાણીને એટલે કે શિષ્ય પરિણામક છે કે કેમ ? તે વગેરે સમજીને ઉદ્દેશ કરવો ૧. જાણીને નિર્દેશવું ૨. પરિનિર્વાપણ કરીને વાચના દેવી એટલે કે પૂર્વે દીધેલા આલાવાઓ શિષ્યને પાકા કરાવીને પછી બીજું સૂત્ર આપવું ૩. અર્થ નિર્વાપણા એટલે અર્થને પૂર્વાપર મળે, તેમ બેસાડવું ૪.

મતિ સંપત્ના ચાર પ્રકાર આ છેઃ—અવગ્રહ, ઇહા, અવાય અને ધારણા.

પ્રયોગ મતિ સંપત્ના ચાર પ્રકાર આ છેઃ—ઇહાં પ્રયોગ એટલે વાદની મુદ્રા

दिसामर्थ्यविषये,[१] पुरुषपरिज्ञानं-किमयं वादी सांख्यो बौद्धोवेत्यादि,[२] क्षेत्रपरिज्ञानं-किमिदं मायाबहुलमन्यथा वा-साधुभावितमभावितं वेति[३] वस्तुज्ञानं किमिदं राजामात्यसभ्यादि भद्रकमभद्रकं वा.[४]

संग्रहः स्वीकरणं तत्र परिज्ञानमष्टमी संपत्-साच्चतुर्द्धा-तथाहि-पीठफलकादि विषया,[१] बालादियोग्यक्षेत्रविषया,[२] यथासमयं स्वाध्यायादिविषया[३] यथोचितविनयादिविषयाचेति.[४]

तथा विनयश्चतुर्भेदः

आयारे[१] सुयविणये[२]-विक्खिवणेच्चेव होइ बोद्धवे,[३]

दोसस्स य निग्घाए-विणए चउहे स पडिवत्ती.

तत्राचारविनयः संयमतपोगणैककविहारविषयचतुर्विधसामाचारीस्वरूपः,[१]

[ખટપટ] જાણવી. ત્યાં આત્મ પરિજ્ઞાન એટલે પોતામાં વાદ વગેરે કરવાનું કેવું સામર્થ્ય છે, તે સમજવું ૧. પુરૂષ પરિજ્ઞાન એટલે સામો વાદી સાંખ્ય છે, કે બૌધ છે, વગેરે ઓળખવું ૨. ક્ષેત્ર પરિજ્ઞાન તે આ સ્થળ માયા પ્રધાન છે, કે સરલ છે, અથવા સાધુ ભાવિત છે, કે અભાવિત છે, તે જાણવું ૩. અને વસ્તુ જ્ઞાન તે આ રાજા અમાત્ય કે સભ્યો ભદ્રક છે, કે અભદ્રક છે, તે જાણવું ૪.

સંગ્રહ એટલે સ્વીકારવું, તે સંબંધી પરિજ્ઞાન તે આઠમી સંપત્ જાણવી. તેના ચાર પ્રકાર આ રીતે છેઃ—પીઠ ફળકાદિક સંબંધી ૧. બાળાદિ યોગ્ય ક્ષેત્ર સંબંધી ૨. સમયસર સ્વાધ્યાય સંબંધી ૩. અને યથોચિત વિનય વગેરે સંબંધી ૪. (સ્વીકાર કરવાની સમજ.)

તથા વિનયના ચાર ભેદ છે.—આચાર વિનય, શ્રુત વિનય, વિક્ષેપણ વિનય, અને દોષનિર્ઘાત વિનય, એમ વિનયમાં ચાર પ્રકારની પ્રતિપત્તિઓ છે. ત્યાં આચાર વિનય તે સંયમ, તપ, ગણ, અને એકક વિહાર સંબંધી ચાર પ્રકારની સામાચારીરૂપે છે.

ત્યાં પૃથ્વીકાય રક્ષા વગેરે સત્તર પદોમાં પોતે કરવું, બીજા પાસે કરાવવું, સીદતાને સ્થિર કરવું, અને યતમાનને ઉત્તેજન આપવું, એ સંયમ સામાચારી છે. ૧.

तत्र पृथ्वीकायरक्षादिसप्तदशपदेषु स्वयंकरणान्यकारणसीदत्स्थिरीकरणयतमानोपबृंहणात्मिका संयमसामाचारी.[१]

पाक्षिकादिषुचतुर्थादितपसि स्वपरयोर्व्यापारणरूपा तपःसामाचारी,[२] प्रत्युपेक्षणादिषु बालग्लानादिवैयावृत्त्यादिषु विषीदद्गणप्रवर्त्तनस्वयमुद्यमनस्वभावा गणसामाचारी,[३] एकाकिविहारप्रतिमायाः स्वयमंगीकरणान्यांगीकारणलक्षणैकाकिविहारसामाचारी[४]

श्रुतविनयश्चतुर्द्धाः–सूत्रग्राहणा,[१] अर्थश्रावणा,[२] हित-निःशेषवाचनात्मकः–हितं योग्यतानुसारेण वाचयते[३]–निःशेषमापरिसमाप्तेः[४]

विक्षेपणाविनयश्चतुर्द्धाः–मिथ्यात्वविक्षेपणान्मिथ्यादृष्टेः स्वसमये स्थापनं,[१] सम्यग्दृष्टेस्त्वारंभविक्षेपणाच्चारित्राध्यासनं,[२] च्युतधर्मस्यधर्मेस्थापनं,[३] प्रतिपन्नचारित्रस्य परस्यात्मनो वा नेषणीयादिनिवारणेन हितार्थमभ्युत्थानमितिलक्षणः[४]

પાખી વગેરેમાં ચોથ વગેરે તપ કરવામાં સ્વપરને પ્રવર્ત્તાવવું તે તપ સમાચારી ૨. *બાળગ્લાનાદિકના વૈયાવચ્ચ વગેરેમાં ધીમા પડતા ગચ્છને પ્રવર્ત્તાવવું, તથા* પોતે પણ ઉજમાલ થવું, તે ગણસામાચારી ૩. એકાકિ વિહારની પ્રતિમા પોતે અંગીકાર કરવી, તથા બીજાને અંગીકાર કરાવવી, તે એકાકિ વિહાર સામાચારી ૪.

શ્રુત વિનયના ચાર પ્રકાર આ રીતે છેઃ—સૂત્ર ગ્રાહણા ૧. અર્થ શ્રાવણા ૨. હિત વાચના એટલે કે યોગ્યતાના અનુસારે વંચાવવું ૩. અને નિઃશેષ વાચના એટલે પરિપૂર્ણ વંચાવવું. ૪.

વિક્ષેપણા વિનયના ચાર પ્રકાર આ રીતે છેઃ—મિથ્યાત્વનું વિક્ષેપણ કરી, મિથ્યાદૃષ્ટિને સ્વમતમાં લાવવું ૧. આરંભનું વિક્ષેપણ કરીને, સમ્યક્ દૃષ્ટિને ચારિત્રમાં ચડાવવું ૨. ધર્મથી પડેલાને ધર્મમાં સ્થાપવું ૩. અને જેણે ચારિત્ર અંગીકાર કર્યું હોય એવા પોતાને કે પરને અનેષણીયાદિકથી નિવારી હિતાર્થમાં ચડાવવું ૪.

तथा दोषनिर्घातविनयोपि चतुर्भेदः,—क्रुद्धस्य क्रोधापनयनं[1] दुष्टस्य विषयदोषवतो दोषापनयनं[2], कांक्षितस्य परसमयादिकांक्षावतः कांक्षाच्छेदः[3], स्वतश्चोक्तदोषविरहादात्मप्रणिधानमितिस्वरूपः[4].

एवमात्मानं परं च विनयतीति विनय इति दिग्मात्रमिदं—विशेषतस्तु व्यवहारादवसेयं. इमे मिलिताः षट्त्रिंशद् गुणास्तस्य गणिनो भवंति.

तृतीयात्वियं—

वय छक्काई अट्ठारसेव—आयारमाइ अट्ठेव ।
पायच्छित्तं दसहा—सूरिगुणा हुंति छत्तीसं ॥ १ ॥

व्रतषट्कं कायषट्कं च प्रतीतं. अकल्पादिषट्कं त्वेवं:—

अकल्पो द्विधाः—शिक्षकस्थापनाकल्पोऽकल्पस्थापनाकल्पश्च.

तत्राद्यः,—

વળી દોષ નિર્ઘાત વિનયના પણ ચાર ભેદ છે. તે આ રીતે છે. ક્રોધે ચડેલાનો ક્રોધ ઉતારવો ૧, દુષ્ટ એટલે વિષયથી દૂષાયલાનો દોષ દૂર કરાવવો ૨, પર સમયમાં કાંક્ષા ધરનારની કાંક્ષા છેદવી ૩, તથા પોતે ક્રોધ—દોષ—કાંક્ષા ટાળીને આત્મધ્યાનમાં રહેવું ૪.

આ રીતે પોતાને તથા પરને જે સુધારે, તે વિનય છે. આ રીતે અહીં દિગ્માત્ર જણાવ્યું છે. વિશેષથી જાણવું હોય, તો વ્યવહાર સૂત્રની ટીકાથી જાણી લેવું, એમ સઘળા મળીને ગણિના છત્રીશ ગુણ થાય છે.

ત્રીજી [યોજના] આ છે.

વ્રત ષટ્ક, કાય ષટ્ક અને અકલ્પ ષટ્ક મળીને અઢાર તથા આચારવાળાપણું વગેરે આઠ અને દશ પ્રકારનું પ્રાયશ્ચિત, એમ આચાર્યના છત્રીશ ગુણ થાય છે. (૧)

વ્રત ષટ્ક અને કાય ષટ્ક પાછળ છે. અકલ્પાદિ ષટ્ક આ પ્રમાણે છે:—

અકલ્પ બે પ્રકારનો:—શિક્ષક સ્થાપના કલ્પ અને અકલ્પ સ્થાપના કલ્પ.

अणहीया खलु जेणं–पिंडेसण सिज्जवत्थपाएसा ।
तेणा णियाणि जइणो–कप्पंति न पिंडमाईणि ॥

तथा

उउबद्धंमि न अनला–वासावासासु दोवि नो सेहा ।
दिक्खिज्जंति पायं–ठवणाकप्पो इमो होइ ॥

द्वितीयोनेषणीयपिंडशय्यावस्त्रपात्रगोचरोऽकल्पः१, गृहीभाजनं कांस्यकरोटिकादि२, पर्यंकोमंचकादावुपवेशनं३, निषद्या भिक्षार्थं गृहे प्रविष्टस्य साधोस्तत्र निषदनं४, स्नानं द्विधा;—अक्षिपक्ष्मप्रक्षालनमात्रमपि देशस्नानं–सर्वांगप्रक्षालनं तु सर्वस्नानं५ शोभा विभूषाकरणं६,—एषां वर्जन–मेवमष्टादश. एषां चा चार्यगुणत्वमेतदपराधेषु सम्यक्प्रायश्चितज्ञानात्.

आचारवत्त्वादयोष्टौ गुणाः पूर्ववत्.

तथा प्रायश्चित्तं दशधा, तद्यथा—

ત્યાં પહેલો તે એ કે—

જે શિષ્ય પિંડેષણા, શય્યેષણા, વસ્ત્રૈષણા, અને પાત્રૈષણા એ ચાર અધ્યયન શીખ્યો ન હોય, તે ચેલાએ આણેલા આહાર વગેરે બીજા યતિઓને વાપરવા ન કલ્પે.

વળી,

ઋતુબદ્ધ કાળમાં અસમર્થને દિક્ષા નહિ આપવી. વર્ષાકાળમાં પ્રાયે કરી બે શિષ્યો નહિ મુંડવા, આનું નામ શિક્ષક સ્થાપના કલ્પ છે.

બીજો અકલ્પ સ્થાપના કલ્પ તે અનેષણીય પિંડ—શય્યા—વસ્ત્ર—પાત્ર સંબંધી અકલ્પ જાણવો ૧. ગૃહિભાજન તે કાંસાની કટોરી વગેરે ૨. પર્યંક તે માંચા વગેરે પર બેસવું ૩. નિષદ્યા એટલે ભિક્ષાર્થે કોઇના ઘેર જતાં, ત્યાં બેસવું તે ૪. સ્નાન બે પ્રકારે છેઃ—આંખનું પાંપણ પખાળવું, તે પણ દેશ સ્નાન ગણાય છે, અને બધાં અંગ પખાળવાં, તે સર્વ સ્નાન છે ૫. શોભા એટલે વિભૂષા કરવી ૬. એ છએનું વર્જન કરવું, એમ અઢાર સ્થળ થયાં, તે આચાર્યના ગુણ એટલા માટે ગણવા કે, એમના અપરાધમાં તેઓ સમ્યક્ પ્રાયશ્ચિત જાણે છે.

आलोयण[1] पडिकमणे[2]–मीस[3] विवेगे[4] तहा विउस्सग्गे[5] ।
तव[6]–छेय[7]–मूल[8]–अणवट्ठाय[9]–पारंचिए[10] चेव ॥

निरतिचारस्यासन्नगृहानीतस्य भिक्षादेः प्रकटनमालोचनार्हं[1], अनाभोगादिना प्रमार्जितनिष्ठीवनादावसंपन्नवधस्य मिथ्यादुःकृतदानं प्रतिक्रमणार्हं[2], संभ्रमभयादौ सर्वव्रतातिचारे आलोचनाप्रतिक्रमणरूपमुभयार्हं[3], उपयुक्ततया गृहीतान्नादेः पश्चाज्जातस्याशुद्धस्य त्यागो विवेकार्हं[4], गमनागमनविहारादिषु पंचविंशत्युच्छ्वासादिचिंतनं व्युत्सर्गार्हं[5], यस्मिन् प्रतिसेविते निर्विकृतिकादि षण्मासांतं तपो दीयते तत्तपार्हं[6], एवं यत्र पंचकादिपर्यायोच्छेदनं तच्छेदार्हं[7], यत्र पुनर्व्रतान्यारोप्यंते तन्मूलार्हं[8], यत्र पुनरनाचीर्णतया व्रतेषु न स्थाप्यते तदनवस्थाप्यार्हं[9], यत्र च तपोलिंगक्षेत्रकालानां पारमंचाति तत् पारांचितमिति.[10]

एते व्रतषट्कायादयश्च मिलिताः षट्त्रिंशत् सूरिगुणा भवंतीति.

આચારવાળાપણું વગેરે આઠ ગુણ પૂર્વ માફક છે. દશ પ્રકારનું પ્રાયશ્ચિત આ છેઃ- આલોચના ૧, પ્રતિક્રમણ ૨, મિશ્ર ૩, વિવેક ૪, કાયોત્સર્ગ ૫, તપ ૬, છેદ ૭, મૂળ ૮, અનવસ્થાપ્યના ૯, અને પારાંચિત ૧૦.

નજીકના ઘરોથી આણેલ નિર્દોષ ભિક્ષા વગેરે ગુરૂને બતાવવી, તે આલોચનાર્હ પ્રાયશ્ચિત છે ૧. અજાણપણે પ્રમાર્જના કરતાં કે, થુંકતાં કદાચ જીવનો વધ નહિ પણ થયો હોય, છતાં મિચ્છામિ દુક્કડ લેવું, તે પ્રતિક્રમણાર્હ છે ૨. સંભ્રમ અને ભય વગેરેમાં સર્વ વ્રતોમાં અતિચાર લાગતાં આલોચના પ્રતિક્રમણરૂપ ઉભયાર્હ છે ૩. ઉપયોગપૂર્વક લીધેલું અન્નાદિક પાછળથી અશુદ્ધ થતાં પરઠવી આવવું. તે વિવેકાર્હ છે ૪. ગમનાગમન અને વિહાર વગેરેમાં પચીશ ઉસાસાનો કાયોત્સર્ગ કરવો, તે વ્યુત્સર્ગાર્હ છે ૫. જે સેવતાં નીવીથી માંડીને છમાસી સુધીનું તપ અપાય, તે તપાર્હ છે ૬. એ રીતે જ્યાં પંચકાદિ પર્યાય કપાય, તે છેદાર્હ છે ૭. જ્યાં નવેસર વ્રત આરોપાય, તે મૂલાર્હ છે ૮. જ્યાં અમુક કામ અનાચીર્ણ હોય, ત્યાં સુધી વ્રતોમાં નહિ સ્થપાય, તે અનવસ્થાપ્યાર્હ છે ૯. અને જ્યાં તપ, લિંગ, ક્ષેત્ર, અને કાળનો છેડો આવી રહે, તે પારાંચિત છે ૧૦.

एवं च गुणसमन्विता गुरवस्तेषां सेवा सम्यगाराधनं–न पुनरासन्नवर्त्तित्वमात्रं–तस्यां निश्चयेनरतोनिरतो नहि निष्ठुरोक्तिभिर्निर्भर्त्सितोपि गुरुं जि [ग्रं० ९०००] हासति,—केवलं गुरुषु बहुमानमेव विधत्ते, यथा–

धन्यस्योपरिनिपत–त्यहितसमाचरणघर्मनिर्वापी ।
गुरुवदनमलयनिसृतो–वचनरसश्चंदनस्पर्शः ॥

तथा

लज्जा दया संजमबंभचेरं–कल्लाण भागिस्स विसोहिठाणं ।
जे मे गुरूसययं अणुसासयंति–ते हं गुरू सययं पूययामि (इत्यादि)

तथा गुर्वाज्ञाराधने गुर्वादेशसंपादने तल्लिप्सुस्तमेवादेशं लब्धुमिच्छुर्गुरोरादेशं प्रतीक्षमाणः समीपवर्त्त्येव स्यात्. इत्थंभूतश्चरणभरधरणे चारित्रभरोद्वहने शक्तः समर्थो भवति सुविहितो–नान्यथा भणितविपरीतो–नियमान्निश्चयेनेति.

એ વ્રત ષટકાદિ કરતાં છત્રીશ સૂરિગણ થાય છે. એ રીતે ગુણવાળા ગુરૂઓ ચરણની સેવા એટલે બરોબર આરાધના, નહિ કે ફક્ત નજીકમાંજ રહેવું, તેમાં તત્પર રહીને નિષ્ઠુર વચનોથી નિર્ભત્સિત થાય, તો પણ ગુરૂને મૂકવા ઇચ્છે નહિ—કિંતુ ગુરૂમાં બહુ માનજ રાખે. જેમકેઃ—(ગ્રંથાગ્રંથ ૯૦૦૦)

અહિત આચરણરૂપ ધામને ટાળનાર ગુરૂના મુખરૂપ મલયાચળમાંથી નીકળેલો વચન રસરૂપ ચંદનનો સ્પર્શ ભાગ્યશાળીના ઉપરજ પડે છે.

વળી જે ગુરૂ મને હમેશાં લાજ, દયા, સંયમ, બ્રહ્મચર્ય તથા કલ્યાણભાગિ જનને મળતાં પ્રાયશ્ચિતની શીખામણો આપે છે, તે ગુરૂને હું વારંવાર પૂજું છું. ઇત્યાદિ.

વળી ગુરૂની આજ્ઞા આરાધવામાં એટલે ગુરૂનો આ દેશ બજાવવામાં તલ્લિપ્સુ એટલે તે આદેશનેજ મેળવવા ઇચ્છનાર હોય, અર્થાત્ ગુરૂના હુકમની રાહ જોતો પાસેજ ઉભો રહે, એવો જે હોય, તે સુવિહિત પુરૂષ ચારિત્રનો ભાર ઉપાડવા સમર્થ થાય, એથી વિપરીત હોય, તે નિશ્ચયપૂર્વક નહિ થાય.

कथं पुनरेष निश्चयोवसीयत इत्याह.

॥ मूलं ॥

सव्वगुण मूल मुओ–भणिओ आयारपढमसुत्ते जं ।
गुरूकुलवासो वस्सं–वसिज्ज तो तत्थ चरणत्थी ॥ १२७ ॥

(टीका)

सर्वे गुणा अष्टादशशीलांगसहस्त्ररूपा—स्तदानयनोपायश्चैवं.

जोए[1] करणे[2] सन्ना[3]–इंदिय[4] भोमाइ[5] समणधम्मे य[6] ।
सीलंगसहस्साण—अट्ठारसगस्स निप्पत्ती ॥

॥ स्थापना चेयं ॥

એવો નિશ્ચય શા પરથી જણાય છે, તે કહે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

આચારાંગના પહેલાજ સૂત્રમાં ગુરૂ કુળવાસ સર્વ ગુણોનું મૂળભૂત જણાવેલ છે, માટે ચારિત્રાર્થી પુરૂષે અવશ્ય ગુરૂ કુળવાસમાં વસવું. [૧૨૭]

ટીકાનો અર્થ.

સર્વે ગુણો તે અઢાર હજાર શીલાંગ રથરૂપ જાણવા, તેની ગણત્રી કરવાનો ઉપાય આ રીતે છેઃ—

યોગ, કરણ, સંજ્ઞા ઇંદ્રિય, પૃથ્વ્યાદિક, તથા શ્રમણ ધર્મ એ પદોથી અઢાર હજાર શીલાંગ નીપજાવી શકાય છે. તેની સ્થાપના આરીતે છે.

शीलांग रथ.

જોનો કરંતિ ૬૦૦૦	જોનો કરેતિ ૬૦૦૦	જોનણુમન્નઇ ૬૦૦૦
મણુસા ૨૦૦૦	વયસા ૨૦૦૦	તણુસા ૨૦૦૦

નિજ્જિજ્ય આહાર સન્નિ ૫૦૦	નિજ્જિજ્ય ભય સન્નિ ૫૦૦	નિજ્જિજ્ય મેહુણ્ણ સન્નિ ૫૦૦	નિજ્જિય પરિગ્રહ સન્નિ ૫૦૦

સોયંદી ૧૦૦	ચક્ખિંદી ૧૦૦	ઘાણિંદી ૧૦૦	જિબ્ભંદી ૧૦૦	ફાસિંદી ૧૦૦

પુઢવીકાયા રંભ ૧૦	આઉક્કાયા-રંભ ૧૦	તેઉકાયારંભ ૧૦	વાઉકાયા-રંભ ૧૦	વણુસઇ-કાયારંભ ૧૦	બેઇંદિયઆ ૧૦	તેઇંદિયઆ ૧૦	ચઉરિંદિયઆ ૧૦	પંચેંદિયઆ ૧૦	સજ્જવકી યારંભ ૧૦
ખંતિજુયાતે મુણીવંદે ૧	સમદ્દવા તે મુણીવંદે ૨	સઅજ્જવાતે મુણીવંદે ૩	મુત્તિજુયાતે મુણીવંદે ૪	તવજુત્તાતે મુણીવંદે ૫	સંસયમાતે મુણીવંદે ૬	સચ્ચજુયાતે મુણીવંદે ૭	સોયજુયાતે મુણીવંદે ૮	અકિંચણાતે મુણીવંદે ૯	બંભુયાતે મુણીવંદે. ૧૦

तेषां मूलभूतः प्रथमकारणं भणित उक्तः—आचारः प्रथममंगं—तस्य प्रथमसूत्रे;— " सुयं मे आउसंतेणं भगवया एव मक्खाय " मितिवचनरचना प्रकारे यद्यस्मात् गुरुकुलवासो गुरुपादपच्छायासेवन,—मयमत्रभावार्थः—श्रीसुधर्मस्वामी जंबूस्वामिने कथयतिस्म " श्रुतं मया वसता भगवतः सर्मीपेतिष्ठता वक्ष्यमाणमर्थपद " मिति—कः पुनरस्य भावार्थः—सर्वेण धर्मार्थिना गुरुसेवा विधेयेति यस्मादेवं तस्मादृषेत्तिष्टेत्तत्र गुरुकुले चरणार्थी चारित्रकामी. तथाच गच्छे वसतो गुणः

गुरुपरिवारो गच्छो–तत्थ वसंताण निज्जरा विउला ।
विणयाउ तहा सारण–माईहि न दोसपडिवत्ती ॥
जइविहु निग्गयभावो–तहावि रक्खिज्जई स अन्नेहिं ।
वंसकडिल्ले छिन्नोवि–वेणुओ पावए न महिं—[ति] ॥.

नन्वागमेयतेराहारशुद्धिरेव मुख्यश्चारित्रशुद्धिहेतुरुद्घुष्यते, यदुक्तं—

તે ગુણોનું મૂળભૂત એટલે પ્રથમ કારણ ગુરૂ કુળ વાસ છે, એમ આચારાંગના પહેલાં સૂત્રમાં એટલે " सुयं मे आउसंतेणं भगवया एव मक्खायं " એ વાક્યમાં કહેલું છે. ઇહાં ભાવાર્થ આ છે કે, શ્રીસુધર્મસ્વામી જંબૂસ્વામીને કહેતા હતા કે, " ભગવાનની પાસે વસતા થકા મેં આગળ કહેવામાં આવનારી વાત સાંભળી "—આમ કહેવાનો ભાવાર્થ એ છે કે, સર્વે ધર્માર્થીઓએ ગુરૂસેવા કરવી. જે માટે આમ છે, તે માટે ચારિત્રના ઇચ્છનાર પુરૂષે ગચ્છમાં વસવું. જે માટે ગચ્છમાં વસતાં આ રીતે ગુણો થાય છે.

ગુરૂનો પરિવાર તે ગચ્છ કહેવાય છે. ત્યાં વસતાં થકાં ઘણી નિર્જરા કરી શકાય છે, તથા સારણા વગેરેના લીધે વિનય સચવાયાથી દોષનો સ્વીકાર થતો નથી.

જો કે કોઇનો ભાવ જતો રહ્યો હોય, તોપણ તેને બીજા બચાવી રાખે છે. દાખલા તરીકે વાંસના ઝુંડમાં રહેલો કાપેલો વાંસ પણ જમીનપર પડી જતો નથી.

पिंडं असोहयंता–अचरित्ती इत्थ संसओ नत्थि ।
चारित्तंपि असंते–सव्वा दिक्खा निरत्थिया ॥ १ ॥

तथा

जिणसासणस्स मूलं–भिक्खायरिया जिणेहि पन्नत्ता ।
इत्थ परितप्पमाणं–तं जाणसु मंदसद्धीयं ॥ २ ॥

पिंडविशुद्धिश्च बहूनां मध्ये वसतां दुःकरैव प्रतिभासते—इत्येकाकिनापि भूत्वासैव विधेया, किं ज्ञानादिलाभेन कार्यं ? मूलभूतं चारित्रमेव पालनीयं–मूलेरात्येव लाभचिंता जयायसीति.

मैवंवोचः

यतोहंत गुरुपारतंत्र्यवर्जितत्वात् द्वितीयसाध्वपेक्षाभावाल्लोभस्याति दुर्जयतरत्वात् क्षणे क्षणे परिवर्त्तमानपरिणामेनैकाकिना पिंडविशुद्धिरेव नपालयितुं शक्यते, तथाचोक्तं—

[પૂર્વ પક્ષ.]

કોઇ પૂછશે કે, આગમમાં તો યતિને આહાર શુદ્ધિ રાખવી, એજ તેના ચારિત્રની શુદ્ધિનો હેતુ કહેલ છે. જે માટે કહેલું છે કે, પિંડનો શુદ્ધિ ન સાચવે, તે અચારિત્રીઓ છે, એમાં લગારે શક નથી; અને ચારિત્ર ગયું, તો સઘળી દીક્ષા નિરર્થક છે ૧. વળી જિનોએ જિનશાસનનું મૂળ ભિક્ષાચર્યાજ વર્ણવ્યું છે; માટે એમાં જે અકળાય, તેને મંદ શ્રદ્ધાવાન્ જાણવો ૨.

હવે પિંડ વિશુદ્ધિ તો ઝાઝાઓમાં વસતાં મુશ્કેલીએજ સચવાય. માટે એકલા રહીને તેજ સાચવવી જોઇએ જ્ઞાનાદિક મેળવવાનું શું કામ છે ? મૂળભૂત ચારિત્રજ પાળવું. મૂળ હોય તોજ લાભની ચિંતા વધારાની છે.

ઉત્તર.

એમ ના બોલો. જે માટે એકલો પ્રરનાર ગુરૂને પરતંત્ર હોય નહિ, તેમ બીજા સાધુની અપેક્ષા પણ તેને હોય નહિ, અને લોભ તો અતિ દુર્જય છે, તેથી ક્ષણે ક્ષણે બદલતા પરિણામવાળા એકલા ફરનારથી પિંડ વિશુદ્ધિજ પાળી ન શકાય.

एगागियस्स दोसा–इत्थी साणे तहेव पडिणीए,
भिक्खविसोहिमहव्वय–तम्हा सबिइज्जए गमणं.
तथा–" पिल्लिज्जे सण भिक्खो "–इत्यादि.
तत स्तद्भावे कथं मूलभूतं चारित्रमेव पालनीय मित्याद्युक्तं ? अथ कश्चिद् गाढदार्ढ्याशयः शुद्धोंच्छादिनापि निर्वाहयेदात्मानं सोपि–

सव्वजिणप्पडिकुट्ठं–अणवत्था थेरकप्पभेओ य,
एगो य सुयाउत्तो–विहणइ तवसंजमं अइरा.—

इति वचनात्तिभुवनभर्तुराज्ञाविराधकत्वान्न सुंदरतामास्कंदति. तथा चाह सूत्रकारः—

[मूलं]

एयस्स परिच्चाया–सुद्धंुच्छाइवि न सुंदरं भणियं।
कंमाइवि परिसुद्धं–गुरुआणावत्तिणो बिंति ॥ १२८ ॥

જે માટે કહેલું છે કે, એકાકિને અનેક દોષ લાગે છેઃ—સ્ત્રી ફસાવે, કૂતરા કરડે, દુશ્મન મારે, ભિક્ષાની વિશુદ્ધિ નહિ થાય, મહાવ્રત ભંગાય; માટે બીજા સાથે કરવું.

વળી કહ્યું છે કે, એકલો ફરનાર એષણાને તોડે છે, ઇત્યાદિ.

જ્યારે આમ છે, ત્યારે તમે કહ્યું કે, મૂળભૂત ચારિત્રજ પાળવું, એમ કેમ કહી શકાય ? છતાં કદાચ કોઇ દૃઢ મનવાળો પુરૂષ એકલો રહી, શુદ્ધ આહારથી પણ પોતાનો નિર્વાહ કરી શકે, તોપણ તે સર્વે જિનોએ એકાકિ વિહાર નિષેધ્યો છે. તે કરતાં અનવસ્થા થાય, અને સ્થવિર કલ્પમાં ભંગાણ પડે. વળી એકલો હોવાથી શ્રુતમાં ઉપયોગ રાખી વર્ત્તે, તો ઝટ તપ સંયમને ખગાડે. આ વચનથી એકાકિ વિહાર કરનાર તીર્થંકર આજ્ઞાનો વિરાધક ગણાવાથી સારો નહિ કહેવાય. એજ વાત સૂત્રકાર કહે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

એનો પરિત્યાગ કરી શુદ્ધ ભિક્ષા વગેરે કરે, તોપણ તે સારી નથી કહેલી, અને ગુરૂની આજ્ઞામાં રહેનારને કદિ આધાકર્મિ મળે, તોપણ તે પરિશુદ્ધજ કહેવાય છે. (૧૨૮)

[ટીકા]

एतस्य गुरुकुलवासस्य परित्यागात्सर्वतोमोचनेन शुद्धोंछादि शुद्ध-भैक्षप्रमुख-मादिशब्दात् शुद्धोपाश्रयवस्त्रपात्रादिपरिग्रहः-न सुंदरं शोभनं भणितं निगदितमागमज्ञैरित्युपस्कारः तथाच तदुक्तिः—

सुध्धुंच्छाइसु जत्तो-गुरुकुलचागाइणे ह विन्नेओ।
सबरससरक्खपिच्छत्थ-घायपायाछिवणतुल्लो ॥

अस्याव्याख्या.

शुद्धोंछं निर्दोषभैक्षमादिशब्दात्कलहममत्वपरिहारे च यत्न उद्यमो गुरुकुलत्यागेना-पिशब्दात्सूत्रार्थहान्याग्लानादित्यागेन चेह जिनमते वि-ज्ञेयो बोद्धव्यः कथंभूतइत्याह-शबरराजस्य सरजस्कस्य पिच्छार्थं घाते पादास्पर्शनतुल्यश्चरणासंघट्टनादेशकल्प इति.

ટીકાનો અર્થ.

એના એટલે ગુરૂકુળવાસના પરિત્યાગથી એટલે સર્વથા એને છોડી દેવાથી શુદ્ધ ભિક્ષા વગેરે કરે, આદિ શબ્દથી શુદ્ધ ઉપાશ્રય વસ્ત્રપાત્ર વગેરે લેવાં, તે આગમના જાણુ પુરૂષોએ સારૂં નથી કહ્યું. જુવો આગમમાં આ રીતે કહેલ છેઃ—

ગુરૂકુળ વગેરેને છોડીને શુદ્ધ ભિક્ષા કરવાનો યત્ન કરવો, તે ઇહાં શબર નામના રાજાએ ભગવાં વસ્ત્ર પહેરનાર પોતાના ગુરૂની મોરપીછો લૂંટવા માટે તેને પગે અડકયા વગર મારી નાખવા ફરમાવ્યું તેના સરખો છે.

આ ગાથાની વ્યાખ્યા.

શુદ્ધ ઉંછ એટલે નિર્દોષ ભિક્ષા. આદિ શબ્દથી કલહ તથા મમત્વ ત્યાગમાં જે યત્ન એટલે ઉદ્યમ છે, તે ગુરૂકુળના ત્યાગે કરી, તથા અપિ શબ્દથી સૂત્રાર્થમાં હાનિ પહોંચાડી, તથા ગ્લાનાદિકને પડતા મેલીને જે કરે, તે ઇહાં એટલે જૈન મતમાં કેવો કહેલ છે, તે કહે છે કે, શબર નામના રાજાએ તેના ભગવાંધારી ગુરૂની મોરપીછ લેવા માટે તેને મારી નાખવા ફરમાવતાં પગે નહિ અડકવાનું ફરમાન કર્યું, તેના સરખું છે.

संविधानकसंप्रदायः पुनरयं.

क्वचित्सांनिवेशे शबराभिधानः सरजस्कभक्तो राजा बभूव तस्यैकदादर्शनार्थमुपरिधार्यमाणमयूरपतत्रछत्रो गुरुराजगाम.

तं च कृतसन्मानोपविष्टं राजाप्रियतमा तदातपत्रं चकच्चाक्यमानानेकचंद्रकराजिराजितमवलोक्य कुतूहलातिरेकतस्तत् प्रार्थयितुमारेभे. तत्र च देशे मयूराभावाद्दुर्लभानि मयूरपिच्छानीत्यसावदित्सन्नुत्थाय स्वाश्रयमगमत्. ततोराज्ञी कृताभोजननिश्चया तदानयनाय राजानं प्रोत्साहयांचकार.

राज्ञापि यदा पुनः पुनः प्रार्थितोपि गुरुस्तदातपत्राणि न ददाति तदा दुर्वारप्रेमग्रहव्यामोहितेन हठादेव गृहीत्वा नयत तानीत्यादिष्टाः पदातयः प्रत्यूचुः—नासौ जीवन्नर्पयति प्रहारैश्चोपतिष्ठते. ततो राजोवाच. दूरस्था एव तंबाणैरचेष्टं कृत्वा तानि गृह्णात—समाददानाश्च मा क-

---

શબર રાજાની વાત આ રીતે ચાલે છે.

કોઇક સંસ્થાનમાં શબર નામે રાજા હતો, તે સરજસ્ક (ભગવાં વસ્ત્ર પહેરનાર (બાવા)નો ભક્ત હતો. તેને ભેટવા માટે એક વેળા માથાપર મોરની પીંછાનું છત્ર ધરાવતો ગુરૂ તેને ત્યાં આવ્યો.

તે સન્માન પામી બેઠો, ત્યારે રાજાની રાણીએ તેના ચકચકતા ચાંદલાવાળું છત્ર જોઇને કુતૂહળના જોરથી તે માગવા માંડયું. પણ તે દેશમાં મોરો ન હોવાથી, મોરપીછો મળવો મુશ્કેલ હોવાથી, તે ગુરૂ તે દેવાની ઇચ્છા નહિ બતાવતાં, ઉઠીને પોતાના મુકામે આવ્યો. ત્યારે રાણી નહિ ખાવાની હઠ લઇ રાજાને ઉશ્કેરવા લાગી.

રાજાએ પણ જ્યારે વારંવાર માગ્યા છતાં તે ન આપવા લાગ્યો, ત્યારે સ્ત્રીના પ્રેમથી ઘેલા બનીને પોતાના સુભટોને ફરમાવ્યું કે, જોર વાપરી લઇ આવો, ત્યારે તેઓ બોલ્યા કે,—

थमपि गुरोः पादेन स्पर्शं कुर्ध्वं,—यतो गुरोरवज्ञा महते पातकाय संपद्यत इति.

यादृशोऽस्य शबरराजस्य गुरोर्विनाशं कारयतः पादस्पर्शं च वारयतो विवेक—स्तादृशो गुरुकुलत्यागिनः शुद्धोंच्छादिलालसस्य साधोरपीतिभावः

व्यतिरेकमाह—इह कर्मशब्देनाधाकर्मोच्यते—आदिशब्दादौद्देशिकादि परिग्रहः—एतद्दोषदुष्टमप्याहारादि परिशुद्धंनिर्दोषं, आस्तां शुद्धोंच्छादि परिशुद्धमित्यपेरर्थो—गुर्वाज्ञावर्त्तिन आराध्यादेशविधायिनो ब्रुवते प्रतिपादयंत्यागमतत्वविदः

इय मत्रभावना—उत्सर्गपदे बहुतरकर्मानिबंधनत्वादल्पायुष्कताकारणत्वाच्चाधाकर्म महादोषदुष्टमेव—तथाचाह प्रज्ञप्तौ भगवान्सुधर्मस्वामी.

એ જીવતો થકો આપે તેમ નથી, એ તો સામે ઘા મારે છે, ત્યારે રાજા બોલ્યો કે, દૂર ઉભા રહી, તેને બાણોથી અચેષ્ટ કરીને તે લાવો, પણ યાદ રાખજો કે, તે લેતાં થકાં કોઇ રીતે ગુરૂને પગથી નહિ અડકતા. કેમકે ગુરૂની અવજ્ઞા કર્યાથી મહા પાતક લાગે છે.

આ રીતે સવિધાનક છે.

હવે અહીં ગુરૂને મરાવતા, અને પગથી અડકવાનું નિવારણ કરતાં આ શબરરાજાનો જેવો વિવેક છે, તેવોજ ગુરૂકુળવાસને તજનાર, અને શુદ્ધ ભિક્ષા કરવા ઇચ્છા રાખનાર સાધુનો વિવેક સમજવો.

વ્યતિરેક એટલે એથી ઉલટું કહે છે. અહીં કર્મશબ્દે આધાકર્મ જાણવું. આદિ શબ્દથી ઔદ્દેશિકાદિક દોષ લેવા, એ દોષોથી દૂષિત આહાર વગેરે પણ ગુરૂની આજ્ઞામાં વર્તનારને નિર્દોષ છે, ત્યારે શુદ્ધ ભિક્ષા વગેરેનું શું કહેવું, એમ આગમના જાણ કહે છે.

એની ભાવના આ પ્રમાણે છે:— ઉત્સર્ગ માર્ગે આધાકર્મ ઘણાં કર્મ બાંધવાનું, તથા અલ્પાયુપણાનું કારણ હોવાથી મહા દોષવાળુંજ છે. જે માટે ભગવતી સૂત્રમાં સુધર્મ સ્વામિએ નીચે મુજબ કહેલું છે:—

આહાકંમં નં ભુંજમાણે સમણે નિગ્ગંથે કિં બંધઇ કિં પકરેઇ કિં ચિણઇ કિં ઉવચિણઇ ? ગોયમા, આહાકંમં નં ભુંજમાણે સમણે નિગ્ગંથે આઉઅવજ્જાઓ સત્ત કમ્મપગડીઓ સિઢિલબંધણબદ્ધાઓ ધણિયબંધણબદ્ધાઓ કરેઇ, હ્રસ્સકાલઠ્ઠિઈયાઓ દીહકાલઠ્ઠિઈયાઓ કરેઇ, મંદાણુભાવાઓ તિવ્વાણુભાવાઓ કરેઇ, અપ્પપ્પએસગાઓ બહુપ્પએસગાઓ કરેઇ,—આઉયં ચ ણં કંમં સિય બંધઇ, સિય નો બંધઇ, અસાયાવેયણિજ્જં ચ ણ કમ્મં ભુજ્જો ભુજ્જો ઉવચિણઇ, અણાઇયં અણવગ્ગં દીહમદ્ધં ચાઉરંતસંસારકંતારં અણુપરિયટ્ટઇ.

સે કેણટ્ઠેણં ભંતે એવં વુચ્ચઇ—આહાકંમં નં ભુંજમાણે સમણે નિગ્ગંથે જાવ અણુપરિયટ્ટઇ ? ગો. આહાકંમં નં ભુંજમાણે સમણે નિગ્ગંથે આયાએ ધમ્મં અઇક્કમઇ (આયાઇત્તિ આત્મના ધર્મં શ્રુતધર્મં ચારિત્રધર્મં ચેતિ) આયાએ ધંમં અઇક્કમમાણે પુઢવિકાયં નાવકંખઇ, આઉકાયં નાવકંખઇ, તેઉકાયં નાવકંખઇ, વાઉકાયં નાવકંખઇ, વણસ્સઇકાયં નાવ-

---

આધાકર્મને ખાનાર શ્રમણ નિર્ગ્રંથ શું બાંધે, શું કરે, શું એકઠું કરે, શું વધારે ? હે ગૌતમ ! આધાકર્મને ખાનાર શ્રમણ નિર્ગ્રંથ આયુ શિવાય બાકીની સાત કર્મ પ્રકૃતિઓ ઢીલી બાંધી હોય, તે મજબુત કરે. ટુંકી સ્થિતિની હોય, તે લાંબી સ્થિતિની કરે. મંદ અનુભાવવાળી હોય, તે તીવ્ર અનુભાવવાળી કરે. અલ્પ પ્રદેશવાળી હોય, તેને ઘણા પ્રદેશવાળી કરે, અને આયુ કર્મને વખતે બાંધે, વખતે નહિ પણ બાંધે, પણ અસાતાવેદનીયને તો વારંવાર વધારતો રહે, તથા અનાદિ અનવદગ્ર દીર્ઘકાળવાળા ચાતુરંત સંસાર કાંતારમાં ભટકતો રહે છે.

હે પૂજ્ય ! એમ શા કારણે કહો છો ? ગૌતમ ! આધાકર્મ ખાનાર શ્રમણ નિર્ગ્રંથ પોતાના ધર્મને [એટલે શ્રુત ધર્મ તથા ચારિત્ર ધર્મને] અતિ ક્રમે છે, તેથી તે પૃથ્વી, પાણી, અગ્નિ, વાયુ, વનસ્પતિ તથા ત્રસકાયની અપેક્ષા રાખતો નથી, અને વળી

कंखइ, तसकायं नावकंखइ,–जे सिंपियणं जीवाणं सरीरयाइं आहार माहारेइ तेवि जीवे नावकंखइ–से एएणट्ठेणं गोयमा एवं वुच्चइ आहाकंमं भुंजमाणे जाव परियट्टइ.

(तथा) कहं नं भंते जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरंति ? गोयमा, पाणे अइवाइत्ता भवइ, मुसं वइत्ता तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाहित्ता भवइ–एवं खलु जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरिंति [त्ति]

द्वितीयपदे पुनर्गाढग्लानादिकार्यासंस्तरणादिरूपे गच्छमध्यव्यवस्थितस्यगुर्वाज्ञावर्त्तिनोऽशठभावस्य साधोः पंचकपरिहाणिक्रमेण सर्वस्थान्ना प्रयतमानस्यातुरदृष्टांतेनाधाकर्माद्यपि निर्दोषं.

तथाचागमः—

संथरणंमि असुद्धं–दुण्हवि गिण्हंतदिंतया णहिंय,

જે જીવોના શરીરનો બનેલો આહાર વાપરે છે, તેમની પણ અપેક્ષા રાખતો નથી, તે કારણે એમ કહીએ છીએ.

(વળી સ્થળાંતરે કહ્યું છે કે) હે પૂજ્ય ! જીવો અલ્પાયુપણું કેમ બાંધે છે ? ગૌતમ ! જે પ્રાણઘાતી થાય, જુઠું બોલીને તેવા પ્રકારના શ્રમણ બ્રાહ્મણને અપ્રાશુક અનેષણીય આહાર, પાણી, ખાદિમ, સ્વાદિમ, વહોરાવે, એ રીતે જીવો અલ્પાયુપણાનું કર્મ બાંધે છે, પણ અપવાદ માર્ગે એટલે બહુ માંદગી વગેરેના પ્રસંગે નહિ નભી શકે, ત્યારે ગચ્છમાં રહી ગુરૂના હુકમ પ્રમાણે વર્તી અશઠ ભાવ રાખી પંચક પરિહાણિના ક્રમે કરી પૂરતા જોરથી યતના કરતા મુનિને આતુરના દૃષ્ટાંતે કરી, તે આધાકર્માદિક પણ નિર્દોષજ છે.

જે માટે આગમમાં કહેલું છે કે,

નભી શકતું હોય, તે વેળા અશુદ્ધ છે, તે લેનાર ને દેનાર એ બંનેને અહિત

आउरदिट्ठंतेणं-तं चेव हियं असंथरणे.

तथा

जा जयमाणस्स भवे-विराहणा सुत्तविहिसमग्गस्स,
सा होइ निज्जरफला-अज्झप्पविसोहिजुत्तस्स (त्ति)

गुर्वाज्ञाकारिणो विशेषतः प्रशंसामाह.

॥ मूलं ॥

ता धन्नो गुरुआणं-न मुयइ नाणाइगुणमणिनिहाणं ।
सुपसन्नमणो सययं-कयंनुयं मणसि भावंतो ॥ १२९ ॥

(टीका)

यस्माद्गुर्वाज्ञा गरीयसे गुणाय-तस्माद्धेतोर्धन्योगुर्वाज्ञां न मुंचति-

---

કર્ત્તા છે, પણ અસંસ્તરણમાં એટલે જ્યારે નહિ નભી શકે, ત્યારે આતુરના દૃષ્ટાંતે તેજ હિતકર્ત્તા ગણાય છે.

વળી કહ્યું છે કે, સૂત્રની વિધિ પ્રમાણે યતના કરનાર, અને આત્મ વિશુદ્ધિ સાચવીને વર્તનારાને જે વિરાધના હોય છે, તે નિર્જરારૂપ ફળ આપે છે.

ગુરૂની આજ્ઞા માનનારની વિશેષે પ્રશંસા કરે છે.

મૂળનો અર્થ.

તે માટે ધન્ય પુરૂષ જ્ઞાનાદિ ગુણરૂપ મણિઓની ખાણ સમાન ગુરૂની આજ્ઞાને છોડતો નથી, પણ હમેશાં આનંદિત મન રાખે છે, અને પોતાને કૃતજ્ઞ ભાવે છે. [૧૨૯]

ટીકાનો અર્થ.

જે માટે ગુરૂની આજ્ઞા મોટો ફાયદો કરે છે, તે માટે ધન્ય પુરૂષ ગુરૂની આ-

सुष्ठ्वतिशयेन प्रसन्नमना निर्मलमानसो निष्ठुरमपि शिक्षितो न कुप्यति–न कलुषयति चांतःकरणं–न च वहति प्रद्वेषं स्मरन् कुंतलदेवीज्ञातं,

केवलं–

जं मे बुद्धाणुसासंति–सीएण फरूसेण वा,
मम लाभुत्ति पेहाए–पयओ तं पडिस्सुणे.

कथं ? सततमनवरतं कृतज्ञतामुपकाराविस्मृतिरूपां मनसि हृदये भावयन् व्यवस्थापयं–स्तद्यथा,

टोलु व्व दुलदुलंतो–अहयं विन्नाणनाण निलएण ।
देवु व्व वंदणिज्जो–कओ म्हि गुरुमुत्तहारेण ॥

इत्थं भूत एव धन्यो भवति–धर्मधनार्हत्वादिति.

જ્ઞાને છોડતો નથી, અને સુપ્રસન્ન મન એટલે અતિશય નિર્મળ મન રાખતો હોવાથી નિષ્ઠુર રીતે ગુરૂએ શીખામણ આપતાં પણ ગુસ્સે થતો નથી, તથા અંતઃકરણને કલુષિત કરતો નથી, તેમજ કુંતળદેવીનો દ્રષ્ટાંત યાદ કરીને પ્રદ્વેષ વહેતો નથી, કિંતુ એમ વિચારે છે કે, સમજવાન્ ગુરૂ ઠંડા અથવા ગરમ વચનવડે જે કંઇ મને શીખામણ આપે છે, તે મારોજ લાભ જોઇને આપે છે, એમ વિચારી તે પ્રયત્ન પૂર્વક સ્વીકારે છે.

આ રીતે તો કહે છે કે, નિરંતર ઉપકાર નહિ વીસરવારૂપ કૃતજ્ઞતાને હૃદયમાં સ્થાપીને, તે આ રીતે કે—

વિજ્ઞાન અને જ્ઞાનના ભંડાર ગુરૂરૂપ સૂત્રધારે પત્થરની માફક રખડતા મુજને દેવની માફક વંદનીય કરેલો છે.

આવો હોય, તેજ ધર્મરૂપ ધનને લાયક હોવાથી ધન્ય ગણાય છે.

पूर्वसूचितं कुंतलदेवीज्ञातं पुनरिदं.

अवणिपुर मत्थि अवणी–वरमहिला भालफलयतिलयं व । तत्थ निवो जियसत्तू–पडुपयडपयाव जियसत्तू ॥ १ ॥

तस्सा सि पिया कुंतल—देवीनामा सहावकूरमणा । अन्नाउवि देवीओ–सुमईओ संति बहुयाओ ॥ २ ॥ कारंति ताउ उत्तुंग–सिंग-सिंगाइं कणयकलसाइं । जिणनाहचेइयाइं–नियएणं दविणजाएण ॥ ३ ॥ अह मच्छरभरभरिया–कुंतलदेवीवि सेसएहिंतो । सविसेसं चेइहरं—हरगिरिधवलं करावेइ ॥ ४ ॥ तत्थ च्छेरयभूयं–पूयं कारेइ गीयनट्टाई । वायावइ आउज्जे–सज्जो सज्जिय महाभुज्जे ॥ ५ ॥ अन्नेसु पयट्टंतिं—पूयं आउज्जयाण घणघोसं । सुणिउं कुणइ पओसं—दूमिज्जइ तक्कहाए वि ॥ ६ ॥

પૂર્વે સૂચવેલ કુંતલદેવીનું ઉદાહરણ આ છે.

પૃથ્વીરૂપ મહિલાના કપાળમાં તિલક સમાન અવનિપુર નામે એક નગર હતું. ત્યાં અતિ પ્રગટ પ્રતાપથીજ શત્રુઓને જીતનાર જિતશત્રુ નામે રાજા હતો. (૧)

તેને કુંતલદેવી નામે સ્વભાવથીજ ક્રૂર મનવાળી એક રાણી હતી, તથા બીજી સારી મતિવાળી પણ ઘણી રાણીઓ હતી. [૨] તે રાણીઓએ પોતાનાં દ્રવ્યથી ઉંચા ટુંકના જેવી શિખરવાળાં અને સોનાનાં કળશવાળાં જિનમંદિરો કરાવ્યાં. [૩] ત્યારે મત્સરથી ભરાઇને કુંતલદેવીએ તેમનાથી વિશેષ શોભાવાળું હીમાચળ જેવું ધોળું મંદિર કરાવ્યું. (૪) ત્યાં તે આશ્ચર્યકારક ગીત નૃત્ય કરાવતી, તથા સાંભળ્યાથી તુરત અચંબો પમાડનાર વાજાં વગડાવતી. (૫) પણ તે બીજાં મંદિરોમાં થતી પૂજા જોઇ તથા વાજાંનો ગંભીર અવાજ સાંભળી પ્રદ્વેષ ધારતી, અને તેની વાત સાંભળીને પણ દૂભાતી હતી. (૬)

सेस सवित्तीणं पुण-अक्रूरहियय्याण जिणमयरयाण । परमत्थ चिं-तिगाणं-न होइ थेवो विहु पओसो ॥ ७ ॥ सुमहंतजलंतपओस-जलण-जालालि दड्ढधम्मवणा । कुंतलदेवी कइया-रोगायंकेहिं परिभूया ॥ ८ ॥ तो से निवेण घित्तुं-आभरणाईणि नियय्भंडारे । खित्ताइं तओ धणियं-सा पडिया अट्टझाणंमि ॥ ९ ॥ मरिऊण ऊणपुन्ना-क्रूरा सा कुक्कुरी तहिं जाया । नियजिणभवणदुवारे-पुव्वब्भासेण चिट्ठेइ ॥ १० ॥ कइयावि तत्थ पत्तो-केवलनाणी नमेवि अह पुट्ठो । अंतेउरीहिं भयवं-कत्थ गया कुंतला मरिउं ? ॥ ११ ॥

पभणइ गुरूवि तीसे-पओसकरणाइवइयरं सव्वं । जा संजाया सुणिया-धुणियामलदुलहसम्मत्ता ॥ १२ ॥ इय निसुणिऊण ताओ—गरुयं वेरग्ग मुव्वहंतीओ । परिसाइ उट्ठियाए-गंतुं जिणभवणदारंमि ॥ १३ ॥ पिच्छंति तयं सुरमं-परमं करुणारसं पवन्नाओ । बलिपूय-

---

પણ તેની બીજી શોકયો અક્રૂર મનવાળી, જિન મતમાં રક્ત અને પરમાર્થને વિ-ચારનારી હતી, તેમને લગારે પ્રદ્વેષ નહિ આવતો. [૭] હવે ભારે જળતા પ્રદ્વેષરૂપ અગ્નિની જ્વાળાઓથી ધર્મરૂપ વનને બાળી નાખનાર કુંતલદેવી એક વેળા બહુ માંદી પડી. [૮] ત્યારે રાજાએ તેના દાગીના વગેરે સઘળને પોતાના ભંડારમાં રાખ્યા, તેથી તે અતિશય આર્ત્ત ધ્યાનમાં પડી. (૯) બાદ તે ઓછાં પુણ્યવાળી ક્રૂર રાણી મરણ પામીને ત્યાં કૂતરી થઇ, તે પૂર્વના અભ્યાસથી પોતાનાં બનાવેલાં જિન મંદિરના દરવાજાપર બેઠી રહેતી. [૧૦] ત્યાં કોઇક વેળા કેવળજ્ઞાની પધાર્યા, તેમને નમીને અંતઃપુરની રાણીઓએ પૂછ્યું કે, હે ભગવન્ ! કુંતલા રાણી મરીને કયાં ગઇ છે ? (૧૧)

ત્યારે ગુરૂએ પણ તેણીનો પ્રદ્વેષ કરવા વગેરેનો સર્વ વ્યતિકર કહીને કહ્યું કે, તે દુર્લભ નિર્મળ સમ્યકત્વને દૂર કરીને કૂતરી થઇ છે. [૧૨] એમ સાંભળીને તેઓ ભારે વૈરાગ્ય પામી પર્ષદા ઉઠતાં જિન ભવનને દરવાજે ગઈ, તે કૂતરીને જોવા લાગી, એટલે તેમને બહુ કરૂણા આવી, તેથી તેણીઓએ તેના આગળ બળિ તથા પૂરી વગેરે

लियापमुहं-खिवंति तीए पुरो ताओ ॥ १४ ॥ पभणंति महाभागे-धंमपराएवि जं तया तुमए । नय चत्तं कूरत्तं-तेण इमा दुग्गइ पत्ता ॥ १५ ॥ ता संपयंपि एयं-वणं व अक्कूरभावजलणेण । दहिऊण कुणसु अप्पं-समभावजलेण संसित्तं ॥ १६ ॥

हे सरमे, दुहविरमे-जिणधंमे माणसं निवेसेसु । चयसु सयावि पओसं-वहेसु हिययंमि संतोसं ॥ १७ ॥ इच्चाइ ताण संभम-मसमं पिच्छिय गिराउ तह सुणिउं । सुणिया सा संभंता-पुणो पुणो चिंतइ किमेयं ? ॥ १८ ॥ बहुयं विचिंतयंती-जाइं सुमरित्तु फुरियवेरग्गा । भुज्जो भुज्जो निंदइ-पुव्वकडं दुक्कडं सव्वं ॥ १९ ॥ सिद्धसमक्ख मणसणं-पडिवज्जिय पूरिउं नियय माउं । जाओ वेमाणिसुरो-लहिही परमं पयं कमसो ॥ २० ॥

एवं कुंतलदेव्याः—

प्रद्वेषजुषो निशम्य कटुकफलं ।

નાખી. (૧૩-૧૪) તેઓ તેને કહેવા લાગી કે, હે મોટા ભાગ્યવાળી ! તેં તે વેળા ધર્મમાં તત્પર થઈને પણ ક્રૂરપણું નહિ મેલ્યું, તેથી આ દુર્ગતિને તું પામી છે. [૧૫] માટે હજુ પણ એ ક્રૂરપણાને અક્રૂર ભાવરૂપ અગ્નિથી વનની માફક બાળીને પોતાને સમ-ભાવરૂપ પાણીથી સિંચિત કર. [૧૬]

હે કૂતરી ! દુઃખને ટાળનાર જિન ધર્મમાં મન રાખ. હમેશાં પ્રદ્વેષને મૂક, અને હૃદયમાં સંતોષ રાખ [૧૭] આ વગેરે તેમની ભારે ઉતાવળ જોઈ, તથા વાણી સાંભળીને તે કૂતરી ભડકીને વારંવાર ચિંતવવા લાગી કે, આ શું છે ? [૧૮] તે ઘણું વિચારતાં વિચારતાં જાતિ સ્મરણ પામી, તેથી વૈરાગ્ય સ્ફુરતાં સઘળાં પૂર્વકૃત દુષ્કૃતને વારંવાર નિંદવા લાગી. (૧૯) બાદ તેણી સિદ્ધની સાખે અણસણ લઈ આયુ પૂરું કરી વૈમાનિક દેવપણું પામી, અને ક્રમે કરી મુક્તિએ જશે. [૨૦] એ રીતે પ્રદ્વેષ

भव्या भवभयभीताः—
प्रसन्नमनसो भवत सततं ॥ २१ ॥

॥ इति कुंतलदेवीज्ञातं ॥

आह—किं योपि सोपि गुरुर्गुणसंपत्तये सेवनीय आहोश्वित् कश्चिद्विशिष्ट एवेति प्रश्ने प्रतिवचनमाह.

॥ मूलं ॥

गुणवं च इमो सुत्ते—जहत्थगुरुसद्दभायणं इट्ठो ।
गुणसंपया दरिद्दो—जहुत्तफलदायगो न मओ ॥ १३० ॥

(टीका)

च शब्दस्यावधारणार्थत्वाद्गुणवानेव गुणगणालंकृत एवायमिति

ધરનાર કુંતલદેવીને થએલું કડવું ફળ સાંભળી, હે ભવ્યો ! તમે સંસારના ભયથી ડરીને નિરંતર પ્રસન્ન મન રાખો.

આ રીતે કુંતલદેવીનું ઉદાહરણ છે.

કોઇ પૂછશે કે, શું જે તે ગુરુ ગુણ સંપત્તિ માટે સેવવો કે, કોઇ વિશિષ્ટ ગુરુ સેવવો ? એનો જવાબ કહે છે.

મૂળનો અર્થ.

સૂત્રમાં ગુણવાન્‌નેજ યથાર્થ ગુરૂ શબ્દનો પાત્ર ગણેલ છે; બાકી ગુણમાં દરિદ્રી હોય, તે યથોક્ત ફળનો દેનાર નથી ગણ્યો. [૧૩૦]

ટીકાનો અર્થ

ચ શબ્દ અવધારણાર્થે હોવાથી ગુણગણથી અલંકૃતજ ગુરૂ સૂત્રમાં એટલે સિદ્ધાં-

गुरुः सूत्रे सिद्धांते यथार्थ सान्वयो गुरुशब्दस्तस्य भाजनमाधार इष्टो-भिप्रेत-स्तथाहि. गुरुशब्दस्य—

धम्मन्नू धम्मकत्ता य सया धम्मपरायणो ।
सत्ताणं धम्मसत्थस्स-देसओ भन्नए गुरू ॥

इत्यन्वयः—स च श्रुतधर्मोपदेशकस्य चारित्रधर्मविधायकस्य संविग्न गीतार्थगुरोरेव युज्यते.

तस्य च गुणाः प्राधान्येन—

वयछक्कं[૬] कायछक्कं[૧૨]-अकप्पो[૧૩] गिहिभायणं[૧૪] ।
पलियंक[૧૫] निसिज्जाणं[૧૬]-सिणाणं[૧૭] सोभवज्जणं[૧૮] ॥

इत्यष्टादश—एभिर्विना गुरुत्वाभाव एव-तंतुभिर्विना पटाभाववत्, तथाचोक्तं श्री शय्यंभवसूरिपादैः

તમાં યથાર્થ એટલે અન્વયવાળા ગુરૂ શબ્દનું ભાજન, એટલે આધાર સ્વીકારેલ છે. તે આ રીતે કેઃ—

ધર્મનો જાણુ, ધર્મનો કરનાર હમેશાં ધર્મમાં તત્પર રહેનાર, અને જીવોને ધર્મ શાસ્ત્રનો ઉપદેશ દેનાર હોય, તે ગુરૂ કહેવાય. એમ ગુરૂ શબ્દનો અન્વયાર્થ છે, તે અન્વયાર્થ શ્રુત ધર્મના ઉપદેશક, અને ચારિત્ર ધર્મના વિધાયક સવિગ્ન ગીતાર્થ ગુરૂનેજ લાગુ પડી શકે છે.

તે ગુરૂના મુખ્યત્વે કરીને નીચેના અઢાર ગુણ છેઃ—

૬ વ્રત, છકાયની રક્ષા, અને અકલ્પ—ગૃહિ ભાજન—પલંક—નિષદ્યા—સ્નાન અને શોભા એ ૬ બાબતનો ત્યાગ.

એ અઢાર મુખ્ય ગુણો વિના ગુરૂપણાનો અભાવજ જાણવો. જેમ તાંતણાઓ વગર પટ [વસ્ત્ર]નો અભાવ રહે છે, તેમ અને એજ રીતે શ્રી શય્યંભવસૂરિ મહારાજે કહેલું છે કેઃ—

दस अट्ठय ठाणाइं-जाइं बालो वरज्झई ।
तत्थ अन्नयरे ठाणे-निग्गंथत्ताउ भस्सई ॥ (इति)

शेषास्तु—

पडिरूवो तेयस्सी-जुग्गपहाणागमो महुरवक्को ।
गंभीरो धीमंतो-उवएसपरो य आयरिओ ॥ १ ॥
अपरिस्सावि सोमो-संगहसीलो अभिग्गहमई य ।
अविकत्थणो अचवलो-पसंतहियओ गुरू होइ ॥ २ ॥

इत्यादयो—" देसकुलजाइरूवी "—त्यादयो विशेषगुणा-स्ते कादाचित्काः-पटस्य रक्तत्वादिवत्. तत्रेह प्रधानगुणैर्युक्तो गुणवानभिप्रेतः-कार्यसाधकत्वात्. सत्सु तेषु शेषगुणसंप्रयोगोपि वरीयानेवेति.

विपर्यये पुनः किंस्यादित्याह-गुणसंपदा सद्गुणविभूत्याकरणभूतया

દશ અને આઠ એટલે અઢાર સ્થાનોમાં જે કોઇને બાળ પુરૂષ વિરાધે, તે તે સ્થાનમાં નિર્ગ્રંથપણાથી ભ્રષ્ટ થાય.

બાકીના ગુણો જેવા કે,

પ્રતિરૂપ (રૂપવાન), તેજસ્વી, યુગપ્રધાનાગમ, મધુરવાક્ય, ગંભીર, ધીમાન, અને ઉપદેશમાં તત્પર હોય, તે આચાર્ય જાણવો. તથા અપરિશ્રાવી, સૌમ્ય, સંગ્રહશીળ, અભિગ્રહની મતિવાળો, અવિકત્થન, અચપળ, અને પ્રશાંત હૃદયવાન હોય, તે ગુરૂ કહેવાય. [૧-૨] ઇત્યાદિક તેમજ દેશકુળ જાતિરૂપ વગેરે એ બધા વિશેષ ગુણો છે, અને તે કાદાચિત્ક [અનિયમિત] છે, પટની રક્તતા માફક. તેથી ઇહાં પ્રધાન ગુણોવડે જે યુક્ત હોય, તે ગુણવાન લેવો; કેમકે તે ગુણોથી કામ ચાલે છે. અને તેઓની સાથે શેષ ગુણો જોડાય, તો વધારે સારૂંજ છે.

એથી વિપર્યયમાં શું થાય તે કહે છેઃ—ગુણસંપદા એટલે સદ્ગુણરૂપ ઋદ્ધિથી

दरिद्रो दुर्गतो यथोक्तं गुरुसंप्रयोगे फलंतस्यदायकः संपादयिता न मतो नैव संमतो जिनप्रवचनवेदिना,—मतो न निर्गुणो गुरुः सेवनीय इति.

ननु सांप्रतं कालानुभावादेव दुर्लभा सर्वगुणसंपद्–यतः कोपि कुतोपि केनापि गुणेनहीनोप्यन्येनाधिक इति तारतम्यभेदेनानेकधा गुरव-उपलभ्यंते,—ततस्तेषु कं गुरुमाश्रयामहे, कं वानेति दोलायमानमानसाना-मस्माकं किमुचितमिति शिष्येण सप्रणयं पृष्टोगुरुराह.

॥ मुलं ॥

मूलगुणसंपउत्तो—न दोसलवजोगओ इमो हेओ ।
महुरोवक्कमआ पुण—पवत्तियव्वो जहुत्तंमि ॥ १३१ ॥

જે દરિદ્ર હોય, તેને ગુરૂના સંપ્રયોગના યથોક્ત ફળનો સંપાદક જિનાગમના જાણુ પુરૂષોએ બિલકુલ નથી માન્યો, માટે નિર્ગુણ ગુરૂ સેવવો નહિ.

કોઇ પૂછશે કે, હમણાં કાળના પ્રતાપથી સર્વ ગુણની સંપદ્ મળવી દુર્લભ છે, જે માટે કોઇ પુરૂષ કોઇ કારણે કોઇક ગુણમાં હીન હોય છે, તો બીજા ગુણમાં અધિક હોય છે, એમ તરતમ ભેદે કરી અનેક પ્રકારના ગુરૂઓ રહેલા છે. તેથી તેઓમાં કોને ગુરૂ તરીકે સેવવો, અને કોને નહિ, એ બાબતમાં અમારૂં મન દોલાય છે, માટે અમારે શું કરવું ? એમ શિષ્યે પ્રીતિપૂર્વક પૂછતાં ગુરૂ કહે છે.

મૂળનો અર્થ.

મૂળગુણથી સહિત ગુરૂ દોષલવના યોગે છોડવા લાયક નથી. તેને તો મીઠી રીતે યથોક્ત ગુણોમાં ચડાવવો. (૧૩૧)

(ટીકા)

मूलगुणाः पंचमहाव्रतानि व्रतषट्कंकायषट्कादयोवा तैः सम्यक् सद्बोधप्रधानं प्रकर्षेणोद्यमातिशयेन युक्तोन्वितो मूलगुणसंप्रयुक्तो गुरुरिति प्रकृतत्वात्संबध्यते न दोषाणामाशुकोपित्व—वचनापाटव—मंदता—मनाक् प्रमादितापभृतीनां लवालेशा दोषलवास्तद्योगात्तत्संबंधादयं गुरुर्हेयः परित्याज्यः, तथाचागमः—

जेयावि मंदि त्ति गुरुं विइत्ता—डहरे इमे अप्पसुयत्ति नच्चा ।
हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा—करंति आसायण ते गुरूणं ॥
पगईइ मंदावि हवंति एगे—डहरावि जे सुयबुद्धोववेया ।
आयारमंता गुणसुट्ठियप्पा—जे हीलिया सिहिरिव भासकुज्जा ॥

ટીકાનો અર્થ.

મૂળગુણ તે પાંચ મહાવ્રત અથવા છ વ્રત. છકાય વગેરે. તેવડે કરીને સમ્યક્ એટલે સદ્બોધપૂર્વક પ્રકર્ષે કરી એટલે અતિશય ઉદ્યમવાન્ થઇને જે યુક્ત હોય, તે મૂળગુણ સંપ્રયુક્ત ગુરૂ, આશુકોપિત્વ (જલદી ગુસ્સે થવું), વચનાપાટવ [બોલવામાં અંચાવું], મંદતા, મનાક્પ્રમાદિતા [જરાક પ્રમાદિપણું] વગેરે દોષોના લવોના યોગથી હેય એટલે છોડવા લાયક નથી. જે માટે આગમમાં આ રીતે કહેલ છે:—

જેઓ ગુરૂને મંદ, ડોસો કે થોડું ભણેલો જાણીને હીલે છે, તે મિથ્યાત્વમાં પડી ગુરૂઓની આશાતના કરે છે. કેમકે કેટલાક સ્વભાવે કરીનેજ મંદ પ્રકૃતિના હોય છે, વળી ડોસા થયા છતાં પણ તેઓ શ્રુતની બુદ્ધિથી યુક્ત છે, તથા [થોડું ભણેલા છતાં પણ] આચારવાન્ અને ગુણમાં સુસ્થિત રહેલા છે, માટે તેમને હીલતાં તે અગ્નિ માફક ભસ્મ કરે છે.

जेयावि नागं डहरंति नच्चा–आसायए से अहियाय होइ ।
एवायरियं पिहु हीलयंतो–नियच्छई जाइपहं खु मंदे ॥

गुरुगुणरहिओ य इहं–दट्ठव्वो मूलगुण विउत्तो जो ।
नहु गुणमित्तविहूण त्ति–चंडरुद्दो उदाहरणं ॥

इत्यागमवचनान्यनुसृत्य मूलगुणशुद्धो गुरुर्नमोक्तव्यः—

कदाचित् किंचित्प्रमादवांस्तु–मधुरोपक्रम इति तृतीयार्थे पंचमी–ततो मधुरोपक्रमेण सुखदोपायेन प्रियवचनांजलिप्रणामपूर्वक–" मनुपकृत-परहितरतैर्भवद्भिः सुष्टु वयं मोचिता गृहवासपाशात्–तदिदानीमुत्तरोत्तरमार्गप्रवर्त्तनेन निस्तारयतास्माद्भीमभवकांतारा "–दित्यादिप्रोत्साहनेन पुनर्भूयोपि प्रवर्त्तयितव्यो यथोक्तमार्गानुसारिण्यनुष्ठाने इति.

किमित्येवमुपदिश्यते इत्याह.

જેઓ નાગને બુઠ્ઠો થયો જાણી છંછેડે, તો તેમને અહિત ભણી થઇ પડે છે, તેમ આચાર્યને હીલતાં પણ મંદ જનો જન્મમાર્ગમાં પડે છે.

અહીં ગુરૂ ગુણ રહિત તે જે મૂળ ગુણોથી રહિત હોય તે જાણવો, બાકી કોઇક ગુણથી હીન હોય તે નહિ ગણાય. અહીં ચંડરૂદ્ર આચાર્યનું ઉદાહરણ છે.

આ રીતનાં આગમનાં વચનોને અનુસરી જે મૂળગુણશુદ્ધ ગુરૂ હોય તે નહિ છોડવો.

બાકી કોઈ વેળા ગુરૂ કાંઇક પ્રમાદી જણાય, તો મધુર ઉપક્રમથી એટલે સુખકર ઉપાયથી અર્થાત્ અંજલિ જોડી પ્રણામ કરીને પ્રિયવચન બોલવાં કે—" વિના ઉપકારે પરહિત કરનાર તમોએ અમને ઘરવાસના પાશમાંથી છૂટા કર્યા એ બહુ સારૂં કર્યું, માટે હવે ઉત્તરોત્તર આકરો માર્ગ પ્રવર્ત્તાવી, આ ભયંકર ભવકાંતારથી અમને પાર પમાડો। "—એમ ઉત્તેજિત કરીને તેને ફરીને યથોક્ત માર્ગાનુસારિ અનુષ્ઠાનમાં પ્રવર્ત્તાવવો.

એમ કેમ કહો છો તેનું કારણ કહે છે.

(मूलं)

पत्तो सुसीससद्दो-एव कुणंतेण पंथगेणावि ।
गाढप्पमाइणोविहु—सेलगसूरिस्स सीसेण ॥ १३२ ॥

(टीका)

प्राप्तो लब्धः सुशिष्य इतिशब्दो विशेषणमेवं गुरोर्भूयोपि चारित्रे प्रवृत्तिं कारयता पंथकेन पंथकनाम्ना सचिवपुंगवसाधुना-पिशब्दादन्यैरपि तथाविधैर्यतोभाणि—

सीइज्ज कयावि गुरू-तंपि सुसीसा सुनिउणमहुरेहिं,
मग्गे ठवंति पुणरवि-जह सेलगपंथगो नायं.

तमेव विशिनष्टि-गाढप्रमादिनोप्यतिशयशैथिल्यवतोपि शैलकसूरेः शिष्येणेति व्यक्तमेवेति गाथाक्षरार्थो,-भावार्थः कथानकादवसेयः.

મૂળનો અર્થ.

ગાઢ પ્રમાદિ શૈલકસૂરિના શિષ્ય પંથકે પણ એમ કરતાં થકાં સુશિષ્ય શબ્દનો ઇલકાબ મેળવ્યો. [૧૩૨]

ટીકાનો અર્થ.

પ્રાપ્ત કર્યો એટલે મેળવ્યો સુશિષ્ય એવો શબ્દ એટલે વિશેષણ—તે એવી રીતે એટલે ફરીને પણ ચારિત્રમાં પ્રવૃત્તિ કરાવતાં પંથકે એટલે પંથક નામના મંત્રિપુંગવ સાધુએ પણ—અપિ શબ્દથી તેના જેવા બીજાઓએ પણ તે વિશેષણ મેળવ્યું. જે માટે કહેલું છે કે:—

જો કદાપિ ગુરૂ સીદાય તો તેને પણ સુશિષ્યો યુક્તિવાળા મધુર વચનોથી ફરીને માર્ગમાં આણે છે. અહીં શૈલક અને પંથકનું ઉદાહરણ છે.

તેનું જ વિશેષણ આપે છે—ગાઢ પ્રમાદિ એટલે અતિશય શિથિલ શૈલકસૂરિનો તે શિષ્ય હતો. આ રીતે ગાથાનો અક્ષરાર્થ છે,—ભાવાર્થ કથાનકપરથી જાણવો.

तच्चेदं.

कविकुलकलाविकलियं-सेलगपुर मत्थि सेलसिहरंव । तत्थ प्पयाव-सियकित्ति-सेलओ सेलओ राया ॥ १ ॥ सद्धम्मकम्मवाज्जिय-छउमा पउमावई पिया तस्स । सन्नीइनागवल्लीइ-मंडवो मडुगो पुत्तो ॥ २ ॥ चउसुद्धबुद्धिसंसिद्धि-पंथगा पंथगाइणो आसि । रज्जभरधरणसज्जा-सुमंतिणो पंचसयसंखा ॥ ३ ॥ थावच्चासुयगणहर-समीवपडिवन्नसुद्धगिहिधंमो । सेलगराया रज्जं-तिवग्गसारं चिरं कुणइ ॥ ४ ॥ अन्नदिणे थावच्चा-सुयपहुपयवत्तिसुयगुरुसमीवे । पंचहि मंतिसएहिं-पंथगपमुहेहि परियरिओ ॥ ५ ॥ मडुगपुत्ते रज्जं-ठविऊणं गिण्हए वयं राया । इक्कारस अंगाइं-अहिज्जिओ वज्जियावज्जो ॥ ६ ॥ पंथगपमुहाण तओ-पंचमुणिसयाणनायगो ठविओ । सुयमुणिवरेण सेलग-रायरिसी जिणसमयविहिणा ॥ ७ ॥

શૈલકપંથકનું કથાનક આ છે.

પર્વતના શિખર માફક કવિ કુળરૂપ કલાપિ (મોરો)થી કલિત શૈલકપુર નામે નગર હતું. ત્યાં પ્રતાપ અને સ્વચ્છ કીર્તિનો શૈલ [પહાડ] સમાન શૈલક નામે રાજા હતો. [૧] તેની સદ્ધર્મના કામમાં નિષ્કપટ પદ્માવતી નામે રાણી હતી, અને સન્નીતિરૂપ નાગરવેલનો માંડવા સમાન મડુક નામે પુત્ર હતો. [૨]

તેના પંથક વગેરે પાંચસો મંત્રિ હતા, તેઓ ચારે શુદ્ધ બુદ્ધિની સંસિદ્ધિના પંથ સમાન હતા, અને તેથી રાજ્યભાર ઉપાડવામાં તમતૈયાર રહેતા. [૩] તે શૈલક રાજા થાવચ્ચાકુમાર આચાર્યના પાસેથી ગૃહિધર્મ સ્વીકારીને ચિરકાળ ત્રિવર્ગ સાધી રાજ્ય કરતો. [૪] બાદ એક વેળા થાવચ્ચાકુમાર પ્રભુના પદવર્ત્તિ શુક ગુરૂના પાસે પંથક વગેરા પાંચસો મંત્રિઓથી પરવર્યો થકો મડુક પુત્રને રાજ્ય આપી દીક્ષા લઈ પાપ ટાળી અગ્યાર અંગ શીખ્યો. [૫-૬] ત્યારે શુક મુનીશ્વરે જિન સમયની વિધિથી તેને પંથક વગેરે પાંચસે મુનિઓનો નાયક સ્થાપ્યો. (૭)

सुयसूरी उ महप्पा–समए आहारवज्जणं काउं । सिरिविमलासहरिसिहरे–सहस्ससहिओ सिवं पत्तो ॥ ८ ॥ अह सेलगरायरिसि–अणुचियभत्ताइभोगदोसेण । दाहजरार्इतविओ–समागओ सेलगपुरंमि ॥ ९ ॥ उज्जाणंमि पसत्थे–सुभूमिभागंमि तं समोसरियं । सोऊण पहिट्ठमणो–विणिग्गओ मडुओ राया ॥ १० ॥ कयवंदणाइकिच्चो–सरीरवत्तं वियाणिउं गुरुणो । विन्नवइ एह भंते–मम गेहे जाणसालासु ॥ ११ ॥ भत्तोसहाइएहिं–अहापवत्तेहिं तत्थ तुम्हाणं । कारेमि जेण किरियं–धम्मसरीरस्स रक्खट्ठा ॥ १२ ॥

तथाचोक्तं.

शरीरंधर्मसंयुक्तं–रक्षणीयं प्रयत्नतः । शरीराच्छ्रवते धर्मः–पर्वतात्सलिलं यथा ॥ १३ ॥ पडिवन्न मिणं गुरुणा–पारद्धा तत्थ उत्तमा किरिया । निद्धमहुराइएहिं–आहारेहिं सुविज्जेहिं ॥ १४ ॥ विज्जाण कुसलयाए–पत्थोसहपाणगाइधुवलाभा । थेवदियहेहिं एसो–जाओ निरुओ

બાદ મહાત્મા શુકસૂરિ સમય આવતાં આહાર ત્યાગ કરીને શ્રીવિમલાચળપર એક હજાર મુનિઓ સાથે મુક્તિએ પહોંચ્યા. [૮] હવે શૈલકરાજર્ષિ અનુચિત આહાર વગેરે વાપરવાના દોષથી દાહજ્વરથી તપીને શૈલકપુરમાં આવ્યો. [૯] ત્યાં પ્રશસ્ત ઉદ્યાનમાં સારા ભૂમિ ભાગમાં તેને સમોસરેલો સાંભળીને હર્ષથી મડુકરાજા તેને વાંદવા નીકળ્યો. (૧૦) તે તેને વંદન વગેરે કરી શરીરની વાર્તા જાણીને વીનવવા લાગ્યો કે, હે પૂજ્ય ! મારા ઘરે યાનશાળામાં પધારો, કે જેથી હું જોઇશ આહાર, પાણી તથા ઔષધોથી તમારા ધર્મ શરીરની રક્ષા માટે ચિકિત્સા કરાવી શકું. (૧૧–૧૨)

જે માટે કહેલું છે કે, ધર્મ સહિત શરીરને સંભાળથી રાખવું, કેમકે પર્વતથી જેમ પાણી ઝરે છે, તેમ શરીરથી ધર્મ ઝરે છે. (૧૩) ગુરૂએ તે વાત માન્ય રાખી, એટલે સારા વૈદ્યોએ સ્નિગ્ધ મધુરાદિક આહારથી ઉત્તમ ચિકિત્સા શરૂ કરી. [૧૪] વૈદ્યોની કુશળતાથી તથા પથ્ય, ઔષધ, પાણી સરખી રીતે મળી શકવાથી થોડા દિવસમાં

य बलवं च ॥ १५ ॥ नवरं सिणेहपेसल–आहाराईसु मुच्छिओ धणियं । सुहसीलयं पवन्नो–निच्छइ गामंतरविहारं ॥ १६ ॥ बहुसोवि भणिज्जंतो–विरमइ नो जाव सो पमायाओ । ताहे पंथगवज्जा–मुणिणो मंतंति एगत्थ ॥ १७ ॥

कम्माइं नूण घण चिक्कणाइं कुडिलाइं वज्जसाराइ । नाणट्ठ यंपि पुरिसं–पंथाओ उप्पहं निंति ॥ १८ ॥ नाऊण सुयबलेणं–करयलमुत्ताहलं व भुवणयलं । अहह निवडंति केविहु–ओपिच्छह कम्मवलियत्तं ॥ १९ ॥ मुत्तूण रायरिद्धिं–मुक्खत्थी ताव एस पव्वइओ । संपइ अइप्पमाया–विम्हरियपओयणो जाओ ॥ २० ॥ काले न देइ सुत्तं–अत्थं न कहेइ पुच्छमाणाणं । आवस्सगाइ तत्ति–मुत्तुं बहुमन्नए निद्दं ॥ २१ ॥ सारणवारणपडिचोयणाइ न मणंपि देइ गच्छस्स । नय सारणाइरहिए–गच्छे वासो खणंपि खमो ॥ २२ ॥

તે નિરોગી અને બળવાન્ થયો. [૧૫] પરંતુ તે ચિકાશદાર આહાર વગેરેમાં ખુબ મૂર્છિત થઇ સુખશીળ થઇ પડયો, અને ગ્રામાંતરના વિહાર કરવા તૈયાર થયો નહિ. [૧૬] તેને ઘણી વાર કહેતાં, પણ તે પ્રમાદથી વિરમ્યો નહિ, ત્યારે પંથક શિવાય બાકીના મુનિઓ એકઠા થઇ, આ પ્રમાણે વિચારણા કરવા લાગ્યા. [૧૭]

કર્મો ઘણાં ચીકણાં, વાંકાં અને વજ્ર જેવાં સખ્ત હોય, તો ખરેખર જ્ઞાનવંત પુરૂષને પણ ઉન્માર્ગે દોરે છે. [૧૮] કર્મોનું બળવાન્પણું જુઓ કે, શ્રુતના બળે કરી હથેળીમાં રહેલાં મોતી માફક જગતને જાણતાં થકાં, પણ તેમાં પડે છે. [૧૯] રાજઋદ્ધિ છોડી મોક્ષાર્થી થઇ, એ પ્રવ્રજિત થયો છે, છતાં હમણાં અતિ પ્રમાદથી તે પ્રયોજનને વીસરી ગયો છે. [૨૦] એ સૂત્રના અવસરે સૂત્ર નથી આપતો. પૂછનારાઓનો અર્થ નથી કહેતો, અને આવશ્યકાદિકની ચિંતા મેલી ઉંઘને વધુ પસંદ કરે છે. [૨૧] તેમજ ગચ્છને સારણ, વારણ, પ્રતિ મોદના વગેરે જરા પણ કહેતો નથી, માટે સારણા રિહત ગચ્છમાં ક્ષણભર પણ રહેવું યુક્ત નથી. (૨૨)

तथाचागमः

नहि नत्थि सारणा वारणा य पडिचोयणा य गच्छंमि । सो उ अगच्छो गच्छो-संजमकामीहि मुत्तव्वो ॥ २३ ॥ उवगारी य दढ़ मिमो-अम्हाणं धम्मचरणहेउत्ता । मुत्तुं घित्तुं च इमं-जुत्त त्ति फुडं न याणामो ॥ २४ ॥ अहवा किं अम्हाणं-कारणरहिएण नीयवासेण । गुरुणो वेयावच्चे-पंथगसाहुं निउंजित्ता ॥ २५ ॥ एयंचिय पुच्छित्ता-विहरामो उज्जयावयं सव्वे । कालहरणंपि कीरइ-जा वेयइ एस अप्पाणं ॥ २६ ॥ सामत्थिऊण एवं-पंथगसाहुं ठवित्तु गुरुपासे । ते सव्वेविहु मुणिणो-अन्नत्थ सुहं पविहरंसु ॥ २७ ॥

पंथगमुणीवि गुरुणो-वेयावच्चं जहोचियं कुणइ । असवत्तजोगजुत्तो-सया अणूणं च नियकिरियं ॥ २८ ॥ कत्तियचाउम्मासे-सूरी भूतूण निद्धमहुराइं । परिहरियसयलकिच्चो-सुत्तो नीसट्ठसव्वंगो ॥ २९ ॥

જે માટે આગમમાં કહ્યું છે કે, જ્યાં સારણા, વારણા, અને પ્રતિબોધના ન હોય, તે ગચ્છને અગચ્છ ગણી સંયમાર્થિઓએ છોડી દેવો. (૨૩) તેમ આ આપણા ધર્માચરણનો હેતુ હોવાથી ઘણો ઉપકારી છે, માટે એને છોડવું કે, પકડી રહેવું યુક્ત છે, તે આપણે સ્પષ્ટપણે જાણી શકતા નથી. (૨૪) અથવા કારણ વિના નિત્ય વાસ કરવાનું આપણને શું કામ છે ? માટે એ ગુરૂના વેયાવચ્ચ સારૂ પંથક સાધુને ઇહાં રાખી, અને એની રજા લઇ આપણે બધા ઉદ્યત થઇ વિચરીએ, અને જ્યાં સુધી એ પોતાને ઓળખે, ત્યાં લગણ કાળ હરણ કરવું ઘટે છે. (૨૫-૨૬) એમ વિચારી પંથક સાધુને ગુરૂ પાસે મેલી, તે સર્વે મુનિઓ અન્ય સ્થળે સુખ સાથે વિચરવા લાગ્યા. [૨૭]

હવે પંથક મુનિ પણ ગુરૂનું યથોચિત વેયાવચ્ચ કરતો, તથા ઉત્તમ યોગમાં યુક્ત રહી પોતાની ક્રિયા પણ હમેશ પરીપૂર્ણ રીતે કરતો રહેતો. (૨૮) બાદ કાર્તિક ચોમાસાના દિને આચાર્ય સ્નિગ્ધ મધુર ખાઇને સઘળાં કામ છોડી સર્વાંગે લાંબો થઇને સૂતો. (૨૯) એવામાં આવશ્યક કરતાં ખામણા નિમિત્તે પંથક સાધુ વિનય નીતિમાં

आवस्सगं कुणंतो–पंथगसाहूवि खामणनिमित्तं । सीसेण तस्स पाए–आघट्टइ विणयनयनिउणो ॥ ३० ॥ तो कुविओ रायरिसि–जंपइ को एस अज्ज निल्लज्जो । पाए आघट्टंतो–निद्दानिग्घे मह पयट्टो ? ॥ ३१ ॥ रुट्ठं दट्ठुं सूरिं–महुरगिरं पंथगो इय भणेइ । चाउम्मासियखामण-कए मए दूमिया तुजवे ॥ ३२ ॥

ता एगं अवराहं–खमह न काहामि एरिसं बीयं । हुंति खमासीलच्चिय उत्तमपुरिसा जओ लोए ॥ ३३ ॥ इय पंथगमुणिवयणं–आयन्नंतस्स तस्स सूरिस्स । सूरुग्गमे तमंपिव–अन्नाणं दूर मोसरियं ॥ ३४ ॥ बहुसो निंदिय अप्पं–सविसेसं जायसंजमज्जोओ । खामेइ पंथगमुणिं–पुणो पुणो सुद्धपरिणामो ॥ ३५ ॥ बीयदिणे मडुगनिव–मापुच्छिय दोवि सेलगपुराओ । निक्खंता पारद्धा–उग्गविहारेण विहरेउं ॥ ३६ ॥ अवगय तव्वुत्तंता–संपत्ता सेसमंतिमुणिणोवि । विहरिय चिरं सुविहिणा–आरूढा पुंडरीयगिरिं ॥ ३७ ॥

નિપુણ હોઇ માથાવડે તેના પગે અડકયો. [૩૦] ત્યારે રાજર્ષિ ગુસ્સે થઈ બોલ્યો કે, આજે આ કોણ નિર્લજ મારા પગે અડકી મારી ઉંઘમાં ખલલ કરવા તૈયાર થયો છે ? [૩૧] ત્યારે સૂરિને ગુસ્સે થએલ જોઇ મધુર વાણીથી પંથક બોલ્યો કે, ચોમાસી ખામણા કરવા માટે મેં તમને દુભવ્યા છે. (૩૨)

માટે એક અપરાધ માફ કરો, ફરીને એવું નહિ કરું, કેમકે જગતમાં ઉત્તમ પુરૂષો ક્ષમા શીળજ હોય છે. (૩૩) એમ પંથક મુનિનું વચન સાંભળતાં, તે સૂરિને સૂર્ય ઉગતાં અંધારૂં નાશે, તેમ અજ્ઞાન દૂર નાઠું. [૩૪] હવે તે પોતાને બહુબહુ નિંદી વિશેષે સંયમમાં ઉદ્યુક્ત થઇ શુદ્ધ પરિણામે પંથક મુનિને ફરી ફરીને ખમાવવા લાગ્યો. [૩૫] બાદ બીજે દિને મડુગ રાજાને પૂછી, તે બંને શૈલકપુરથી નીકળી ઉગ્રવિહારે વિચરવા લાગ્યા. (૩૬) તે વૃત્તાંત જાણતાં શેષ મુનિઓ પણ તેમને આવી મળ્યા. હવે તેઓ વિધિપૂર્વક ચિરકાળ વિચરીને પુંડરીકગિરિ [સિદ્ધગિરિ] પર ચડયા. (૩૭)

दोमासकयाणसणो–सेलेसिं काउ सेलगमहेसी । पंचसयसमणसहिओ–लोयग्गठियं पयं पत्तो ॥ ३८ ॥

एवं पंथकसाधुवृत्तममलं श्रुत्वा चरित्रोज्वलं—
सज्ज्ञानादिगुणान्वितं गुरुकुलं सेवध्वमुच्चैस्तथा ।
भो भो साधुजना गुरोरपि यथा सत्संयमे सीदतो—
निस्ताराय कदाचन प्रभवत स्फुर्जद्गुणश्रेणयः ॥ ३९ ॥

॥ इति पंथकसाधुकथानकं ॥

(छ)

एवं कुर्वतः साधोर्गुणमाह.

॥ मूलं ॥

एवं गुरुबहुमानो—कयन्नुया सयलगच्छगुणवुड्ढी ।
अणवत्था परिहारो—हुंति गुणा एवमाईया ॥ १३३ ॥

ત્યાં બે માસનું અણસણ કરીને શૈલક મહર્ષિ શૈલેષીકરણ કરીને પાંચસો સાધુઓ સાથે મુક્તિપદ પામ્યો. [૩૮] એ રીતે ઉજ્વળ ચરિત્રવાળું પંથક સાધુનું નિર્મળ વૃત્તાંત સાંભળીને હે સાધુ જનો ! તમે સમ્યક્ જ્ઞાનાદિક ગુણવાળા ગુરૂકુળને એવી રીતે બરોબર સેવન કરો કે, જેથી ખરા સંયમમાં લથડતા ગુરૂને પણ કોઇ વેળા ઝળકતા ગુણોની શ્રેણિવાળા થઇ પાર પમાડી શકો. [૩૯]

એ રીતે પંથક સાધુનું કથાનક છે.

એમ કરતાં સાધુને શો ફાયદો થાય, તે કહે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

એમ કરતાં ગુરૂનું બહુ માન, કૃતજ્ઞતા, સકળ ગચ્છમાં ગુણની વૃદ્ધિ, અને અનવસ્થાનો પરિહાર, એ વગેરે ગુણો થાય છે. (૧૩૩)

(ટીકા)

एवं मूलगुणसमन्वितं गुरुमभ्युंचता सन्मार्गोद्यमं च कारयता यतिना गुरुबहुमानो मानसप्रीत्यतिशयः कृतोभवति, तथा कृतज्ञता चाराधिता भवति.—प्रधानश्चायं पुरुषस्य गुणो लोकेपि गीयते, तथाहि—

स कलाकलापकुशलः—स पंडितः सकलशास्त्रवेदी सः ।
निःशेषगुणगरिष्ठा—कृतज्ञता यं समाश्रयते ॥

लोकोत्तरेप्येकविंशतिगुणमध्येपतित एवेति.

तथा सकलगच्छस्य गुणानां वृद्धिराधिक्यं कृतं भवति, तथाहि—

सम्यगाज्ञावर्त्तिनो गच्छस्य गुरुर्ज्ञानादिगुणान् वर्द्धयत्येव. यदि पुनस्ते शिष्याः—

वाइया संगहीया य—भत्तपाणेहिं पोसिया ।
जायपक्खा जहाहंसा—पक्कमंति दिसो दिसिं ॥

ટીકાનો અર્થ.

એમ એટલે કે મૂળ ગુણ સહિત ગુરૂને નહિ મૂકતાં, તથા તેને સન્માર્ગમાં ઉદ્યમ કરાવતાં યતિએ ગુરૂનું બહુ માન એટલે માનસિક પ્રીતિનો ઉભરો દર્શાવેલો થાય, તથા કૃતજ્ઞતા થઈ ગણાય, અને પુરૂષનો આ એ ગુણ લોકમાં પણ પ્રધાન ગવાય છે. જે માટે કહેવાય છે કેઃ—

તેજ કળા કુશળ છે, તેજ પંડિત છે, અને તેજ સકળ શાસ્ત્રનો જાણ છે કે, જેને બધા ગુણોમાં મોટી કૃતજ્ઞતા વળગી રહે છે. વળી લોકોત્તરમાં પણ એ ગુણ એકવીશ ગુણોમાંજ આવેલો છે.

વળી સકળ ગચ્છના ગુણોની વૃદ્ધિ એટલે વધારો કર્યો ગણાય. તે આ રીતે કે—

૩ઠી રીતે આજ્ઞામાં વર્ત્તનાર ગચ્છના જ્ઞાનાદિ ગુણોને ગુરૂ વધારેજ, પણ જો તે શિષ્યો ભણાવ્યા, ગણાવ્યા, તથા ભાત પાણીથી પોષ્યા છતાં પાંખ આવેલા હંસની માફક

ततस्तान् खलुकप्रायानवबुध्य न केवलं न शिक्षयति गुरु,—स्तत्परित्यागं च विधत्ते—कालिकाचार्यवदिति.

तथा अनवस्था मर्यादाहानिस्तस्याः परिहारः कृतोभवति.—अयमभिप्रायो—य एकं गुरुं मूलगुणमहाप्रासादधरणस्तंभसंनिभमप्यल्पदोषदुष्टत्वेन मुंचति तस्मै अन्योपि न रोचते—कालानुभावादेव सूक्ष्मदोषाणां प्रायः परिहर्तुमशक्यत्वा,—त्ततश्चात्यरोचकतया—

इक्कस्स कओ धम्मो—सच्छंदगईमईपयारस्स ।
किंवा करेइ इक्को—परिहरऊ कह मकज्जं वा ॥ १ ॥
कत्तो सुत्तत्थागम—पडिपुच्छण चोयणा व इक्कस्स ।
विणओ वेयावच्चं—आराहणया व मरणंते ॥ २ ॥
पिल्लिज्जे सण मिक्को—पइन्नपमयाजणाउ निच्चभयं ।
काउमणोवि अकज्जं—न तरइ काऊण बहुमज्झे ॥ ३ ॥

દશે દિશાઓમાં ભાગી જાય તો, તેમને ખલુક જેવા ગણીને પ્રકૃત ગુરૂ શીખાવે નહિ, એટલુંજ નહિ, પણ તેમનો ત્યાગ પણ કરે છે. કાલિકાચાર્યની માફક.

વળી અનવસ્થા એટલે મર્યાદાની હાનિ, તેનો પરિહાર કરેલો થાય, એટલે કે, જે એક ગુરૂને તે મૂળ ગુણરૂપ મહા પ્રસાદ ધરી રાખવાને સ્તંભરૂપ હોવા છતાં અલ્પ દોષથી દુષ્ટ હોવાના કારણે છોડી દે છે, તેને બીજો પણ નહિ રૂચે. કેમકે કાળનો અનુભાવજ એવો છે કે, સૂક્ષ્મ દોષો પ્રાયે પરિહરવા મુશ્કેલ છે, તેથી તે અતિ અરોચકપણાથી.

સ્વચ્છંદ ગતિ અને મતિથી ચાલતા એકલાને ધર્મ ક્યાંથી હોય, વળી એકલો તે શું કરી શકે, તથા અકાર્યને કેમ તજી શકે ? (૧)

વળી એકલાને સૂત્રાર્થ ક્યાંથી આવે, તથા પ્રતિપૃચ્છના કે મોદના ક્યાંથી મળે ? તેમજ વિનય, વૈયાવૃત્ય, તથા મરણાંતે આરાધના પણ તે કેમ કરી શકે ? (૨) એકલો ફરે, તે એષણાને ભાંગે, અને છુટી પ્રરતી છકેલી સ્ત્રીઓનો તેને નિત્ય ભય રહે, પણ ગાઢાઓમાં રહેતાં અકાર્ય કરવા મન કરે, તોપણ તેને કરી શકે નહિ. (૩)

उच्चारपासवणवंत–पित्तमुच्छाइमोहिओ इक्को ।
सद्दवभाणविहत्थो–निक्खिवइ व कुणइ उड्डाहं ॥ ४ ॥
एगदिवसंमि बहुया–सुहाय असुहाय जीवपरिणामा ।
इक्को असुहपरिणओ–चइज्ज आलंबणं लध्धुं ॥ ५ ॥

इत्यादिना निषिद्धमप्येकाकित्वमालंबते,—तं च स्वेच्छाचारसुखितमालोक्यान्योपितदेवांगीकरो—त्येवंप्रकारानवस्था परिहृता भवति गुरुसेवकेनेति.—भवंति जायंते गुणा एवमादयोन्येपि गुरुग्लानबालवृद्धादीनां विनयवैयावृत्यकरणादयः सूत्रार्थागमस्मरणादयो भूयांस इति.

एतद्विपर्यये पुनः किंस्यादित्याह.

એકલો ખરચુ પિશાબમાં, વમનમાં અને પિત્તના ઉછાળાથી આવેલી મૂર્છામાં મુંઝાઇ પડે, તેમજ હાથમાં પીગળેલી ચીજનું વાસણ ઉપાડતાં કાંતો પાડી નાખે, અથવા તો ઉડ્ડાહ કરાવે. [૪] વળી એકજ દિવસમાં જીવને શુભ અશુભ પરિણામ આવતાં રહે છે, માટે અશુભ પરિણામ થતાં એકલો હોય,તો આલંબન પકડીને (સંયમને પણ વખતે) છોડી દે. (૫)

ઇત્યાદિક પ્રમાણેથી નિષેધેલા એકાદિપણાને પણ જો પકડે તો, તેને સ્વેચ્છાચારથી સુખીઓ થએલો જોઇ બીજો પણ તેમજ કરવા લાગે, એવી રીતની અનવસ્થા ગુરૂ સેવક થવાથી દૂર થાય છે. એ વગેરે બીજા પણ ગુરૂ ગ્લાન બાળવૃદ્ધાદિકના વિનય વેયાવચ્ચ વગેરે, તથા સૂત્રાર્થની પ્રાપ્તિ અને સ્મરણ વગેરે ઘણા ગુણો થાય છે.

પણ એથી ઉલટી રીતે ચાલતાં શું થાય, તે કહે છે.

॥ मूलं ॥

इहरा वुत्तगुणाणं–विवज्जओ तहय अत्तउक्कस्सो ।
अप्पच्चओ जणाणं–बोहिविघायाइणो दोसा ॥ १३४ ॥

(टीका)

इतरथा महाव्रतमहाभारोद्धारधौरेयकगुरुत्यागेनेत्यर्थः उक्तगुणानां गुरूबहुमानादीनां विपर्ययोऽबहुमानाकृतज्ञता सकलगच्छगुणावृध्यनवस्थादिदोषसद्भावः स्यादित्यर्थः.

तथात्मोत्कर्षश्चात्मनि सौष्ठवाभिमानश्चानर्थपरंपराकारणं गुरूकुलत्यागिनः स्यात्.

तथाऽप्रत्ययोऽविश्वासश्च जनानां लोकानां साधुविषयेस्या–द्यदुत परस्परविभिन्नानामन्योन्यानुष्ठानदूषकाणामेतेषां न ज्ञायते कोपि सत्यवा-

---

મૂળનો અર્થ.

ઇતરથા ઉક્ત ગુણોનો વિપર્યય થાય છે, પોતાનો ઉત્કર્ષ થાય છે, લોકોને અવિશ્વાસ થાય છે, અને બોધિનો વિઘાત થાય છે—એ વગેરે દોષ થાય છે. [૧૩૪]

ટીકાનો અર્થ.

ઇતરથા એટલે મહા વ્રતરૂપ મોટો ભાર ઉપાડવામાં ધોરી એવા ગુરૂનો ત્યાગ કરતાં ઉક્ત ગુણોનો વિપર્યય થાય છે, એટલે અબહુમાન, અકૃતજ્ઞતા, સકળ ગચ્છના ગુણોની અવૃદ્ધિ અને અનવસ્થા વગેરે દોષો થાય છે, તથા આત્મોત્કર્ષ એટલે પોતામાં હુશીયારીપણાનું અભિમાન, કે જે અનર્થની પરંપરાનું કારણ છે, તે ગુરૂકુળ ત્યાગિને રહે છે.

તથા લોકોને સાધુઓમાં અપ્રત્યય એટલે કે આ એ પરસ્પરમાં જુદા પડેલા, અને

द्यलीकवादी वेति. ततश्च को दोष इति चे–दुच्यते, बोधिविघातः प्रेत्य-जिनधर्मावाप्त्यभावः तेषां व्यलीकभाजां–तन्निमित्तभूतस्य यतेरपि.

आदिशब्दाद्भावपातश्च सम्यग्दर्शनग्रहणाभिमुखानां चारित्रग्रहणाभिमुखानां यस्मा,—देते दोषा दूषणानि गुरुत्यागकारिणां भवंतीति.

किंच यदि स्वल्पेपि प्रमादजनिते दोषलवे गुरवः परिहरणीया स्ततः सर्वेषामपि वर्जनीयत्वमायातं–यतः प्रवचनेनिर्ग्रंथाः पंचविधाः प्ररूपिता–स्तथाहि.—

गंथो मिच्छत्ताई धणाइओ अंतरो य बज्झो य । दुविहाउ तओ जे निग्गय त्ति ते हुंति निग्गंथा ॥ १ ॥ मिच्छत्तं[१] वेयतियं[४]–हासाई छक्कयं च[१०] नायव्वं । कोहाईण चउक्कं[१४]—चउदस अब्भिंतरा गंथा ॥ २ ॥ धण[१] धन्न[२] खित्त[३] कुवियं[४]–वत्थु[५] दुपय[६] कणय[७] रुप्प[८] चउचरणा[९] । भव बाहिरया गंथा–एवं ते हुंति पुण पंच ॥ ३ ॥

એકમેકના અનુષ્ઠાનને દોષિત ઠરાવનારાઓમાં કોણ સાચો, અને કોણ ખોટો તે, તે જણાતું નથી, એમ અવિશ્વાસ થાય છે. વારૂ, તેથી શો દોષ છે ? તેનો એ જવાબ છે કે, તેથી બોધિ વિઘાત એટલે પરભવે જિન ધર્મની પ્રાપ્તિનો અભાવ તે જુઠાને સેવનારાઓને થાય છે, તથા તેના નિમિત્તભૂત યતિને પણ બોધિ વિઘાત થાય છે.

આદિ શબ્દથી સમ્યકત્વ લેવા અભિમુખ અને ચારિત્ર લેવા અભિમુખ થએલાનો ભાવપાત થાય છે [ભાવ પડી જાય છે]. એ દોષો ગુરૂ ત્યાગકારીને થાય છે.

વળી જો પ્રમાદજનિત થોડા એક દોષ લવથી ગુરૂ પરિહરણીય થતા હોય, તો સઘળાઓને વર્જનીયપણું પ્રાપ્ત થશે. જે માટે પ્રવચનમાં પાંચ પ્રકારના નિર્ગ્રંથ કહેલા છે. તે આ રીતે કે:—

અંતરનો ગ્રંથ તે મિથ્યાત્વાદિક છે, અને બાહ્યનો ગ્રંથ તે ધનાદિક છે, તે બેથી જે નિર્ગત હોય, તે નિર્ગ્રંથ છે. [૧] મિથ્યાત્વ, ત્રણ વેદ, હાસ્યાદિ ષટ્ક, અને ક્રોધાદિ ચતુષ્ક, એમ ચૌદ અભ્યંતર ગ્રંથ છે. [૨] ધન, ધ્યાન, ક્ષેત્ર, કુપ્ય, વસ્તુ, દ્વિપદ, સોનું, રૂપું, ચતુષ્પદ, એ નવ બાહ્ય ગ્રંથ છે, અને પાંચ નિર્ગ્રંથ તે આ રીતે છે:—

होइ पुलाओ[1] बउसो[2]–तहा कुसीलो[3] नियंठय[4] सिणाओ[5] । तत्थ पुलाओ दुविहो–लद्धिपुलाओ तहा सेवे ॥ ४ ॥

अन्यत्राप्युक्तं—

धन्न मसारं भन्नइ–पुलायसद्देण जस्स तेण समं । चरणं सोहु पुलाओ–लद्धीसेवाहिं सोय दुहा ॥ ५ ॥

तत्र,

लद्धिपुलाओ संघाइ–क्कज्जओ चक्किसिन्नमवि चूरे । सो हरिसम-अहियसिरी व होइ इयरो उ पंचविहो ॥ ६ ॥ दंसणनाणपुलाओ—संकाकालाइएहि त मसारं । मूलुत्तरगुणसेवं–चरणपुलाओ पुण करेइ ॥ ७ ॥ लिंगपुलाओ निक्कारणं तु जो गिण्हए य परलिंगं । किंचि पमाया मणसा अकप्पगहणे अहासुहुमो ॥ ८ ॥ उवगरण सरीरेसुं—बउसो दुविहो दुहावि पंचविहो । आभोग[1] मणाभोगे[2]–संवुड[3] मस्संवुडे[4]

---

[૩] પુલાક, બકુશ, કુશીલ, નિર્ગ્રંથ અને સ્નાતક. ત્યાં પુલાક બે પ્રકારનો છેઃ—લબ્ધિ પુલાક અને આસેવના પુલાક. (૪)

બીજા સ્થળે પણ કહ્યું છે કે—

અસાર ધાન્ય તે પુલાક કહેવાય છે, માટે તેના સરખું જેનું ચરિત્ર હોય, તે પુલાક જાણવો. તે લબ્ધિ અને આસેવનાથી બે પ્રકારે છે. (૫)

ત્યાં લબ્ધિ પુલાક સંઘાદિના કામે ચક્રવર્તિના સૈન્યને પણ ચૂરી નાખે, અને ઇંદ્ર માફક અધિક શ્રી [કાંતિ] વાળો હોય છે. આસેવના પુલાક પાંચ પ્રકારનો છેઃ—[૬] દર્શન પુલાક દર્શનને શંકા વગેરેથી અને જ્ઞાન પુલાક જ્ઞાનને કાળાદિકથી અસાર કરે છે; અને ચરણ પુલાક મૂળ તથા ઉત્તર ગુણની પ્રતિસેવા કરે છે. [૭] લિંગ પુલાક તે એ કે, જે નિષ્કારણ પરાયું સ્વીકારે, અને યથાસૂક્ષ્મ પુલાક તે એ કે, જે કાંઇક પ્રમાદથી મનવડે અકલ્પનું ગ્રહણ કરે છે. [૮] ઉપકરણ બકુશ અને શરીર બકુશ, એમ બકુશ બે પ્રકારે છે, તે બેના વળી પાંચ પ્રકાર છેઃ—આભોગ, અનાભોગ, સંવૃત, અસં-

સુહુમે[૫] ॥ ૯ ॥ આસેવણા કસાએ–દુહા કુસીલો દુહાવિ પંચવિહો । નાણે દંસણચરણે–તવે ય અહસુહુમએ ચેવ ॥ ૧૦ ॥

ઇહ નાણાઇકુસીલો–ઉવજીવં હોઇ નાણમાઈણિ । અહસુહુમો પુણ તુસ્સં–એસ તવસ્સિત્તિ સંસાએ ॥ ૧૧ ॥ ઉવસામગો ય ખવગો–દુહા નિયંટ્ઠો દુહાવિ પંચવિહો । પઢમસમઓ[૧] અપઢમો[૨]–ચરમા[૩] ચરમો[૪] અહાસુહુમો[૫] ॥ ૧૨ ॥ ચાવિજ્જઇ અટ્ઠસયં [૧૦૮]–ખવગાણુવસામગાણ ચઉપન્ના [૫૪] ઉક્કોસઓ જહન્નેણિક્કો વ દુગં વ તિગં મહેવા ॥ ૧૩ ॥ સુહઝાણજલવિસુદ્ધો–કમ્મમલાવિક્ખયા સિણાઉ ત્તિ । દુવિહોય સો સજોગી—તહા અજોગી વિણિદ્દિટ્ઠો ॥ ૧૪ ॥ મૂલુત્તરગુણવિસયા–પડિસેવા સેવએ કુસીલો ય । ઉત્તરગુણેસુ લઉસો–સેસા પડિસેવણા રહિયા ॥ ૧૫ ॥ [ઇતિ]

એસુ ચ નિયમેનાપ્રમાદિનોનિર્ગ્રંથાઃ સ્નાતકાશ્ચ. કિંતુ તે કદાચિ-

---

વૃત, અને સૂક્ષ્મ. (૯) આસેવના કુશીળ અને કષાય કુશીળ એમ કુશીળના બે ભેદ છે, તે બેના વળી પાંચ પ્રકાર છેઃ—જ્ઞાન, દર્શન ચારિત્ર, તપ, અને યથા સૂક્ષ્મ. (૧૦)

અહીં જ્ઞાનાદિ કુશીળ જ્ઞાન વગેરેથી આજીવિકા કરે છે, અને યથા સૂક્ષ્મ તે જે " આ તપસ્વી છે. " એવી પ્રશંસાથી રાજી થાય, તે જાણવો. (૧૧) ઉપશામક અને ક્ષમક એમ નિર્ગ્રંથ બે પ્રકારે છે, તે બેના પાંચ પ્રકાર છેઃ—પ્રથમ સમય, અપ્રથમ, ચરમ, અચરમ, અને યથા સૂક્ષ્મ. (૧૨) ક્ષમક ઉત્કૃષ્ટા એકસો આઠ હોય, અને ઉપશામક ચોપન હોય. જઘન્યથી એક, બે, કે ત્રણ હોય. [૧૩] શુભ ધ્યાનરૂપ જળથી કર્મ મળને ક્ષય કરી વિશુદ્ધ થાય, તે સ્નાતક. તે બે પ્રકારે છેઃ—સયોગી અને અયોગી. [૧૪] કુશીળ મૂળ અને ઉત્તર ગુણ એ બંનેની પ્રતિસેવા સેવે છે, બકુશ ઉત્તર ગુણમાં પ્રતિસેવા સેવે છે, અને બાકીના પ્રતિસેવા રહિત છે. [૧૫]

એઓમાં નિર્ગ્રંથ અને સ્નાતક નિયમા અપ્રમાદિ હોય છે. પરંતુ તેઓતો કદાચજ

देव श्रेणिमस्तकारोहणे सयोग्ययोगिगुणस्थानकयुगले च संभवंतीति न तीर्थप्रवाहहेतवः पुलाकोपि कदाचिदेव लब्धिसद्भावे संभवती-त्येते च त्रयोपि संप्रतिव्यवच्छिन्ना-स्ततो बकुशकुशीला एव निरंतरतीर्थप्रवाहहे-तव-स्तथाचोक्तं.

निग्गंथसिणायाणं-पुलागसहियाणं तिण्ह वुच्छेओ,
सयणा वउसकुसीला-जा तित्थ ताव होहिंति.

तेषां चावश्यंभाविनः प्रमादजनिता दोषलवा-यदि तैः साधुर्व-र्जनीय-स्ततः सर्वेषामपि परिहरणीयता समायातेत्येतदेव चेतस्याधाय सूत्रकारः प्राह.

॥ मूलं ॥

बकुसकुसीला तित्थं-दोसलवा तेसु नियमसंभविणो।
जइ तेहि वज्जणिज्जो-अवज्जणिज्जो तओ नत्थि॥ १३५॥

હોય છે, એટલે કે શ્રેણિપર ચડતાં, અને સયોગિ અયોગિરૂપ બે ગુણ ઠાણામાં હોય છે, તેથી તેઓ તીર્થ વહેવાના હેતુ નથી. પુલાક પણ કયારેકજ લબ્ધિ હોય, ત્યારેજ હોય. માટે એ ત્રણે હાલ વિચ્છિન્ન થયા છે, તેથી બકુશ અને કુશીળજ નિરંતર તીર્થ પ્રવાહના હેતુ છે. તે માટેજ કહેલું છે કે—

નિર્ગ્રંથ, સ્નાતક, અને પુલાક એ ત્રણનો વિચ્છેદ છે. બકુશ, કુશીળ સાધુઓ તીર્થ પર્યંત થતા રહેશે.

હવે એમને તો પ્રમાદજનિત દોષ અવશ્ય લાગે છે, માટે જો તેથી સાધુ વર્જ-નીય હોય, તો બધા વર્જનીય થઇ પડશે. એ વાત મનમાં લાવીને સૂત્રકાર કહે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

બકુશ અને કુશીળો તીર્થ છે, અને તેઓમાં તો દોષના લવ અવશ્ય સંભવે, માટે જો તેમનાવડે તે વર્જનીય હોય, તો અવર્જનીય કોઇજ રહેશે નહિ. (૧૩૫)

[ટીકા]

બકુશકુશીલા વ્યાવર્ણિતસ્વરુપાઃ–તિસ્થંતિ ભામા સત્યભામેતિ ન્યાયાત્–સર્વતીર્થકૃતાં તીર્થસંતાનકારિણઃ સંભવંતિ અતએવદોષલવાઃ સૂક્ષ્મદોષાસ્તેષુ બકુશકુશીલેષુ નિયમસંભવિનો, યતસ્તેષાં દ્વે ગુણસ્થાનકે પ્રમત્તાપ્રમત્તાખ્યે અંતર્મુહૂર્ત્તકાલાવસ્થાયિની. તત્ર યદા પ્રમત્તગુણસ્થાનકે વર્ત્તતે–તદાપ્રમાદમાદસદ્ભાવાદવશ્યંભાવિનઃ સૂક્ષ્મા દોષલવાઃ સાધોઃ પરં યાવત્ સપ્તમપ્રાયશ્ચિત્તાપરાધમાપનીપદ્યતે તાવત્ સ ચારિત્રવાનેવ–તતઃપર મચારિત્રઃ સ્યાત્.—તથાચોક્તં—

જસ્સ હુ જા તવદાણં–તા ત્રય મેગંપિ નો અઇક્કમઇ,
એગં અઇક્કમંતો–અઇક્કમે પંચ મૂલેણં. (ઇતિ)

તદેવં બકુશકુશીલેષુ નિયમભાવિનો દોષલવા, યદિ તૈર્વર્જનીયો-યતિઃ સ્યા, દવર્જનીય સ્તતોનાસ્ત્યેવ. તદભાવે તીર્થસ્યાપ્યભાવપ્રસંગઇતિ.

ટીકાનો અર્થ.

ઉપર વર્ણવેલાં બકુશ અને કુશીલો તીર્થ એટલે—ભામા તે સત્યભામા, એ ન્યાયે સર્વ તીર્થંકરોના તીર્થ સંતાન કરનારા સંભવે છે, એટલા માટેજ તેઓમાં દોષલવ એટલે સૂક્ષ્મ દોષો નિયમા સંભવે છે. કેમકે તેમના પ્રમત્ત અને અપ્રમત્ત નામે અંતર્મુહૂર્ત્ત કાળના બે ગુણ સ્થાનક છે, ત્યાં જ્યારે પ્રમત્ત ગુણ સ્થાનમાં વર્ત્તતાં હોય, તે વેળા સાધુને પ્રમાદનો છાક કાયમ હોવાથી સૂક્ષ્મ દોષલવ અવશ્ય લાગે છે, પણ જ્યાં લગી સાતમા પ્રાયશ્ચિતનો અપરાધ હોય, ત્યાં લગી તે ચારિત્રીયોજ છે, ત્યાર બાદ અચારિત્રી થાય. જે માટે કહેલું છે કે—જેને જ્યાં લગી તપ પ્રાયશ્ચિત આવે, ત્યાં લગી તે એક વ્રતને પણ અતિક્રમતો નથી, પણ મૂળ પ્રાયશ્ચિત આવતાં એક વ્રતને અતિક્રમતાં, પણ પાંચે વ્રતને અતિક્રમ્યો જાણવો.

એ રીતે બકુશ અને કુશીલોમાં દોષલવ નિયમભાવિ છે, તેથી જો તે વડે યતિ વર્જનીય હોય તો, અવર્જનીય કોઇ રહેશેજ નહિ. અને તેના અભાવે તીર્થનો પણ અભાવ થઇ પડશે.

अस्योपदेशस्य फलमाह.

॥ मूलं ॥

इय भावियपरमत्था-मज्झत्था नियगुरुं न मुंचंति ।
सव्वगुणसंपओगं-अप्पाणंमि वि अप्पिच्छंता ॥ १३६ ॥

[टीका]

इति पूर्वोक्तप्रकारेण भावितो मनसि परिणामितः परमार्थो यथावस्थितपक्षो यैस्ते भावितपरमार्था मध्यस्था अपक्षपातिनो निजगुरुं धर्माचार्यं मूलगुणमुक्तामाणिक्यरत्नाकरं न मुंचंति नैव व्युत्सृजंति सर्वगुणसंप्रयोगं समग्रगुणसामग्रीमात्मन्यप्यपश्यंतोऽनवलोकयंत इति.

अन्यच्च गुरुत्यागकारी निश्चितं गुरोरवज्ञां विधत्ते-ततश्चानर्थमागमस्मारणेन दर्शयन्नाह.

આ ઉપદેશનું ફળ કહે છે.

મૂળનો અર્થ.

આ રીતે પરમાર્થને સમજેલા મધ્યસ્થ જનો પોતાના ગુરૂને મૂકતા નથી. કેમકે સર્વ ગુણોનો યોગ પોતામાં પણ તેઓ દેખતા નથી. [૧૩૬]

ટીકાનો અર્થ.

આ રીતે એટલે પૂર્વોકત પ્રકારે પરમાર્થ એટલે ખરેખરી વાતને ભાવનાર એટલે મનમાં પરણુમાવનારા અને મધ્યસ્થ એટલે અપક્ષપાતિજનો પોતાનો ગુરૂ જે મૂળ ગુણરૂપ મોતીનો દરિઓ છે, તેને બિલકુલ નથી છોડતા. (કેમકે) સર્વ ગુણ સંપ્રયોગ એટલે સઘળા ગુણની સામગ્રી પોતામાં પણ નથી દેખાતી.

વળી ગુરૂનો ત્યાગ કરનાર નિયમા ગુરૂની અવજ્ઞા કરે છે, અને તેથી અનર્થ થાય છે, તે આગમના પુરાવાથી બતાવે છે.

॥ मूलं ॥

एयं अवमन्नंतो—वुत्तो सुत्तंमि पावसमणु त्ति ।
महमोहबंधगो विय—खिंसंतो अप्पडितप्पंतो ॥ १३७ ॥

(टीका)

एतं प्रस्तुतगुरुमवमन्यमानो हीलयन् साधुरिति गम्यते भणित उक्तः सूत्रे सिद्धांते श्रीमदुत्तराध्ययन इत्यर्थः पापश्रमणः कुत्सितयतिरिति रुपदर्शने.

तच्चेदं सूत्रं.

आयरियउवज्झाएहि-सुयं विणयं च गाहिए ।
ते चेव खिंसइ बालो-पावसमणु त्ति वुच्चइ ॥ १ ॥

મૂળનો અર્થ.

એવા ગુરૂને હીલનાર, નિંદનાર, તથા તેની સંભાળ નહિ લેનારને સૂત્રમાં પાપશ્રમણ તથા મહા મોહનો બાંધનાર કહ્યો છે. (૧૩૭)

ટીકાનો અર્થ.

એને એટલે પ્રસ્તુત ગુરૂને અવમાનનાર એટલે હીલનાર, સાધુ સૂત્રમાં એટલે શ્રી ઉત્તરાધ્યયનમાં પાપશ્રમણ એટલે નીચ યતિ કહેલ છે.

તે સૂત્ર આ છે.

જે આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયોએ શ્રુત અને વિનય શીખવ્યાં, તેમનેજ જે બાળ ખિંસે છે, તે પાપશ્રમણ કહેવાય છે. ૧

आयरियउवज्झायाणं–सम्मं नो पडितप्पइ ।
अपडिपूयए थद्धे–पावसमणु त्ति वुच्चइ ॥ २ ॥

तथा महामोहबंधकः प्रकृष्टमिथ्यात्वोपार्जकश्चा–पिशब्दः सूत्रांतरं सूचयति–किं कुर्वन् ?–खिंसंतो त्ति निंदां कुर्वन्, अपडितप्पंतुत्ति तेषां वैयावृत्त्यादावादरमकुर्वन्निति.

सूत्रांतरे चावश्यके त्रिंशत्सु मोहनीयस्थानेष्वेवं पठयते.

आयरिय उवज्झाए–खिंसइ मंदबुद्धिए ।
तेसिमेवय नाणीणं–संमं नो पडितप्पइ ॥

(क्रियापदं चांते " महामोहं पकुव्वइ " त्ति भणितमिति).

आह—गुरोः सामर्थ्याभावे यदि शिष्योधिकतरं यतनातपःश्रुताध्ययनादि करोति–तत्किंयुक्तमाहोश्विद् गुरोर्लाघवहेतुत्वान्नयुक्त ? मित्यत्रोच्यते.

આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયની જે રૂડી રીતે સેવા ભક્તિ નહિ કરે, પૂજા નહિ કરે, અને સ્તબ્ધ બની રહે, તે પાપશ્રમણ કહેવાય છે. ૨

વળી તેમની ખિંસા એટલે નિંદા કરતો થકો, તથા પ્રતિતર્પણ એટલે વેયાવચ્ચ વિગેરેમાં આદર નહિ કરતો થકો મહામોહ એટલે ભારે મિથ્યાત્વ પણ બાંધે છે. અપિ શબ્દ સૂત્રાંતરનો પુરાવો બતાવે છે.

જે માટે સૂત્રાંતરમાં એટલે આવશ્યક નિર્યુક્તિમાં ત્રીશ મહા મોહનીયના સ્થાનોમાં આ રીતે કહેવાય છે.

જે મંદ બુદ્ધિ પુરૂષ આચાર્ય અને ઉપાધ્યાયની નિંદા કરે, તથા તે જ્ઞાનિઓની રૂડી રીતે વેયાવચ્ચ ભક્તિ નહિ કરે, તે (મહામોહ બાંધે છે).

મહામોહ બાંધે છે, એ ક્રિયાપદ લાં અંતમાં કહેલ છે.

કોઇ પૂછશે કે, ગુરૂ અસમર્થ છતાં તેનો શિષ્ય જે અધિકતર યતના, તપ, તથા શ્રુતાધ્યયન વગેરે કરે, તો તે યુક્ત છે, કે ગુરૂની લઘુતા થવાનાં કારણથી અયુક્ત છે ?

गुर्वनुज्ञया युक्तमेव-गुरोर्गौरवहेतुत्वाद्-भवति च गुणाधिके विनेये गुरोर्गौरवं, श्रीवज्रस्वामिनि सिंहगिरिगुरोरिव.

तथाहि.

पुरा सिंहगिरेः सूरे-र्विनेयो विनयास्पदं। अज्ञानगुरुभूमीभृ-द्वज्राभो वज्र इत्यभूत् ॥ १ ॥ अबालधीः स बालोपि-संयत्युपाश्रयाश्रयी । एकादशांगीमध्येष्ट-पदानुसृतिलब्धियुक् ॥ २ ॥

अष्टाब्दो गच्छमध्यस्थो-यद्यत् पूर्वगताद्यपि । पाप्यमानमशौषी-त्तत्तज्जग्राह लीलया ॥ ३ ॥ पठंति स्थविराः प्राहु-र्यदि वज्रं तदा च सः । उद्गृणन्नस्फुटं किंचित्-शुश्राव पठतो परान् ॥ ४ ॥ परेद्यवि दिवामध्ये-भिक्षार्थं भिक्षवो ययुः । बहिर्भूमौ गुणग्राम-गुरवो गुरवोप्यगुः ॥ ५ ॥ तस्थौ तु वज्र एकाकी-वसतौ सोथ वेष्टिकाः । वि-

---

તેનો ઉત્તર એ છે કે, ગુરૂની અનુજ્ઞાએ તે યુક્તજ છે. કેમકે તે તો ગુરૂના ગૌરવનુંજ કારણ છે. જે માટે શિષ્ય અધિક ગુણી થતાં ગુરૂનું ગૌરવજ થાય છે. શ્રીવજ્ર સ્વામિ થતાં સિંહગિરિ ગુરૂની માફક.

વજ્રસ્વામિની કથા આ રીતે છે.

પૂર્વે સિંહગિરિસૂરિનો વિનીત અને અજ્ઞાનરૂપ મહાપર્વતને તોડવા વજ્ર સમાન વજ્ર નામે શિષ્ય હતો. (૧) તે બાળક છતાં બાળ બુદ્ધિ રહિત હોઇ, સાધ્વીઓના ઉપાસરે રહ્યો થકો પદ્માનુસારિ લબ્ધિથી અગ્યાર અંગ શીખ્યો. (૨)

તે આઠ વર્ષનો થતાં ગચ્છમાં રહી જે જે પૂર્વગતાદિક ભણવું સાંભળતો, તે રમતમાં શીખી લેતો. [૩] વજ્રને જ્યારે સ્થવિરો " ત્રણ " એમ કહેતા, ત્યારે તે કંઇક અસ્ફુટ ઉચ્ચાર કરતો થકો બીજા ભણનારાઓને સાંભળતો. (૪) એક વેળા દિવસના વખતે સાધુઓ ભિક્ષાર્થે ગયા હતા, અને ગુણગ્રામથી મહાન્ ગણાતા ગુરૂ પણ બહિર્ભૂમિએ ગએલા હતા. (૫) તેવામાં તે વસતિમાં વજ્ર એકલો હતો, એટલે તેણે

न्यस्य साधुमंडल्यां-स्वयं मध्ये निषद्य च ॥ ६ ॥ एकादशानामंगाना-मपि पूर्वगतस्य च । वाचनां दातुमारेभे-मेघगंभीरयागिरा ॥ ७ ॥

व्याघुट्य सूरयेथागुः-श्रुत्वा गहगहस्वरं । दध्युरित्याक्तभिक्षाकाः-किमीयुर्मक्षुभिक्षवः ? ॥ ८ ॥ विमर्शं च वितन्वानाः-क्षणादज्ञाशिषन् यथा । अये वज्रमुनेरेष-वाचनां ददतो ध्वनिः ॥ ९ ॥ पुराभवे किं-मेतेना-ध्यापि गर्भस्थितेन वा । एवं व्यचिंतयन्मौलिं-धुन्वाना विस्मया-न्मुहुः ॥ १० ॥ अस्यास्मच्छ्रवणाच्छंका-माभूदिति विचिंत्य ते । अपसृत्य शनैरुच्चै-श्चक्रुर्नैषेधिकीं ततः ॥ ११ ॥ तामाकर्ण्य सुनंदासू-र्झगित्युत्थाय विष्टरात् । कृतहस्तोऽमुचत् सर्वाः-स्वस्वस्थानेषु वेष्टिकाः ॥ १२ ॥

समेत्य च गुरोर्दंड-माददेंहीममार्ज च । प्राशुकेनाथ नीरेण-स्वयं प्राक्षालयत् पदौ ॥ १३ ॥ एवं च दध्युराचार्या-विद्यावृद्धोर्भकोप्यसौ ।

વીંટણાઓને સાધુમંડળીમાં પાથર્યા, અને પોતે તેમના વચ્ચે બેસીને, [૬] તે મેઘની માફક ગંભીર વાણીથી અગ્યાર અંગ તથા પૂર્વગત શ્રુતની વાચના દેવા લાગ્યો. [૭]

એવામાં આચાર્ય વળી આવ્યા. તેઓ ગલગલ થતી સાંભળીને વિચારવા લાગ્યા કે, શું ભિક્ષુઓ ભિક્ષા લઇ જલદી આવી પહોંચ્યા છે કે ? (૮) એમ વિચાર કરતા થકા તરતમાં તેમને માલમ પડ્યું કે, અરે એ તો વાચના આપતા વજ્રમુનિની ધ્વનિ છે. [૯] શું એ પૂર્વ ભવે શીખ્યો હશે, કે ગર્ભમાં રહી શીખ્યો હશે ? એમ વિસ્મયથી વારંવાર માથું ધુણાવતા થકા ચિંતવવા લાગ્યા. [૧૦] બાદ તેમણે વિચાર્યું કે, અમારા સાંભળવાથી એને ગભરાટ ન થાઓ, એમ વિચારી ધીમેથી પાછા હઠી ઉંચા સ્વરે તેમણે નિસ્સીહી કરી. [૧૧] તે સાંભળીને સુનંદા સુત [વજ્ર] ઝટ આસનથી ઉઠી ચાલાક હાથે સઘળા વીંટણાઓ જ્યાં હતાં, ત્યાં મેલતો હવો. (૧૨)

બાદ તે સામે આવી ગુરુનો દાંડો લઇ પગ પ્રમાર્જી પ્રાશુક પ્રાણીથી પખાળવા લાગ્યો. [૧૩] ત્યારે આચાર્ય વિચાર કરવા લાગ્યા કે, આ બાળક છતાં પણ વિદ્યાવૃદ્ધ

अजानद्भ्योन्यसाधुभ्यो–रक्ष्योवज्ञास्पदीभवन् ॥ १४ ॥ एवं विमृश्य-यामिन्यां–शिष्येभ्योऽकथयन्निति । गंतास्मः श्वोमुकं ग्रामं–द्वित्राहं तत्र नः स्थितिः ॥ १५ ॥ अथोचुर्मुनयो योग–प्रपन्ना, वाचनप्रदः । को नो भावीत्यथो सूरि–र्वज्र इत्यादिशत् पुनः ॥ १६ ॥ ऋजवस्ते विनीताश्च–तत्तथैव प्रपेदिरे । न संतो जातु लंघंते–गुर्वाज्ञां भद्रदंतिवत् ॥ १७ ॥

प्रातः कृत्वानुयोगस्य–सामग्रीं–ते गते गुरौ । वज्रर्षिं गुरुवद्भक्त्या–निषद्यायांन्येषदयन् ॥ १८ ॥ ततो वज्रमुनिर्ज्ञान–कंदकंदलनांबुदः । आनुपूर्व्या महर्षीणां–तेषामालापकान् ददौ ॥ १९ ॥ ये मंदमेधसस्ते-ष्व–प्यभूद्वज्रे ह्यमोघवाक् । तद्वीक्ष्य नव्यमाश्चर्य–गच्छः सर्वो विसि-स्मिये ॥ २० ॥ आलापन्मुनयः पूर्व–पठितान् निस्तुषानपि । संवादहे-तवेऽपृच्छन्–सोपि व्याख्यात्तथैवतान् ॥ २१ ॥ ये यावत् सूरितो ने-क–वाचनाभिरधीयिरे । पेठुर्वज्राच्छ्रुतं ताव–देकवाचनयापि ते ॥ २२ ॥

છે, માટે બીજા સાધુઓ અજાણતા રહી એવી અવજ્ઞા કરે, તેમ ન થવું જોઇએ. [૧૪] એમ વિચારીને તેમણે રાતે શિષ્યોને કહ્યું કે, કાલે અમારે અમુક ગામે જવું છે, અને ત્યાં બે ત્રણ દિન રહેવું થશે. [૧૫] ત્યારે યોગ વહેનાર મુનિઓ બોલ્યા કે, ત્યાં લગણ અમને વાચના કોણ આપશે ? આચાર્યે ફરમાવ્યું કે, વજ્ર આપશે. [૧૬] તે મુનિઓ સરલ અને વિનીત હોવાથી ગુરૂની તે વાતને તહત કરી કબુલતા હવા. કેમકે ભદ્ર હાથીની માફક સજ્જનો ગુરૂની આજ્ઞાને કદાપિ ઉલ્લંઘતા નથી. (૧૭)

હવે ગુરૂ રવાના થતાં પ્રભાતે અનુયોગની સામગ્રી કરી, તેમણે વજ્રર્ષિને ગુરૂ માફક ભક્તિથી નિષદ્યા (આસન) પર બેસાડ્યો. [૧૮] ત્યારે વજ્રમુનિ જ્ઞાનરૂપ કંદને વધારવા મેઘ સમાન હોઇ, અનુક્રમે તે મહર્ષિઓને આલાવા દેવા લાગ્યો. [૧૯] ત્યારે જે મંદ બુદ્ધિવાળા હતા, તેમના પ્રત્યે પણ વજ્રની વાણી સફળ થવા લાગી. તે નવું આશ્ચર્ય જોઇને તમામ ગચ્છ વિસ્મય પામ્યો. (૨૦) આ વેળા મુનિઓ પૂર્વે શીખીને ચોખ્ખા કરેલા આલાવાઓને સંવાદ જોવા ખાતર પૂછવા લાગ્યા, ત્યારે વજ્ર તેમની તેજ રીતે વ્યાખ્યા કરી. (૨૧) વળી જેઓ આચાર્ય પાસેથી જેટલું અનેક વાચનાઓ વડે

अथोचुः साधवो हृष्टा–विलंबेत गुरूर्यदि । वज्रांतिके तदाश्वेष–श्रुतस्कंधः समाप्यते ॥ २३ ॥ धन्याः स्मः कृतकृत्याः स्मः–पुण्यान्युज्जागराणि नः । यदेष वाचनाचार्यो–वज्रोऽस्माभिरलभ्यत ॥ २४ ॥ श्रीमंतो गुरवोस्माक–मेते धन्यतमा भुवि । शिष्योयं विजयी येषां–सर्वश्रुतनिवासभूः ॥ २५ ॥ विनेयेना मुना दत्त–हस्तालंबा शनैः शनैः । श्रीमद्गुरोः प्रवृद्धापि–कीर्त्तिर्भ्राम्यतु विष्टपे ॥ २६ ॥ अथेयद्भिर्दिनैर्वज्रो–भावी ज्ञातगुणः खलु । मुनीनामपि, मत्वेयु–र्मुदितास्तत्र सूरयः ॥ २७ ॥

मुनयस्तानवंदंत–भक्तिभाजोऽथ सूरिभिः । पृष्टाः स्वाध्यायनिर्वाहं–शशंसुस्तेयथास्थितं ॥ २८ ॥ नत्वाभूयोपि ते शिष्या–गुरुमेवं व्यजिज्ञपन् । भगवन् वाचनाचार्यो–वज्र एवास्तु नः पुनः ॥ २९ ॥ गुरुर्बभाषे सर्वेषा–मेष भावी गुरुः क्रमात् । किंतु मान्योऽधुनाप्युच्चै–र्गु-

---

ભણ્યા હતા, તેઓ વજ્રમુનિ પાસેથી તેટલું એક વાચનામાં શીખવા લાગ્યા. (૨૨)

હવે સાધુઓ હર્ષિત થઇ અરસપરસમાં કહેવા લાગ્યા કે, જો ગુરૂ મોડા આવે, તો વજ્રના પાસે આ શ્રુતસ્કંધ જલદી સમાપ્ત થઇ જાય. [૨૩] વળી આપણે ધન્ય અને કૃતકૃત્ય થયા છીએ, અને આપણાં પુણ્ય જાગતાં છે કે, જેથી આપણે આ વજ્ર વાચનાચાર્ય મેળવ્યો છે. (૨૪) વળી આ પૃથ્વીપર આપણા શ્રીમાન્ ગુરૂ તો સૌથી વધુ ભાગ્યવાન્ છે કે, જેમને આવો સર્વ શ્રુતનો નિવાસ ઘર અને વિજયી શિષ્ય છે. (૨૫) આ શિષ્યના હાથનો ટેકો પામીને શ્રીગુરૂની વૃદ્ધ થએલી કીર્તિ, હવે હળવે હળવે (આખા) જગતમાં ભમશે. [૨૬] હવે ગુરૂએ ધાર્યું કે, આટલા દિવસોમાં મુનિઓને વજ્રના ગુણ જણાઇ રહ્યા હશે, એમ ધારી તેઓ આનંદિત રહી, ત્યાં પાછા આવ્યા. (૨૭)

ત્યારે ભક્તિ ધરીને મુનિઓએ તેમને વાંદ્યા એટલે સૂરિએ સ્વાધ્યાયના નિર્વાહ માટે પૂછતાં, તેઓએ જેમ બન્યું હતું, તેમ કહ્યું. [૨૮] અને ફરીને ગુરૂને નમીને તેઓ વીનવવા લાગ્યા કે, હે ભગવન્ ! વજ્રજ અમારા વાચનાચાર્ય થાઓ. [૨૯] ગુરૂ બોલ્યા કે, વખત આવતાં એ સર્વેનો ગુરૂ થશે, અને હાલમાં એ બાળક છે, છતાં

णद्वृद्धोऽर्भकोपि हि ॥ ३० ॥ अतएव वयं ग्रामे–गमामायं च वोऽर्पितः । सूरिर्यथाहि जानीथ–यूयमस्येदृशान् गुणान् ॥ ३१ ॥ नत्वस्य वाचनाचार्य–पदवी युज्यतेऽधुना । कर्णश्रुत्या ददेनेन–श्रुतं यन्न गुरोर्मुखात् ॥ ३२ ॥

ततश्च श्रुतसारज्ञः श्रुतमर्थसमन्वितं । अध्यापयद्गुरुर्वज्रं–विधायोत्सारकल्पकं ॥ ३३ ॥ साक्षीकृतगुरुर्वज्र–मुनिर्गुर्वर्पितं श्रुतं । मातृकापदवत्सर्वं–स जग्राह कुशाग्रधीः ॥ ३४ ॥ तथाभूच्छ्रुतविद्वज्रे–यथा सिंहगिरेरपि । चिरसंदेहसंदोह–रजःपवनतां ययौ ॥ ३५ ॥ क्रमादासादिताचार्य–वैभवो भवनाशनः । कुमतध्वांतविध्वंस–हंसः सल्लब्धिसेवधिः ॥ ३६ ॥

दशपूर्वश्रुताधारः—
श्रीमान् वज्रमुनीश्वरः ।

પણ ગુણોથી વૃદ્ધ હોવાથી ખાસ કરીને માનવા યોગ્ય છે. [૩૦] એથી કરીનેજ અમે ગામડે ગયા હતા, અને એ વજ્ર તમને આચાર્ય તરીકે સોંપ્યો હતો કે, જેથી તમે એના એવા ગુણોને જાણો. [૩૧] છતાં હમણાં એને વાચનાચાર્યની પદવી આપવી ઘટે નહિ. કારણ કે, એણે હજુ ગુરૂના મુખથી કાનોકાન શ્રુત ગ્રહણ કર્યું નથી. (૩૨)

બાદ શ્રુતના સારને જાણનાર ગુરૂ " અમુક વયે શીખાડવું કલ્પે. " એ કલ્પને છોડીને તેને અર્થ સહિત શ્રુત શીખાડવા લાગ્યા. [૩૩] ત્યારે ગુરૂની સાખે, કુશાગ્ર બુદ્ધિ વજ્રમુનિ ગુરૂએ આપેલાં સર્વ શ્રુતને માતૃકાના પદની માફક (વર્ણમાળાની માફક) ગ્રહણ કરવા લાગ્યો. (૩૪) એ રીતે વજ્રકુમાર શ્રુતના એવા જાણનાર થયા કે, જેથી તે સિંહગિરિના પણ લાંબા વખતના સંદેહરૂપ રજને હરવા પવન સમાન થઈ પડયા. (૩૫) બાદ વખત આવતાં આચાર્ય પદ મેળવીને ભવને નસાડનાર કુમતરૂપ અંધારાનો વિધ્વંસ કરવા સૂર્ય સમાન, રૂડી લબ્ધિઓના ભંડાર, અને દશ પૂર્વના ધરનાર, શ્રીમાન

भृशं प्रभावयामास—
सुचिरं जिनशासनं ॥ ३७ ॥

॥ इति श्री वज्रस्वामिकथा ॥

तदेवं गुणाधिके विनेयेस्यादेवगुरोर्गौरवं.—किंतु तेन शिष्येण गुणाधिकेनापिहीन इति कृत्वा न गुरुरवमान्य,—इत्येतदेवाह.

(मूलं)

सविसेसंपि जयंतो—तेसि मवन्नं विवज्जए संमं ।
तो दंसणसोहीओ—सुद्धं चरणं लहइ साहू ॥ १३८ ॥

[टीका]

सविशेषमपि शोभनतरम्—प्यास्तां समं हीनं वेत्यपेरर्थो यतमान-

વજ્ર મુનીશ્વર ચિરકાળ લગી જિન શાસનને ખુબ દીપાવવા લાગ્યા. (૩૬-૩૭)

એ રીતે વજ્ર સ્વામિની કથા છે.

એ રીતે ગુણાધિક શિષ્યમાં ગુરૂનું ગૌરવ રહે છે, છતાં તે શિષ્યે ગુણાધિક હોવાને પણ ગુરૂ પોતાથી હીન છે, એમ ધારી તેની અવમાનના ન કરવી, તેજ કહે છેઃ—

મૂળનો અર્થ.

સવિશેષપણે ઉદ્યત થતો, પણ જો શિષ્ય તેમની અવજ્ઞાનું ઇડી રીતે વર્જન કરે, તો દર્શન શુદ્ધિ થવાથી તે સાધુ શુદ્ધ ચારિત્ર પામે છે. (૧૩૮)

ટીકાનો અર્થ.

સવિશેષપણે એટલે સરસ રીતે પણ [अपि શબ્દથી સરખી રીતે કે, હીન રી-

स्तदावरणकर्मक्षयोपशमात् सूत्रार्थाध्ययनतपश्चरणप्रभृतिसदनुष्ठाने प्रयत्नवान् तेषां गुरूणामवज्ञामभ्युत्थानाद्यकरणरूपां वर्जयति परिहरति सम्यक् शुद्धपरिणामो भावसाधुरिति प्रकृतं,—ततश्च दर्शनशुद्धेर्हेतोः शुद्धमकलंकं चरणं चारित्रं लभते प्राप्नोति साधुर्भावमुनिरिति.

अयमत्राशयः—सम्यक्त्वं ज्ञानचरणयोः कारणं—यतएवमागमः

ता दंसणिस्स नाणं—नाणेण विणा णहुंति चरणगुणा ।
अगुणस्स नत्थि मुक्खो—नत्थि अमुक्खस्स निव्वाणं ॥ (इति)

तच्च गुरुबहुमानिन एव भवत्यतो दुःकरकारकोपि तस्मिन्नवज्ञां न विदध्यात्—तदाज्ञाकारी च भूयाद्यतउक्तं—

छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं ।
अकरंतो गुरुवयणं—अणंतसंसारिओ भणिओ ॥ (इत्यादि)

तेनी वात तो दूर रहो.] यतमान એટલે तदावरणी કર્મના क्षयोपशमथी सूत्रार्थना अध्ययनमां तथा तपश्चरण વગેરે સારાં अनुष्ठानमां प्रयत्न કરનાર शुद्ध પરિણામવાળો ભાવ साधु તે ગુરૂની अभ्युत्थान વગેરે નહિ કરવારૂપ અવજ્ઞા રૂડી રીતે વર્જે છે, અને તેથી દર્શન શુદ્ધિના કારણે તે ભાવ મુનિ અકલંક ચારિત્રને પામે છે.

અહીં આશય એ છે કે, સમ્યકત્વ એ જ્ઞાન અને ચારિત્રનું કારણ છે. જે માટે આગમમાં આ રીતે કહેલું છેઃ—

સમ્યકત્વવંતનેજ જ્ઞાન હોય છે, અને જ્ઞાન વિના ચારિત્રના ગુણ હોતા નથી. અમુક્તિને મોક્ષ નથી, અને મોક્ષ વગરનાને નિર્વાણ નથી.

હવે તે સમ્યકત્વ તો ગુરૂનો બહુ માન કરનારનેજ હોય છે, એથી કરીને દુઃકરકારી થઇને પણ તેની અવજ્ઞા નહિ કરતાં, તેના આજ્ઞાકારી થવું. જે માટે કહેલું છે કે—

છઠ, આઠમ, દ્વાદશ તથા અર્ધ માસખમણ અને માસખમણ કરતો થકો, પણ જો ગુરૂનું વચન નહિ માને, તો અનંત સંસારી થાય છે.

अथ साधुलिंगनिगमनपूर्वकं तत्फलमभिधित्सुराह.

॥ मूलं ॥

इय सत्तलक्खणधरो—होइ चरित्ती तओ य नियमेण ।
कल्लाणपरंपरलाभ–जोगओ लहइ सिवसुक्खं ॥ १३९ ॥

(टीका)

इति रुपप्रदर्शने पूर्वोपदर्शितप्रकारेण सकलामार्गानुसारिणी क्रिया[1]—श्रद्धाप्रवराधर्मे[2]— प्रज्ञापनीयत्वमृजुभावात्[3]— क्रियास्वप्रमादः[4]—आरंभः शक्यानुष्ठाने[5]—गरीयान् गुणानुरागः[6]—गुर्वाज्ञाराधनं परम[7]—मिति सप्तसंख्यया लक्षणधरो भवति चारित्री भावसाधुः.

तउ त्ति सकः—च शब्दोऽवधारणे—स एव—नान्यः—कल्याणपरंपरा

હવે સાધુનાં લિંગોનું નિગમન કરતા થકા, તેનું ફળ કહેવાની ઇચ્છાથી કાંઇક કહે છે.

મૂળનો અર્થ.

એ રીતે સાત લક્ષણને ધરનાર ચારિત્રી થાય છે, અને તેજ નિયમા કલ્યાણની પરંપરાના લાભના યોગે કરીને શિવ સુખ પામે છે. [૧૩૯]

ટીકાનો અર્થ.

इति શબ્દ ઉપપ્રદર્શનાર્થે છે, તેથી એમ એટલે પૂર્વે બતાવેલી રીતે સકળ માર્ગાનુસારિણી ક્રિયા—ધર્મમાં પ્રવર શ્રદ્ધા—સરળ ભાવથી પ્રજ્ઞાપનીયતા—ક્રિયામાં અપ્રમાદ, શક્યાનુષ્ઠાનનો આરંભ—સખ્ત ગુણાનુરાગ અને પૂરતી રીતે ગુરૂની આજ્ઞાનું આરાધન. એ સાત લક્ષણનો ધરનાર હોય, તે ચારિત્રી એટલે ભાવ સાધુ થાય છે.

તે ભાવ સાધુજ—નહિ કે, બીજો—કલ્યાણ. પરંપરા એટલે સુદેવપણું સુમનુષ્યપણું

सुदेवत्वमनुजत्वादिरूपा तस्यालाभः प्राप्तिस्तद्योगात्तत्संबंधाल्लभतेऽवाप्नोति शिवसौख्यं सिद्धिशर्मेति.

उक्तं श्रावकसाधुसंबंधभेदाद्द्विधा धर्मरत्न,—मिदानीं कः कीदृगिदं कर्तुं शक्नोतीत्येतदाह.

(मूलं)

दुविहंपि धम्मरयणं—तरइ नरो घित्तु मविगलं सोउ ।
जस्से गवीसगुणरयण—संपया सुत्थिया अत्थि ॥ १४० ॥

(टीका)

द्विविधमपि द्विप्रकारमपि-न पुनरेकतरमेवेत्यपिशब्दार्थः—धर्मरत्नं पूर्वोक्तशब्दार्थं तरइ त्ति शक्नोति-शकेश्चयतरतीरपारा इतिवचनात्—नर इति जातिनिर्देशा-न्नरो नरजातीयो जंतु-र्न पुनः पुमानेवेति-गृह्यतु-

---

વગેરારૂપ તેનો લાભ એટલે પ્રાપ્તિ તેના યોગથી એટલે સંબંધથી શિવ સુખ એટલે સિદ્ધિ સુખ પામે છે.

શ્રાવક અને સાધુ સંબંધી એમ બે પ્રકારનું ધર્મરત્ન કહ્યું. હવે કોણ, કેવા એને કરી શકે છે, તે કહે છે.

મૂળનો અર્થ.

બંને પ્રકારના ધર્મરત્નને પૂરતી રીતે તેજ માણસ ગ્રહણ કરી શકે કે, જેના પાસે એકવીશ ગુણની સંપદા કાયમ હોય. [૧૪૦]

ટીકાનો અર્થ.

એક પ્રકારના નહિ, પણ બંને પ્રકારના ધર્મરત્નને અવિકળ એટલે સંપૂર્ણપણે તેજ નર (અહીં નર શબ્દ જાતિ વાચક છે, તેથી પુરૂષજ નહિ લેતાં નરજાતિનો પ્રાણી એમ સમજવું.) ગ્રહણ કરી શકે કે, જેને શ્રી પ્રભ મહારાજની માફક એકવીશ ગુણ-

मुपादातुमविकलं संपूर्णं सएव तु शब्दस्यावधारणार्थत्वात्–यस्य किमित्याह, यस्य श्रीप्रभमहाराजस्येवैकविंशतिगुणरत्नसंपत् " अक्खुद्दो रूववं पगइसोमो " इत्यादि शास्त्रपद्धतिप्रतिपादितगुणमाणिक्यविभूतिः सुस्थिता दुर्बोधाद्यदूषितत्वान्निरुपद्रवास्ति विद्यते इति.

ननु पूर्वमुक्तमेवैकविंशतिगुणसमृद्धो योग्यो धर्मरत्नस्येति,—तत्किं पुनरिदमुच्यते ?

सत्यं—पूर्वं योग्यतामात्रमुक्तं, यथा बालत्वेपि वर्त्तमानो राजपुत्रो राज्यार्ह उच्यते,—संप्रति करणशक्तिरप्यस्याभिधीयते–यथा प्रौढीभूतो राजपुत्रः कर्त्तुं शक्नोत्येतावद्वया राज्यमिति.

श्रीप्रभमहाराजकथा चेयं.

सौधोज्वलप्रभाभि–र्निरंतरप्रसृतधूपधूम्याभिः। जितसुरसरिदर्कसुता–संगास्ति पुरी विशालेति ॥ १ ॥ सुरलोकावधि विदल–द्विचकिल

રત્ન સંપત્ એટલે " अक्खुद्दो रूववं पगइसोमो " ઇત્યાદિ શાસ્ત્ર પદ્ધતિમાં કહેલ એકવીશ ગુણરૂપ માણિક્યોની વિભૂતિ સુસ્થિત હોય, એટલે કે દુર્બોધ વગેરેથી અદૂષિત હોવાથી ખલલ વગરની હોય.

કોઇ પૂછશે કે એકવીશ ગુણવાળો હોય, તે ધર્મરત્નને યોગ્ય છે. એ તો પૂર્વે કહ્યુંજ છે, તો ફરી આ કેમ કહો છો ?

ખરી વાત, પણ પૂર્વે ફક્ત યોગ્યતાજ કહી છે. જેમકે બાળપણામાં પણ રહેલો રાજપુત્ર રાજ્યને યોગ્ય કહેવાય છે, અને હમણાં એને સમર્થ કરવા પણ બતાવે છે. જેમકે મોટો થએલો રાજપુત્ર આટલી ઉમ્મરે રાજ્ય કરી શકે છે

શ્રી પ્રભ મહારાજાની કથા આ છે.

રાજમહેલોની ઉજળી પ્રભા તથા નિરંતર પસરી રહેલા ધૂપની ધૂમાડીવડે ગંગા અને યમુનાના સંગમને જીતનારી વિશાળા નામે નગરી હતી. (૧) ત્યાં જેનું કૂટેલી

कलिकामलं यशो यस्य । प्रबलबलशत्रुसंहति–कुलक्षयावधि सदा शौर्यं ॥ २ ॥ त्यागस्तर्कुकजनवांछितावधिः सागरावधिर्वसुधा । श्रीजिनपति पदकमल–द्वयप्रणामावधिर्भक्तिः ॥ ३ ॥ शेषः पुनर्गुणगणो–निरवधिरव-धीरितान्यदोषभरः । स श्रीचंद्रनरेंद्र–स्तां नगरीं पालयामास ॥ ४ ॥ क्षितिपतिहृदयकुशेशय–शया सदाचरणरागपरिकलिता । शुद्धोभयपक्षा जनि–हंसी हंसीव तस्य जनी ॥ ५ ॥ तनयौ तयोरभूतां–परिभूता-खिलविपक्षसंदोहौ । ज्येष्ठः श्रीप्रभसंज्ञ–स्तथाकनिष्ठः प्रभाचंद्रः ॥ ६ ॥ तत्र ज्येष्ठो गांभीर्य–सागरो[1], रूपविजितरतिकांतः[2] । सौम्याकृतिः प्रकृत्या[3]–लोकप्रियगुणमणिकरंडः[4] ॥ ७ ॥

अक्रूरचित्तपरिणति–निर्जरजंबालिनीहिमानीभृत्[5] । शिवसुखघातक-पातक–भीरुत्वसरोजदिननाथः[6] ॥ ८ ॥ शठतालतालवित्रं,[7] दाक्षिण्य-

---

જયના ફૂલની કળીકાના જેનું નિર્મળ યશ દેવલોક સુધી [પહોંચતું] હતું, તથા જેનું શૌર્ય હમેશાં જોરાવર શત્રુઓના કુળક્ષય પર્યંત (પહોંચતું) હતું. [૨]

જેનો ત્યાગ (દાન) માગણ જનના વાંચ્છિત સુધી પહોંચતો, તથા જેની જમીન દરિયા સુધી પહોંચતી, અને જેની ભક્તિ શ્રી જિનેશ્વરના બે ચરણ કમળ નમવા સુધી પોહોંચતી હતી, (૩) અને જેના બીજા દોષોના જોરને તોડનાર બાકીના ગુણો નિરવધિ [હદ વિનાના] હતા, એવો તે શ્રીચંદ્ર રાજા તે નગરીને પાલન કરતો હતો. [૪] કમળમાં રહેનારી હમેશાં રાતાં ચરણવાળી અને બે ઉજળી પાંખવાળી હંસની માફક રાજાના હૃદયરૂપ કમળમાં રહેનારી સદાચરણ [રૂડાં આચરણ]ના રાગવાળી અને ઉભય પક્ષથી પવિત્ર હંસીનામે તેની રાણી હતી. [૫] તેમને સઘળા દુશ્મનોને હરાવનાર બે પુત્ર હતા, તેમાંના મોટાનું નામ શ્રી પ્રભ અને નાનાનું નામ પ્રભાચંદ્ર હતું. (૬) તેમાંનો મોટો કુમાર ગાંભીર્ય ગુણનો સાગર હતો ૧, રૂપથી કામને જીતનાર હતો ૨, સ્વભાવેજ સૌમ્યાકાર હતો ૩, અને લોકપ્રિય ગુણરૂપ મણીનો કરંડ [કરંડિયો] હતો. (૭)

અક્રૂર પરિણતિરૂપ નીઝરણાવાળી નદીનો હિમાલય હતો ૫, શિવસુખના ઘાતક પાતકના ડરરૂપ કમળને વિકસિત કરવા સૂર્ય સમાન હતો ૬. [૮] શઠતારૂપ લતાને કાપવા

हिरण्यमेरुगिरिसदृशः[૮] । संततमकार्यलज्जा-स्फुरदलिनीकमलिनीतुल्यः[૯] ॥ ૯ ॥ जीवदयाकैरविणी-शशभृत्[૧૦] माध्यस्थ्यहस्तिवंध्याद्रिः[૧૧] । गुणरागजनवतंसः[૧૨]-साधुकथाकथनपथपांथः[૧૩] ॥ ૧૦ ॥ जिनधर्मदक्षसत्पक्ष-कक्षसेवनपयोधरप्रतिमः[૧૪]। स्फूर्जदुरुदीर्घदर्शित्व-तारकातारकामार्गः[૧૫] ॥ ૧૧ ॥ जिनपरिवृढगदितागम-विशेषविज्ञत्वकेलिधामसमः[૧૬] । सद्बुद्धिवृद्धजनसेवनैकसरसीवरमरालः[૧૭] ॥ ૧૨ ॥

विनयनयबद्धचेताः[૧૮]-कृतज्ञताकूलिनीधुनीनाथः[૧૯] । परहितकरणप्रवणः[૨૦]-सुलब्धलक्ष्यश्च कृत्येषु[૨૧] ॥ ૧૩ ॥ तत्रापरेद्यु रागात्-केवलकलितो गुरुर्भुवनभानुः । तं नंतुमगान्नृपतिः—सुतसामंतादिपरिकलितः ॥ ૧૪ ॥ कृत्वा प्रदक्षिणात्रय-मानम्य गुरुं गरिष्टया भक्त्या । उचितस्थानेन्यषद-द्यतिपतिरथ देशनां चक्रे ॥ ૧૫ ॥ इह भवगहनेनंते-

---

દાતરડા સમાન હતો ૭, દાક્ષિણ્યરૂપ સોનાનો મેરૂ હતો ૮, અકાર્યથી હમેશાં લજ્જારૂપ ચળકતી ભમરીને રહેવા કમલિની સમાન હતો. ૯ [૬] જીવદયારૂપ કુમુદિનીના માટે ચંદ્ર સમાન હતો ૧૦, માધ્યસ્થ્યરૂપ હાથીનો વિંધ્યાચળ હતો ૧૧, ગુણરાગિ જનોનો મુગટ હતો ૧૨, સારી કથા કહેવાના માર્ગનો વટેમાર્ગુ હતો ૧૩, જિનધર્મમાં કુશળ એવા સારા પક્ષરૂપ કક્ષ [ઘાસ] ને વધારવામાં મેઘ સમાન હતો ૧૪, અતિ મોટા દીર્ઘદર્શિત્વરૂપ તારાઓનો આકાશ હતો ૧૫, [૧૦-૧] જિનેશ્વર પ્રણીત આગમના વિશેષ વિજ્ઞાનનો ક્રીડાધર સમાન હતો ૧૬, સારી બુદ્ધિવાળા વૃદ્ધ જનોના સેવનરૂપ સરોવરમાં હંસ સમાન હતો ૧૭,

(૧૨)

વિનય નીતિમાં ચિત્ત રાખનાર હતો ૧૮, કૃતજ્ઞતારૂપ નદીનો દરિયો હતો ૧૯, પરહિત કરવામાં તૈયાર રહેનાર હતો ૨૦, અને કરવાના કામોમાં બરોબર લક્ષ આપનાર હતો ૨૧. [૧૩] ત્યાં એક દિવસે ભુવનભાનુ નામે કેવળજ્ઞાની ગુરૂ પધાર્યા, તેમને નમવાને રાજા, પુત્ર, અને સામંતાદિકને સાથે લઇને ત્યાં આવ્યો. [૧૪] તે ત્રણ પ્રદક્ષિણા કરી ગુરૂને મોટી ભક્તિથી નમીને ઉચિત સ્થાને બેઠા, એટલે યતીશ્વર દેશના દેવા લાગ્યા. [૧૫] આ છેડા વગરના ભવરૂપ જંગલમાં ભટકતો જીવ અનેક દુઃખ સહેતો

भ्राम्यन् जीवः सहन्नसातभरं । जातिकुलप्रभृतियुतं–कथमपि लभते मनुजजन्म ॥ १६ ॥ तदवाप्य भव्यलोका–जिनधर्मं कुरुत सकलदुःखहरं । स पुनर्द्वेधा प्रोक्तो–यतिगृहिधर्मप्रभेदेन ॥ १७ ॥

तत्राद्ये पंच यमाः–प्रत्येकं पंच भावनाः पाल्याः । हिंसा[१]-लीक[२] स्तेया[३]-ब्रह्म[४]-परिग्रह-विरति[५]रूपाः ॥ १८ ॥

विविधैर्नियम विधानैः—प्रत्याख्यानैर्निरंतरं मतिमान् । आलोच्य भाषणेनापि–भावयेत् सूनृतं च यमं ॥ २० ॥ याचनमवग्रहस्या[१]–लोच्यावग्रहविमार्गणं च भृशं[२] । सततं समनुज्ञापित–भक्तान्नाभ्यवहृतेः करणं[३] ॥ २१ ॥ साधर्मिकतो याचन–मवग्रहस्योच्चकै[४]स्तथास्यैव । मर्यादाकरण[५] मिमा–अस्तेये भावनाः पंच ॥ २२ ॥

થકો જાતિ અને કુળ વગેરેથી યુક્ત મનુષ્ય ભવને મહા મુશ્કેલીએ પામે છે. [૧૬] તે પામીને હે ભવ્યો ! તમે સકળ દુઃખ હરનાર જિન ધર્મ કરો. તે ધર્મ બે પ્રકારે કહેલ છેઃ—યતિધર્મ અને ગૃહિધર્મ. [૧૭]

ત્યાં પહેલા યતિધર્મમાં પાંચ યમ [મહા વ્રત] છે, તે દરેકની પાંચ પાંચ ભાવનાઓ પાળવાની છે, તે પાંચ યમ આ પ્રમાણે છેઃ—હિંસાનો ત્યાગ, અલીકનો ત્યાગ, સ્તેયનો ત્યાગ, અબ્રહ્મનો ત્યાગ અને પરિગ્રહનો ત્યાગ. (૧૮)

જાતજાતના નિયમો અને પ્રત્યાખ્યાનો વડે કરીને તથા વિચારીને લોચનાવડે કરીને મતિમાન્ પુરૂષે બીજા સૂનૃતરૂપ યમને ભાવવું. [૨૦] અસ્તેયરૂપ યમની પાંચ ભાવના આ છેઃ—અવગ્રહમાગવો,૧ બરોબર જોઇ તપાસી વિચારીને અવગ્રહ માગવો ૨, નિરંતર ગુરૂની અનુજ્ઞા લઇ ભાતપાણી વાપરવાં ૩. [૨૧] સાધર્મિ પાસેથી અવગ્રહ યાચવો ૪, અને તેની મર્યાદા [મુદત] કરવી ૪. એમ પાંચ ભાવના છે. [૨૨]

नारीपंडकपशुम–न्निवासकुड्यांतरासनोज्झनतः[१] । स्त्रीरम्यांगनिरीक्षण–निजांगसंस्कारपरिहारात्[२] ॥ २३ ॥ स्निग्धात्यशनत्यागात्[३]–सरागयोषित्कथाविवर्जनतः[४] । पूर्वरतास्मरणेन[५]–ब्रह्म सदा भावयेद्धीमान् ॥ २४ ॥ स्पर्शे[१] रसे[२] च गंधे[३]–शब्दे[४] रूपे[५] शुभाशुभे सततं । रागद्वेषत्यागो हि–भावनाः पंचमयमे स्युः ॥ २५ ॥ एवं व्रतानि पंचापि–पंचभिः पंचभिः सुवास्य भृशं । सद्भावनाभिरगम–न्नसुमंतः शिवपदमनंताः ॥ २६ ॥ गृहमेधिनां तु धर्म्मे–निशम्य सम्यक् सुसाधुगुरुपार्श्वे । ज्ञात्वा तथा गृहीत्वा–व्रतानि परिपालनीयानि ॥ २७ ॥

आयतनसेवनाद्यं[१]–शीलं परिशीलनीयमनवरतं[२] । सद्भिः समर्जनीयः–स्वाध्यायप्रभृतिविभवभरः[३] ॥ २८ ॥ व्यवहारशुद्धिरनिशं–भव्यैरव्याजभावनैः कार्या[४] । गुरवश्चरणविहंगमतरवः शुश्रूषणीया श्च[५] ॥ २९ ॥ भाव्यं प्रवचनकौशल–सुपेशलैर्गलितसकलपापमलैः । स्त्रीणां वश्योवश्यं

સ્ત્રી—પંડક—પશુવાળી વસતિ, કુડ્યાંતરિત વસતિ, અને એક આસન ત્યાગ કરવાં ૧, સ્ત્રીનાં રમ્ય અંગ જોવાનો તથા પોતાનાં અંગે શણગાર કરવાનો પરિહાર કરવો ૨, સ્નિગ્ધ ભોજન તથા અતિ ભોજનનો ત્યાગ કરવો ૩, રાગથી સ્ત્રીની કથા નહિ કરવી ૪, તથા પૂર્વની ક્રીડા નહિ સંભારવી ૫. એ પાંચ ભાવનાઓથી બુદ્ધિમાને બ્રહ્મચર્યને હમેશ ભાવવું. (૨૩–૨૪) શુભાશુભ સ્પર્શ, રસ, ગંધ, શબ્દ, અને રૂપમાં હમેશાં રાગદ્વેષ છોડવાં, એ પાંચમા યમની ભાવનાઓ છે. [૨૫] એ રીતે પાંચ પાંચ ભાવનાઓથી પાંચે વ્રત બરોબર ભાવીને અનંત જીવો શિવપદ પામ્યા છે. (૨૬) ગૃહસ્થના ધર્મમાં સુસાધુ ગુરૂની પાસે રૂડી રીતે વ્રતો સાંભળી, જાણી, તથા લઈને પાળવાં જોઇએ. [૨૭]

આયતન સેવવું, [૧] નિરંતર શીળ પાળવું, [૨] અને સજ્જનોએ સ્વાધ્યાય વીગેરે વિભવ ઉપાર્જન કરવો. [૩] (૨૮) વળી ભવ્ય જનોએ નિષ્કપટ ભાવ રાખીને વ્યવહાર શુદ્ધિ કરવી, [૪] તથા ચારિત્રરૂપ પક્ષિના તરૂસમાન ગુરૂની શુશ્રૂષા કરવી. [૫] [૨૯] સઘળા પાપમળ ગાળીને પ્રવચનની કુશળતાથી શોભતા થવું, અને કદાપિ પોતાને સ્ત્રીની

नात्मा कार्यः कदाचिदपि[1] ॥ ३० ॥ सुज्ञानश्रृंखलाभि–र्हृषीकरूपयः समंततो रोध्याः[2] । गृद्धिर्नचार्थसार्थे–क्लेशायासाकरे कार्या[3] ॥ ३१ ॥ निर्वेदः संसारे–दुःखागारे सदा विधातव्यः[4] । विषयाः कुनृपाधिष्ठित विषया इव दुरतस्त्याज्याः[5] ॥ ॥ ३२ ॥

तीव्रारंभा दंभा इव निर्दंभैः कदापि नहि सेव्याः[6] । सकलक्लेशनिवासे–न गेहवासे रतिः कार्या[7] ॥ ३३ ॥ धार्यं निरतीचारं–सुदर्शनं स्थगितदुर्गति द्वारं[8] । मोहनृपविजयभेरौ–न लोकहेरौ मनो धेयं[9] ॥ ३४ ॥ शुद्धागमविशदविधिः समस्तकल्याणशेवधिः सेव्यः[10] । दानादिकश्चतुर्द्धा–धर्मः शिवशर्मकृत् कार्यः[11] ॥ ३५ ॥ न्याय्ये पथि प्रवृत्तै–र्विमुग्धहसितेवधीरणा धेया[12] । हेयौ रागद्वेषौ–भवभाविषु सकलभावेषु[13] ॥ ३६ ॥ धर्माधर्मविचार–श्चिंत्यो माध्यस्थ्यसुस्थचेतोभिः[14] । स्वजनधनादिषु निविडः प्रतिबंधो नो विधातव्यः[15] ॥ ३७ ॥

વશ નહિ થવા દેવો[1] [૩૦] સમ્યક્‌જ્ઞાનરૂપ સાંકળથી ઇંદ્રિયરૂપ વાંદરાને ચારોબર બાંધી રાખવા,[2] અને કલેશ અને મહેનતના આકર સમાન ધન દોલતમાં ગૃદ્ધિ નહીં કરવી[3] [૩૧] દુઃખના ઘર સંસારમાં હમેશાં નિર્વેદ ધારવો,[4] અને વિષયોને ભૂંડા રાજાના વિષય [દેશ] ના માણસ દૂરથી તજવા.[5] [૩૨]

નિર્દંભ રહીને દંભના માણસ તીવ્ર આરંભોને કયારે પણ નહિ સેવવા,[6] તથા સકળ કલેશના નિવાસ સમાન ઘરવાસમાં રતિ નહિ રાખવી.[7] (૩૩) દુર્ગતિના દરવાજાને ઢાંકનારૂં નિરતિચાર સુદર્શન [સમ્યક્‌ત્વ] ધરવું [8], અને મોહરાજાના વિજયની ભેરી સમાન લોકહેરી [દેખાદેખી] માં મન નહિ ધરવું [9], (૩૪) સમસ્ત કલ્યાણની ખાણ એવી શુદ્ધ આગમની નિર્મળ વિધિ સેવવી [10], અને શિવસુખ આપનાર દાનાદિક ચાર પ્રકારનો ધર્મ કરતા રહેવું [11], [૩૫] ન્યાયના માર્ગે ચાલતાં મુગ્ધો હસે, તેપર બે દરકાર રહેવું [12], અને સઘળા સાંસારિક બનાવોમાં રાગ દ્વેષ નહિ કરવા [13], [૩૬] વળી ધર્માધર્મનો વિચાર મધ્યસ્થપણે સુસ્થ ચિત્ત રાખીને કરવો [14], અને સગાસ્નેહિ તથા ધનમાં આકરી પ્રીતિ નહિ બાંધવી [15], [૩૭]

भोगोपभोगतृष्णा–कृष्णाहिविनिग्रहे प्रयतितव्यं१६ । सततं यतिधर्म-धुरो–द्धरणोद्धुरकंधरैर्भाव्यं१७ ॥ ३८ ॥ एवं श्रमणोपासक–धर्मं विधिना विधाय विमलमनाः । सुचरित्रमाप्यलभते–भवाष्टकस्यांतरपवर्गं ॥ ३९ ॥ इत्याकर्ण्य श्रीचंद्र–नरपतिर्भुवनभानुगुरुमूले । श्रीप्रभसुतादिसहितो–जगृहे गृहमेधिनां धर्मं ॥ ४० ॥ अथ नत्वागुरुचरणौ–निजधाम जगाम वसुम-तीनाथः । विजहार हारनिर्मल–गुणोच्चयः सूरिरन्यत्र ॥ ४१ ॥ अपरेद्युः श्रीचंद्र–क्षितीशितुः सविनयं तनूजाभ्यां । संवाह्यमानचरण–द्वयस्य सुकु-मारकरकमलं ॥ ४२ ॥

मौलिमणिरुचिररोची–रचितसदःसदनभूरिहरिचापैः । भक्त्या परःसहस्रै–रवनिधवैः सेव्यमानस्य ॥ ४३ ॥ राज्यभरभवनधरण–स्तंभैः सद्बुद्धिभिर्विगतदंभैः । शतशः सचिववरिष्ट–रलंकृतासन्नदेशस्य ॥ ४४ ॥

ભોગોપભોગની તૃષ્ણારૂપ કાળી નાગણને પકડવા તૈયાર રહેવું ૧૬, અને નિરંતર યતિધર્મની ધુરા ઉપાડવામાં તમતૈયાર થઈ રહેવું ૧૭, (૩૮) એ રીતે વિધિપૂર્વક શ્રાવકનો ધર્મ કરી, નિર્મળ મનવાળો પુરૂષ ચારિત્ર પામી, આઠ ભવના અંદર મોક્ષ પામે છે. [૩૯] એમ સાંભળીને શ્રીચંદ્રરાજાએ શ્રીપ્રભ વિગેરેની સાથે ભુવનભાનુ ગુરૂ પાસેથી ગૃહસ્થધર્મ સ્વીકાર્યો. [૪૦] હવે ગુરૂના ચરણે નમી, રાજા પોતાના મુકામે આવ્યો, અને નિર્મળ ગુણવાન્ આચાર્ય અન્ય સ્થળે વિચરવા લાગ્યો. [૪૧)

એક દિવસે શ્રીચંદ્રરાજાને તેના બે પુત્રો વિનયપૂર્વક પોતાના કોમળ કરકમળોથી પગચંપી કરતા હતા, અને પોતાના મુગટોની મણિઓની સુંદર કાંતિથી સભા સ્થાનમાં અનેક ઇંદ્રધનુષ્યો બનાવતા હજારો રાજાઓ તેને ભક્તિપૂર્વક સેવતા હતા, તથા રાજ્યભારરૂપ ભવનને ધરવા સ્તંભ સમાન, સદ્બુદ્ધિવાળા, નિષ્કપટ સેંકડો મંત્રીશ્વરો તેની આસપાસ બેઠા હતા; વળી ઘણી ભારે લડાઇમાં મળતી સંપત્માં લંપટ રહેનાર કોડો સૈનિકોથી તે પરિવરાયતો હતો, તેવામાં હાથમાં સોનાનો દંડ પકડનાર છડીદાર તેને આ રીતે

बहुसमसमरसंप–ल्लंपटभटकोटिभिः परिवृतस्य । करकलितकनकदंडो–विज्ञापयामास वेत्रीति ॥ ४५ ॥

(चतुर्भिः कलापकं)

देव दिदृक्षुर्वैरिंगमल्लनामा नटाग्रणी रुद्धः । संक्षेपनिबद्धसन–त्कुमारनाट्यप्रबंधोस्ति ॥ ४६ ॥ लघु मुंचेत्युक्तेसति–महीभुजा वेत्रिणा स आनायि । कृत्वात्रिपात्रकिंकर–मित्याशिषमथनृपस्यादात् ॥ ४७ ॥

तद्यथा—

षट्खंडामवनिं, निधीन्नव, चतुःषष्टिं सहस्राणि च–स्त्रीणां, क्षोणिभुजां तदर्द्धमपरं द्विःसप्त रत्नानि च । यस्त्यक्त्वा तृणवद्भवार्त्तिविधुरो जैनं व्रतं शिश्रिये–राजर्षिः स सनत्कुमार इहते भूपाल भूयाच्छ्रिये ॥ ४८ ॥ अथ नाटकावलोकन–कौतुकरसविवशमानसं सकलं । निजतनयप्रभृतिजनं–नृपतिर्विस्पष्टमैक्षिष्ट ॥ ४९ ॥

तस्यानुवृत्तिवशतः सविलासामुज्वलां ततो दृष्टिं । तदभिनयकृते स कृती–नटनेतरि पातयांचक्रे ॥ ५० ॥ बुध्ध्वाथो नृपहृदयं–हृदयंग-

---

विनवता लाग्यो. (४२–४३–४४–४५) [આ ચારે ગાથાઓનું કલાપક છે.]

હે દેવ ! વૈરિંગમલ્લ નામે મોટો નટ સનત્કુમારના નાટય પ્રબંધને સંક્ષેપમાં તૈયાર કરી તમને ભેટવા આવેલો છે, તેને મેં અટકાવેલો છે. (૪૬) રાજાએ ફરમાવ્યું કે, તેને જલદી અંદર મોકલાવ, એટલે છડીદાર તેને ત્યાં લાગ્યો, એટલે તેણે ત્રણ પાત્રોની કિંગર [બેના ઉપર ત્રીજો ઉભો રહે તેવો દેખાવ] કરીને આ પ્રમાણે રાજાને આશિષ દેવા લાગ્યો. (૪૭) છ ખંડવાળી પૃથ્વી, નવ નિધાન, ચોસઠ હજાર રાણીઓ, બત્રીશ હજાર રાજાઓ, અને ચૌદ રત્નોને તણખલા માફક છોડીને સંસારના દુઃખથી ગભરાઇ જેણે જૈનની દીક્ષા લીધી, તે સનત્કુમાર રાજર્ષિ, હે ભૂપાળ ! તને શ્રીસંપદાદાયક થાઓ. [૪૮]

હવે નાટક જોવાના કૌતુકના રસમાં પોતાના પુત્રો વગેરે તમામ જનોને તેણે ખુલ્લી રીતે આતુર મનવાળા જોયા [૪૯] એટલે તેમની અનુવૃત્તિના વશે તે ચતુર

गमया गिरागृणात् सोपि । भो भो पार्षद्यजनाः श्रीचंद्रनरेश्वरप्रमुखाः! ॥ ५१ ॥ क्षणमेकमेकतानी-भूय श्रृणुत तुर्यचक्रिणश्चरितं । इति जल्प न्नटउच्चै-स्तदभिनयं कर्त्तुमारेभे ॥ ५२ ॥

तथाहि

श्रीहस्तिनापुरपतेः-सनत्कुमारस्य नृपतितिलकस्य । षट्खंडभरतभर्त्तुः प्राज्यं साम्राज्यमनुभवतः ॥ ५३ ॥ अप्रतिमरूपलक्ष्मी-विलोकनोत्पन्न-विस्मयोत्कर्षः । मध्येसभं निलिंपान् सुरपतिरिति निगदतिस्म मुदा ॥ ५४ ॥ भो भो अमराः पश्यत-सनत्कुमारस्य सार्वभौमस्य । पूर्वार्जितशुभनिर्माण-कर्मनिर्मितलसन्मूर्त्तेः ॥ ५५ ॥ सा कापि रूपलेखा—वरेण्यलावण्यकांति परिकलिता !। सुरसद्मजन्मिनामपि—या प्रायो नैव संभवति ॥ ५६ ॥ अश्रद्धधताविति सुरपतेर्वचो विजयवैजयंतारव्यौ । क्षिप्रं वसुंधरायां—द्वावमृतभुजाववातरतं ॥ ५७ ॥

રાજાએ તે નટનાયકને તે સનત્કુમારનો અભિનય કરી બતાવવા ખાતર તેના તરફ ઇશારો કરવા સાથે ઉજળી નજર ફેરવી. [૫૦] ત્યારે રાજાનો અભિપ્રાય સમજી જઇ, તે નટ મનોહર વાણીથી બોલ્યો કે, હે શ્રીચંદ્રનરેશ્વર પ્રમુખ સભાજનો ! થોડો વખત એકતાન થઇને ચોથા ચક્રવર્ત્તિનું ચરિત્ર સાંભળો, એમ બોલીને તે નટનાયક તેનો અભિનય કરવા લાગ્યો. [૫૧-૫૨]

તે આ રીતે છે.

શ્રીહસ્તિનાપુરના સ્વામિ, છ ખંડવાળા ભરતક્ષેત્રના ઉપરી, મહાન્ સામ્રાજ્ય ભોગવનાર સનત્કુમાર નરેશ્વરની અત્યુત્તમ રૂપલક્ષ્મી જોવાથી અતિ વિસ્મય પામીને સૌધર્મેંદ્ર પોતાની સભામાં રહેલા દેવોને આ પ્રમાણે કહેવા લાગ્યો. [૫૩-૫૪] હે દેવો ! પૂર્વે ઉપાર્જન કરેલા શુભ નિર્માણ નામ કર્મથી બનેલા ઝળકતા શરીરાકારવાળા સાર્વભૌમ મહારાજા સનત્કુમારની કેવી રૂપરેખા છે, તે જુવો કે, જે અહીં દેવલોકમાં જન્મેલાઓને પણ પ્રાયે હશે નહિ. (૫૫-૫૬) આ રીતે ઇંદ્રે કહેલા વચનપર શક લાવીને વિજય અને વૈજયંત નામના બે દેવો જલદી પૃથ્વી તરફ ઉતરી પડ્યા. [૫૭]

अत्रांतरे च सर्वेपि–विस्मयस्मेरलोचनालोकाः । किमितो भविते-त्यवहित–चित्ता आकर्णयामासुः ॥ ५८ ॥ तौ तदनु विप्ररूपेण–भूप-रूपावलोकनसतृष्णौ । द्वारसमीपेस्थातां प्रासादद्वारि भूमिभुजः ॥ ५९ ॥ आसीत् सनत्कुमारो–मुक्तालंकारसारनेपथ्यः । प्रारब्धमज्जनोभ्यंग–संगमंगे वहन्नुच्चैः ॥ ६० ॥ दौवारिकेण तौ विप्रपुंगवौ द्वारसंस्थितौ कथितौ । भावीविषत्तदाप्येष–चक्रवर्त्ती सनयवर्त्ती ॥ ६१ ॥ अप्रतिरूपं रूपं–तौ दृष्ट्वा तस्य राजराजस्य । मौलिं विधूनयंतौ—दध्यतुरिति विस्मितौ मनसि ॥ ६२ ॥

एतस्य भालपट्टोय–मस्तशस्ताष्टमीरजानिजानिः । नीलोत्पलजपयपत्रे–नेत्रे कर्णांतविश्रांते ॥ ६३ ॥ दंतच्छदयुगमभिभूत–पक्वबिंबीफलच्छवि विकाशं । जितशुक्तिःश्रुतयुगली—कंठोयं पांचजन्यजयी ॥ ६४ ॥

(આ વખતે સર્વે સભાસદો વિસ્મયથી વિકસેલી આંખોવડે જોતા થકા ' હવે પછી શું બનશે ' તે જાણવા ખાતર ધ્યાન દઈને સાંભળવા લાગ્યા.) [૫૮] તે બે દેવો ત્યાર બાદ બ્રાહ્મણનું રૂપ ધરીને રાજાનું રૂપ જોવા આતુર થઈ, રાજમહેલના બારણે દરવાજા પાસે ઉભા રહ્યા. (૫૯) આ વેળા સનત્કુમાર પોતાના અલંકાર અને કપડાં ઉતારીને અંગે ખુબ અભ્યંગ [તેલ અત્તર] લગડાવી સ્નાન કરવા બેઠો હતો, તેટલે દ્વારપાળે દરવાજે બે બ્રાહ્મણો ઉભેલા જણાવ્યા. ત્યારે ન્યાયશાળી તે ચક્રવર્ત્તીએ તે વખતે પણ તેમને અંદર બોલાવી લીધા. [૬૦–૬૧] ત્યારે તે રાજરાજેશ્વરનું અનુપમ રૂપ જોઈને વિસ્મિત થઈ, માથું ધુણાવતા થકા તે બે દેવો મનમાં આ રીતે વિચારવા લાગ્યા. —(૬૨)

એનું આ કપાળ અજવાળી આઠમના ચંદ્રને ભુલાવી દે છે, અને કર્ણના છેડા સુધી પહોંચેલી એની આંખો નીલોત્પલને જીતે તેવી છે. [૬૩] એના બે હોઠ પાકેલી ગોલાની કાંતિના વિકાસને હરાવે છે, બે કાન છીપને જીતે તેવા છે, અને આ કંઠ પાંચ-જન્ય શંખનો વિજય કરે છે [૬૪ એની બે ભુજાઓ હસ્તિરાજની સુંઢના આકારને

स्तंबेरमराजकरा-कारतिरस्कारकारिणौ बाहू । वक्षःस्थलमगराचल-पृथुल-शिलाश्रीविलुंटाकं ॥ ६५ ॥ कटरे करचरणतलं-तर्जितकांक्किल्लिपल्लव-प्रचयं । किमपरमुष्य सर्वांगश्री र्नहि गोचरो वाचां ॥ ६६ ॥ कोप्य-स्याहो लावण्यसरितपूरो निरर्गलो येन । जानीमोनाभ्यंगं—भविभामिव चारुचंद्रिकया ॥ ६७ ॥

वर्णयतिस्म यथेंद्र-स्तथेदमाभाति समधिकं चापि । न कदाचना-पि मिथ्या-वदंति वाचं महात्मानः ॥ ६८ ॥ किमिहागतौ भवंता विति पृष्टौ चक्रिणाथ तौ जगदुः । अप्रतिमं तवरूपं-त्रिजगत्यां गीयते भूप ॥ ६९ ॥ दूरादपि तत् श्रुत्वा-तरंगितामुद्रकौतुकसमुद्रौ । अवलोक-यितुमिहा वा-मायाव नरेंद्रशार्दूल ॥ ७० ॥ व्यावर्ण्यमानमतुलं-तवरूपं शुश्रुवे यथा लोके । नरवर ततोपि सविशेष-मेतदालोक्यतेस्माभिः ॥ ७१ ॥

તિરસ્કૃત કરે છે, તથા વક્ષઃસ્થળ મેરૂની પહોળી શિલાઓની શોભાને લુંટે તેવી છે. [૬૫] એના હાથ પગનાં તળ ખરેખર અશોકના પલ્લવોને તરછોડી નાખે તેવાં છે, બીજું વધુ શું કહીએ ? એનાં સઘળાં અંગોની શોભા વાણીને અગોચર છે. [૬૬] એનાં લાવણ્યરૂપ નદીનો કોણ જાણે કેવો છુટ વહેતો પૂર છે કે, જેના લીધે ચંદ્રિકામાં જેમ તારાની જ્યોતિ ન દેખાય, તેમ એના શરીરે કરેલું અભ્યંગ પણ જાણી શકાતું નથી. [૬૭]

ઇંદ્રે જેમ એનું રૂપ વર્ણવ્યું હતું તેવું જ, બલ્કે તેથી વિશેષ અધિક તે લાગે છે. ખરી વાત છે કે, મહાત્માઓ કોઇ વખતે પણ મિથ્યા વાણી બોલતા નથી, (એમ દેવો વિચારવા લાગ્યા). [૬૮] હવે ચક્રિએ તેમને પુછ્યું કે, તમો શા પ્રયોજને અહીં આવેલા છો ? ત્યારે તેઓ બોલ્યા કે, હે ભૂપ ! ત્રણે જગતમાં તારૂં રૂપ અનુપમ ગવાય છે, તે સાંભળીને અમે ભારે કૌતુક પામી, હે નરેંદ્ર શાર્દૂલ ! તમને જોવા માટે દુરથી અહીં આવ્યા છીએ. [૬૯–૭૦] હે નરેશ્વર ! લોકમાં જેવું તારૂં રૂપ અતુલ વર્ણવાય છે, તેના કરતાં પણ વિશેષ અમે જોઇએ છીએ. (૭૧) આ રીતે તે બ્રાહ્મણોનું વચન

श्रुत्वेति विप्रवचनं-स्मितविच्छुरिताधरो नृपः प्रोचे । कांतिरियं किल कियती-परितोऽप्यंगे कृताभ्यंगे ॥ ७२ ॥

क्षणमात्रमितो भूत्वा-भो भो द्विजसत्तमौ प्रतीक्षेथां । मज्जनकक्षण एषोऽस्माभिर्निर्वर्त्यते यावत् ॥ ७३ ॥ रचितविचित्राकल्पं-विभूषितं भूरिभूषणगणेन । रूपं मम पश्येतं-सरत्नमिव कांचनं भूयः ॥ ७४ ॥ तदनुस्नातविलिप्तो-लंकृतिनेपथ्यभूषितो भूपः । अध्यासामास सदः-सदनं गगनं गगनमणिवत् ॥ ७५ ॥ समनुज्ञातौ भूयोपि-भूपरूपं द्विजौ प्रपश्यंतौ । दवदग्धकीचकाविव विच्छायौ झगितितौ जातौ ॥ ७६ ॥

[अहह किमेतदिति सर्वेपि सभ्याः साकूतं परस्परमुदीक्षामासुः]

अनलंकृतेपि पूर्वं-मपिदृष्टे हर्षितौ युवां विप्रौ । समलंकृतेपि संप्रति-दृश्येथे किमिति सविषादौ ? ॥ ७७ ॥ इति चक्रभृता पृष्टौ-भूदेवौ तौ जजल्पतुर्भूप । अधुना तावकदेहे-संक्रांता व्याधयः सप्त ॥ ७८ ॥ तद्-

---

સાંભળી હાસ્યથી હોઠ ફરકાવીને રાજા બોલ્યો કે, અભ્યંગથી સઘળા સ્થળે છવાયલાં અંગમાં હમણાં આ કાંતિ તે શી ગણત્રીની હોય. (૭૨) હે ભલા બ્રાહ્મણો ! ક્ષણભર બહાર જઈને તમે ઉભા રહો, એટલે અમે નહાવાનો પ્રસંગ પતાવી લઈએ. બાદ તરેહવાર કપડાંથી સજેલું અને ઘણાં ભુષણોથી શણગારેલું મારું રૂપ રત્નથી જડેલા સોના માફક [જોવા જેવું થશે, એટલે] તમે ફરીને જોજો. (૭૩-૭૪) બાદ તે ન્હાધોઇ અલંકાર તથા નેપથ્ય (ડ્રેસ)થી શણગારેલો થઇ, આકાશમાં જેમ સૂર્ય પ્રકાશે, તેમ સભાસ્થાનમાં આવી બેઠો. (૭૫) હવે બ્રાહ્મણોને રાજા મળતાં ફરીને તેઓ રાજાનું રૂપ જોતા થકા દવથી બળેલા વાંસની માફક ઝટ ઝાંખવાણા પડી ગયા. [૭૬]

(આ વખતે સઘળા સભાસદો ચમકીને ' અરેરે ! આ તે શું હશે ? ' એમ ચિંતવી ધસારા સાથે અરસપરસ જોવા લાગ્યા.)

ત્યારે ચક્રવર્ત્તી તેમને પુછવા લાગ્યો કે, પૂર્વે શણગાર વગરના મને જોઇને પણ

शविनश्यदतुलांग–रूपलावण्यवर्णकांतिगुणः । त्वं वर्त्तस इत्यावां–प्रतिपन्नौ शोकसंभारं ॥ ७९ ॥ कथमेतद्विज्ञायत—इत्येवं प्रश्नितौ भरतपतिना । तौ शिष्टयथास्थितसर्वपूर्वसुरराजवृत्तांतौ ॥ ८० ॥ प्रकटितनिजस्वरूपौ—गीर्वाणौ प्रतिगतौ यथास्थानं । वैराग्योपगतमति—श्चक्रधरोऽचिंतयदथैवं ॥ ८१ ॥

भवनजनयुवतिचतुरंगसंग्रहो यस्य कारणात् क्रियते । तद्दारुदारुणघुणै—रिव रोगैर्लुप्यते गात्रं ॥ ८२ ॥ येन विमोहितमतयो–हित महितं चिंतयंति नहि जीवाः । तद्यौवनमिह वनमिव–जरा दवानलशिखा दहति ॥ ८३ ॥ अवलिप्तो येन जनः–कृत्याकृत्यं न वेत्ति तद्रूपं । मंक्षु विनश्यति धातु–क्षोभे हिमपात इव कमलं ॥ ८४ ॥ अद्यश्वोथ विनाशिन–एतस्य शरीरकस्य तदिदानीं । गृह्णाम्यविनश्वरफल–मिति नृ-

---

હે વિપ્રો ! તમે હર્ષિત થયા હતા, ત્યારે હમણાં મને શણગાર સજેલો છે, છતાં તમે દિલગીર કેમ દેખાઓ છો ? ત્યારે તે બ્રાહ્મણો બોલ્યા કે, હે ભૂપતિ ! હમણાં તમારા શરીરમાં સાત વ્યાધિઓ દાખલ થઇ છે, તેના લીધે તારા અંગનું અતુલ રૂપ, લાવણ્ય, વર્ણ, તથા કાંતિ, ગુણ, એ બધાં નાશ પામતાં જાય છે, એથી અમે દિલગીર બન્યા છીએ. [૭૭–૭૮–૭૯] ભરતાધિપે પુછ્યું, એ તમે કેમ જાણ્યું ? ત્યારે તેઓ યથાર્થપણે પૂર્વે કહેલી ઇંદ્રની વાત જણાવીને પોતાનું રૂપ દર્શાવી, પોતાના સ્થાને પાછા આવ્યા. હવે સનત્કુમાર વૈરાગ્યની બુદ્ધિ ધરીને આ રીતે ચિંતવવા લાગ્યો. — (૮૦-૮૧)

જેના કારણે ઘર, સગાં, સ્ત્રીઓ, અને ચતુરંગી લશ્કરનો સંગ્રહ કરાય છે, તે શરીર ભયંકર કીડાઓથી જેમ લાકડું બગડે છે, તેમ રોગોથી બગડે છે. (૮૨) જેણે કરીને મતિ ખોઇ દઇ જીવો હિતાહિત વિચારતા નથી, તે યૌવનને દવાનળની જ્વાળા જેમ વનને બાળે, તેમ જરા બાળી દે છે. (૮૩) જેનાથી ગર્વિત થઇને માણસો કૃત્યાકૃત્ય જાણી શકતા નથી, તે રૂપ હિમ પડતાં જેમ કમળ નાશ પામે, તેમ ધાતુક્ષોભ થતાં ઝટ બગડી જાય છે. [૮૪] તે માટે આજ કે કાલ નાશ પામનાર આ શરીરનું અવિ-

पतिश्चेतसि विभाव्य ॥ ८५ ॥ राज्यं साम्राज्यमिदं-विहाय [लोका अहो निरीक्षध्वं]। आदत्ते जिनदीक्षां-तारतरी मिव भवांभोधौ ॥ ८६ ॥

सागसमिव दशमद्वार-रोधिनं चिकुरनिकरमसितरुचिं । (पश्यत पश्यत पुरतः)-समूलमुन्मूलयत्येषः ॥ ८७ ॥ (पुरतोवलोकयध्वं) मणिरत्नोत्कटकिरीटहारादिः । आभरणसमूहो यं-निर्माल्यमिवा मुनात्याजि ॥ ८८ ॥ [निध्यात] नाथमुक्तं-क्रंदत्यंतःपुरं स्फुरद्दुःखं। खरतरसमीरलहरी-प्रकंपितं खगकुलमिवाग्रे ॥ ८९ ॥ हा नाथ नाथ किं वय-मेकपदेप्यशरणास्त्वयात्यक्ताः। एवं विलपंति जना हृतसर्वस्वा इवे [क्षध्वं] ॥ ९० ॥

इति तेन भरतभर्त्तु-र्निष्क्रमणव्यतिकरस्तथादर्शि । श्रीचंद्रनृपोपि यथा-तत्कालं जातवैराग्यः ॥ ९१ ॥ स्मृतपूर्वभवश्रुतशुद्ध-संयमः पंच-

---

નશ્વર ફળ હાલ મેળવી લઉં, એમ ચિત્તમાં વિચારીને [હે લોકો ! જુવો] તે રાજા મોટું રાજ્ય ત્યાગ કરી, ભવસાગરમાં નાવ સમાન જિન દીક્ષા ગ્રહણ કરવા લાગ્યો. [૮૫-૮૬]

[સામે જુવો સામે જુવો] આ દશમા દ્વારને રોકી રાખનાર હોવાથી જાણે અપરાધી થએલા હોય, તેમ કાળી કાંતિવાળા વાળોને આ રાજા મૂળથી ઉખેડી નાખે છે. [૮૭] (સામે જુવો) મણિ અને રત્નોથી ભરેલા મુગટ તથા હાર વગેરા આ એ આભરણો એણે નિર્માલ્ય માફક તજ્યાં છે. [૮૮] (જુવો) ધણીએ મુકી દીધેલું અંતઃપુર દુઃખી અવાજે ઝાડના અગ્રભાગપર બેઠેલાં પક્ષીઓ સખ્ત પવનના ઝપાટાથી ધ્રુજીને ચીંચીયારી પાડે તેમ રડે છે. [૮૯] [જુવો] હે નાથ, હે નાથ ! અમો અશરણોને તું એકદમ કેમ મેલી જાય છે ? એમ લુંટાયલાઓની માફક લોકો વિલાપ કરે છે. (૯૦)

એ રીતે નટનાયકે ભરતાધિપતિ સનત્કુમારના નિષ્ક્રમણનો બનાવ એવી રીતે દર્શાવ્યો કે, જેથી શ્રીચંદ્ર રાજા પણ તત્કાળ વૈરાગ્ય પામી, પૂર્વભવના શ્રુત સંયમને સં-

मुष्टिकृतलोचः । सुरदत्तसाधुवेषो–विनिर्ययौ राजमंदिरतः ॥ ९२ ॥ नट-
विलसितमिमेदखिलं–निर्नाथान्नाथ मास्म नस्त्याक्षीः । एवं रुदत्यपि
जने–विहृतः स ऋषिर्यथाभिमतं ॥ ९३ ॥ अथपितृवियोगविह्वल–चित्त
मनिच्छंतमश्रुपूर्णाक्षं । श्रीप्रभमुच्चै राज्ये–कौमारे च प्रभाचंद्रः ॥ ९४ ॥
विनिवेश्य विनयनम्रैः सामंतैः सचिवपुंगवैश्चोक्तं । अस्तोकशोकशंकू–द्ध
रणप्रवणैरिदं वचनैः ॥ ९५ ॥

मा देव कृथाः–स्वपितुः–शोकमशोच्यो ह्यसौ महाभागः । खल-
महिलेव विमुक्ता–येन समग्रापि राज्यश्रीः ॥ ९६ ॥ को नाम प्रार-
भते–दुःकरमेवंविधं श्रमणधर्म्मं । प्रायो वैराग्यमतिः–क्षण मेकं मतिमता-
मपि यत् ॥ ९७ ॥ शोच्यास्तएव ये काल–धर्मतामुपगता अकृतसुकृ-
ताः । यैरुद्यत मतिधर्मे–ते भुवने पंचषाः पुरुषाः ॥ ९८ ॥ निश-
मयति को न समयं ?—कःसर्वं नेक्षते क्षणविनाशि ? । प्रतिसमयभावि

ભારી, પંચમુષ્ટિથી લોચ કરી, દેવોથી સાધુનો વેષ પામી, રાજમંદિરથી નીકળી પડ્યો. (૯૧–૯૨) ' આ એ બધું નટનું વિલસિત છે, માટે હે નાથ ! અમોને નાથ વગરના કરી છોડી નહિ જા. ' એમ તેનો પરિવાર રડતાં છતાં પણ તે ઋષિ પોતાની ઇચ્છા પ્રમાણે વિહાર કરવા લાગ્યો. [૯૩] હવે બાપના વિયોગથી વિહ્વળ બનેલા, અને આંસુ ભરેલી આંખોવાળા શ્રીપ્રભકુમારને તેની ઇચ્છા નહિ છતાં પણ વિનયથી નમેલા સામંતો તથા મંત્રિશ્વરોએ બેસાડ્યો, અને પ્રભાચંદ્રકુમારને યુવરાજપદે સ્થાપ્યો; અને ભારે શોકરૂપ શંકુ કહાડવામાં હુશીયાર તે લોકોએ તેમને વચનોથી આ રીતે કહ્યું. (૯૪–૯૫)

હે દેવ ! તમે તમારા પિતાનો શોક મ કરો, કેમકે મહાભાગ તો અશોચ્યજ છે કે, જેણે કપટી સ્ત્રીના જેવી સઘળી રાજ્યલક્ષ્મીને છોડી છે. [૯૬] આવો દુઃકર શ્રમણ-ધર્મ કોણ ઉપાડી શકે ? કેમકે બુદ્ધિવંતોને પણ વૈરાગ્યની બુદ્ધિ ક્ષણભર જ રહે છે. [૯૭] શોક તો તેમનો કરવો જોઇએ કે, જેઓ સુકૃત કર્યા સિવાય મરણ પામે. બાકી જેઓ ધર્મમાં ખૂબ ઉદ્યમ કરે, તેવા જગતમાં પાંચ છજ પુરૂષો હોય છે. (૯૮) કોણ શાસ્ત્ર નથી સાંભળતો ? કોણ સઘળું ક્ષણ વિનાશી છે, એમ નથી જોતો ? પ્રતિ સમયે પ્રાણિઓનું

मरणं-शरीरिणां को न भावयति ? ॥ ९९ ॥ को वा हृदि नहि धत्ते-गुरूपदेशं सदा सुखनिवेशं ? । कस्य नवाप्रियमक्षय-मनंतमसदृशम-मृतसौख्यं ? ॥ १०० ॥

किंतु चलचित्तभावा-त्तदनुष्ठाने भृशं गतोत्साहाः । गिरिगुरुका अ-पि पुरुषा-अवसर्पतो विलोक्यंते ॥ १०१ ॥ देवेन पुनस्तत्किमपि-साह-सं व्यवसितं महामतिना । यदसमसाहसिकानामपि चेतः खलु चम-त्कुरुते ॥ १०२ ॥ एषोपि देवपरमो-पकारिभावेन नाटकविधाता । स-द्धर्मसूरिरिव वो विशेषतश्चार्चितुंयुक्तः ॥ १०३ ॥ एवं निशम्य राजा-रंगाचार्यं प्रपूज्य विससर्ज । किंचिदुपशांतशोको-नीतिलतासजलजलवाहः ॥ १०४ ॥ नीहारहारधवलान्-नव्यविहारान् विधापयन् बहुशः । गुरु गौरवेण कुर्वन्-साधर्मिकलोकवात्सल्यं ॥ १०५ ॥

मुग्धजनं सद्धर्मे-स्थिरयन् जिनशासनोन्नतीस्तन्वन् । सामायिक-

थतुं मरणु कोणु नथी विचारतो ? हमेशां सुख आपनार गुरुनो उपदेश पोताना हृदयमां कोणु धारणु नथी करतो ? अने कोने अक्षय अनंत अनुपम अमृतसुख [मुक्तिसुख] प्रिय नथी ? [९९-१००]

परंतु पर्वत जेवा मोटा पुरुषो पणु चळचित्तपणाथी धर्मना अनुष्टानमां उत्साह छोडी पाछा पडता देखाय छे. (१०१) छतां तमारा महा मतिवाळा पिताओ तो कंइ एवुं साहस कर्युं छे के, जे महा साहसिकोना मनने पणु चमत्कृत करी नाखे छे. (१०२) वळी आ नाटक करनार तो आपना पितानो परमोपकारी होवाथी खरा धर्माचार्यना माफक तमारे विशेषे पूजवो जोइओ. [१०३] एम सांभळीने राजनो शोक कांइक नरम पडतां ते नीतिलता वधारवामां सजळ मेघ समान राजा ते नाटक करनारने बराबर पूजीने रजा आपवा लाग्यो. (१०४) हवे ते बरफ अने हार जेवा धोळा अनेक नवा विहारो [जिनमंदिरो] कराववा लाग्यो, अने भारे भक्तिथी साधर्मिवात्सल्य करवा लाग्यो. [१०५]

वळी ते जिनशासननी उन्नति करतो थको भोळा जनोने धर्ममां स्थिर करवा

पौषधमुख्य–धर्मनिरतोजनि प्रायः ॥ १०६ ॥ अथ सततं धर्मोद्यत–मजिगीषुं श्रीप्रभं नृपं ज्ञात्वा । अरिदमनक्षितिपस्त–देशमुपद्रोतुमार–भत ॥ १०७ ज्ञात्वे दं चरमुखतः–स भाणितः श्रीप्रभेण दूतेन । किं ननु कतिपयसीम–ग्रामकुटीरकविलुंटनतः ॥ १०८ ॥ पूर्वजविहितप्रणय–प्राग्भार मसारमारचय्य भृशं । आदत्यदुर्जनत्वं—विप्रियमेवं मम विध–त्से ? ॥ १०९ ॥

यतः

ते धन्याः सत्पुरुषा–येषां स्नेहोह्यभिन्नमुखरागः । वृद्धिं गच्छन्न–नुदिन–मृणमिव पुत्रेषु संचरति ॥ ११० ॥ तस्मादितोपराधा–दद्याप्यु–परममयाग एतत्ते । क्षांतं, नह्यग्रेगू–भवाम्यहं स्नेहतरूभेदे ॥ १११ ॥ श्रुत्वेत्यरिदमननृप–स्तं दूतं प्रतिहसन्निति जजल्प । भो भो त्वया निज–प्रभु–रेवं वाच्यो मदीयगिरा ॥ ११२ ॥

લાગ્યો, અને તે પ્રાયે કરી સામાયિક, પૌષધ વગેરે ધર્મમાં (હમેશાં) લાગ્યોજ રહેતો. [૧૦૬] હવે શ્રીપ્રભરાજાને હમેશાં ધર્મમાં લાગેલો અને જીત મેળવવાની ઇચ્છા વગરનો જાણીને અરિદમનરાજા તેના દેશને ઉપદ્રવ કરવા લાગ્યો. (૧૦૭) તે દૂતના મુખે જાણીને શ્રીપ્રભ–રાજાએ દૂત મારફતજ તેને કહેવરાવ્યું કે, અમારા સીમાડાના કેટલાક ગામડાઓની ઝૂંપડીઓ લૂંટીને, (૧૦૮) તું આપણા પૂર્વજોએ જમાવેલી હેતપ્રીતને ખૂબ બગાડીને શામાટે દુર્જનપણું આદરીને આવી રીતે શામાટે તું મારૂં અપ્રિય કરે છે ? (૧૦૯)

જે માટે કહ્યું છે કે,

તે સત્પુરૂષોને ધન્ય જાણવા કે, જેમનો સ્નેહ કરમાયા વગર પ્રતિદિન વૃદ્ધિ પામતો થકો કરજની માફક પુત્રોમાં પણ ચાલુ રહે છે. [૧૧૦] માટે આ અપરાધથી હજી પણ વેગળો થા. આ તારા ગુન્હા હું માફ કરૂં છું. કેમકે સ્નેહરૂપ ઝાડને તોડી પાડવા હું આગેવાની નથી કરતો. (૧૧૧) આમ સાંભળીને અરિદમનરાજા તે દૂત પ્રત્યે હસતો થકો બોલ્યો કે, હે દૂત ! તારે તારા ધણીને મારી તરફથી આ રીતે કહેવું કે,— [૧૧૨]

યથા.

तव पार्थिव धर्मार्थ–सविस्तरारब्धकुशलकृत्यस्य । पृथ्व्याः परिपंथ-नया–कृतमनयानर्थकारिण्या ॥ ११३ ॥

अथ वांछस्येनामपि–तद्दूरं मुंच धर्मकर्मेदं । एकत्र कथं संभवति–स्खलति सीमंतसंघटनं ? ॥ ११४ ॥ अथ लोकरंजनामात्र–मेष आरभ्यतत्वया धर्म्मः । तद्भव निश्चिंतमना–न हनिम तव देशमहमधुना ॥ ११५ ॥ पूर्वप्रणयप्रकटन–मवनीशानां परं जिगीषूणां । दूषणमेव गरिष्ठं—गाढ मसामर्थ्यमथवापि ॥ ११६ ॥ श्रुत्वेति दूतमुखतः–श्रीप्रभराजः प्रदीप्त-कोपाग्निः । किंकरगणेन सहसा—रणभेरीं ताडयामास ॥ ११७ ॥ तच्छब्दाकर्णनझगिति–मिलितचतुरंगसैन्यपरिकलितः । शत्रुंप्रति प्रतस्थे–स्वदेशसीमान्यगात् क्रमशः ॥ ११८ ॥

अरिदमननृपोप्यस्याशु–संमुखं समजनिष्ट रणरसिकः । अलसा न

હે પાર્થિવ ! તેં તો વિસ્તારથી ધર્મનાં કામ શરૂ કર્યાં છે, માટે જમીન સંબંધી આ અનર્થકારી માથાફોડ મોકુફ રાખવી જોઇએ. [૧૧૩]

અગર જો એને પણ તું વાંચ્છતો હોય, તો આ ધર્મકર્મને દૂર મૂક, કેમકે માથું બોડકું કરાવવું, અને કેશ સમારવા, એ બે એક ઠેકાણે કેમ થઇ શકે ? [૧૧૪] પણ જો તેં પ્રકટ લોકોને રાજી કરવા ખાતરજ આ ધર્મ આરંભ્યો હોય, તો નિશ્ચિંત રહે, હું તારા દેશને હવેથી નહિ લૂંટીશ. (૧૧૫) વળી પૂર્વના સ્નેહની વાત કરવી, તે તો વિજયના ઇચ્છુ રાજાઓને મોટું દૂષણરૂપ છે, અથવા તો પૂરતું અસામર્થ્ય છે. (૧૧૬) આ રીતે દૂતના મુખથી સાંભળીને શ્રીપ્રભ રાજાએ ખૂબ ગુસ્સે થઇને કિંકરો મારફત ઓચિંતી રણની ભેરી (નોબત) વગડાવી. (૧૧૭) તેનો શબ્દ સાંભળી ઝટ એકઠી થએલી ચતુરંગી સેના લઇ, તે શત્રુ તરફ ચડ્યો, અને ક્રમે કરી દેશના સીમાડે આવ્યો. (૧૧૮)

ત્યારે રણરસિઓ અરિદમનરાજા પણ તેના સામે ઝટ તૈયાર થયો, કેમકે શૂરાઓ

युधे शूरा-विप्रा इव भोजनायेह ॥ ११९ ॥ अथ सैन्ययोर्द्वयोरपि—सुभटानां तत्र चित्रशस्त्रभृतां । संफोटो जनि गगने-सविद्युतामिव पयोदानां ॥ १२० ॥ अत्यद्भुतभटवादै-रथमालवभूभुजः सुभटसंघैः । परबलमभज्यताद्भुत-मुद्यानमिवद्विपैर्मत्तैः ॥ १२१ ॥ अथ रथमध्यारूढो-भग्नं संधीरयन्ननीकं स्वं । उदतिष्ठतारिदमनः—समरायास्फालयंश्चापं ॥ १२२ ॥ युगपद्विमुक्तशितविशिख—संचयैः सोप्यधत्त रिपुसैन्यं । तटपर्वतमिव जलधेः-प्रसरद्वेलासलिलपुरैः ॥ १२३ ॥

क्षणमात्रादरिदमनः—परसैन्यमदैन्यभुजबलोऽभांक्षीत् । क्रुटकोटिं लकुट इव-प्रभंजनो वृक्षलक्षमिव ॥ १२४ ॥ निजसैनिकभंगेन-क्रुद्धः श्रीप्रभनृपो विपक्षबलं । उत्तस्थे संहर्त्तु-कीनाशस्यानुजन्मेव ॥ १२५ ॥ नैवमनागापि सेहे-मालवपतिरापतन् परानीकैः । भुजगैरिव विनतायाः—

લડવા માટે આળસુ નહિ હોય, દાખલા તરીકે બ્રાહ્મણો ખાવા માટે આળસુ નહિ હોય. [૧૧૯] હવે બન્ને સૈન્યના અનેક હથિયારોવાળા સુભટોનો આકાશમાં વીજળીવાળા વાદળાંઓનો જેમ મેળાપ થાય, તેમ મેળાપ થયો. [૧૨૦] હવે માળવપતિના અતિ અદ્ભુત ભટવાદવાળા સુભટોએ શત્રુના લશ્કરને મદોન્મત્ત હાથીઓ જેમ ઉદ્યાનને ભાંગે, તેમ ભાંગી નાખ્યું, [૧૨૧] ત્યારે અરિદમનરાજા રથપર ચઢીને પોતાના ભંગાયલા લશ્કરને સાંધતો થકો, ધનુષ પછાડતો થકો પોતે લડવા તૈયાર થયો. (૧૨૨) તે સમકાળે તીક્ષ્ણ બાણોનો વરસાદ મચાવી દરિયાની વધતી વીર પાણીવડે જેમ કિનારાના પર્વતને પકડે, તેમ રિપુ સૈન્યને ધરી રહ્યો. (૧૨૩)

ક્ષણ વારમાં ભારે ભુજબળવાળા અરિદમને લાકડું જેમ ધડાની કિનારને ભાંગે અથવા વાવાઝોડું જેમ લાખો ઝાડોને ભાંગે, તેમ સામા સૈન્યને ભાંગી નાંખ્યું. [૧૨૪] ત્યારે પોતાના લશ્કરનો ભંગ થવાથી કોપેલો શ્રીપ્રભરાજા યમનો નાનો ભાઇ હોય, તેમ શત્રુના લશ્કરને પુરું કરવા ઉભો થયો. [૧૨૫] માળવપતિની સામે શત્રુનું લશ્કર ગરુડની આગળ સર્પો ન ટકે, અથવા સિંહના આગળ હરણો ન ટકે, તેમ લગાર પણ ટકી

सूनुर्हरिणैरिव व्याघ्रः ॥ १२६ ॥ विद्रुतसैन्यं पुरतः-स्थितमरिदमनं नृपं रणायाथ । आह्वास्त मालवेशो—बलानुजन्मेव भूरिबलः ॥ १२७ ॥ तदनु विचित्रैः शस्त्रै-रस्त्रैरपितौ नृपावयुध्येतां । वन्येभ्याविव दशनै—रन्योन्यवधाभिलाषमती ॥ १२८ ॥

युध्ध्वा चिरमरिदमनं-गुरुशक्तिर्मालवाधिपश्चक्रे । गतवीर्यं गतशस्त्रं-भुजगं निर्विषमिव नरेंद्रः ॥ १२९ ॥ अरिदमननृपः श्रीप्रभ—नृपेण कलभो महागजेनेव । परिभूतः पश्चाङ्मुख—मवेक्षमाणः पलायिष्ट ॥ १३० ॥ अथ तस्यश्रियमखिलां—रथकड्याश्वीयहास्तिकप्रमुखां । जगृहे श्रीप्रभराज—स्तस्य श्रीर्विक्रमो यस्य ॥ १३१ ॥ आपूर्ण इवांबुधरो—निवृत्य रणसागरादवंतीशः । कृतसकललोकतोषो—निजनगरी माजगाम ततः ॥ १३२ ॥ तत्र त्रिवर्गसारं—राज्यश्रियमनुभवन्नसौ नृपतिः । भूयांसमनेहांसं-स्वःसुरपतिवदतिचक्राम ॥ १३३ ॥

શકયું નહિ. [૧૨૬] ત્યારે વિખરાયલા લશ્કરવાળા છતાં સામે ઉભા રહેલા અરિદમન રાજાને શ્રીકૃષ્ણ જેવા બળવાન્ માળવપતિએ લડવા બોલાવ્યો. [૧૨૭] બદ તે બન્ને રાજાઓ અનેક શસ્ત્ર, અને અસ્ત્રથી એક બીજાને મારવાની મતિવાળા જંગલી હાથીઓ જેમ દાંતોથી લડે, તેમ લડવા લાગ્યા. (૧૨૮)

માળવપતિએ ઘણા વખત સુધી લડીને અરિદમનને ગારૂડી જેમ સર્પને નિર્વિષ કરે, તેમ ગતવીર્ય અને ગતશસ્ત્ર કર્યો (૧૨૯) ત્યારે મોટા હાથીએ હણેલો હાથીનું બચ્ચું જેમ નાસે, તેમ શ્રીપ્રભરાજાએ પરાભવેલો અરિદમન પાછા મુખે જોતો થકો નાસવા માંડયો. [૧૩૦] હવે તેના રથ, ઘોડા, હાથી, વગેરે સઘળી લક્ષ્મી શ્રીપ્રભરાજાને મળી. કેમકે જેનો પરાક્રમ તેની લક્ષ્મી. (૧૩૧) ભરાયલાં વાદળાં માફક માળવપતિ રણસાગરથી નિવર્ત્તીને સઘળા લોકોને રાજી કરતો થકો પોતાની નગરીમાં આવ્યો. [૧૩૨] ત્યાં તે રાજા ત્રિવર્ગ સાધવા સાથે ઇંદ્રના માફક રાજ્યશ્રી ભોગવતો થકો ઘણો કાળ પસાર કરવા લાગ્યો. (૧૩૩)

तत्र प्रभासगुरवः–समवसृता अन्यदा सुमुनिसहिताः । बंधुपरिवारयुक्त–स्तान्नंतुं निर्ययौ राजा ॥ १३४ ॥ सम्यक् विनम्य मुनिपति–मिलातलाश्लिष्टमस्तको नृपतिः । निषसाद यथास्थानक–मथ गुरुरिति देशनां विवधे ॥ १३५ ॥

इहहि भवसमुद्रे संसरन् भूरिकालं–
कथमपि मनुजत्वं प्राप्नुयात् कोपि जीवः ।
तदपि कथमपीह प्राप्य सद्धर्मकर्म–
क्षमतनुबलमायुर्दीर्घकालाल्लभेत ॥ १३६ ॥

इदमपि समवाप्य प्रौढ मिथ्यात्वलुप्त–स्फुटविशदविवेकः पापतापातिरेकः । (ग्रं. ९०००) पुनरपि च भवेत्रानंतशोनंतदुःख–व्यतिकरविधुरो यं संभ्रमी बंभ्रमीति ॥ १३७ ॥ इति भवजलराशौ मज्जनोन्मज्जनानि–प्रविदधदिह दैवादाप्य भूयोपि नृत्वं । दृढगुणगणलब्धां जैनदीक्षां त-

---

ત્યાં એક વેળા સારા મુનિઓની સાથે પ્રભાસ નામના આચાર્ય સમોસર્યા. ત્યારે તેમને નમવા માટે ભાઈ અને પરિવારની સાથે રાજા નીકળ્યો. [૧૩૪] તે રાજા જમીનપર માથું અડાડી મુનીશ્વરને નમીને ઉચિત સ્થાને બેઠો, એટલે ગુરૂ આ રીતે દેશના દેવા લાગ્યા. (૧૩૫) આ સંસારમાં કોઇ પણ જીવ બહુ કાળ ભટકી ભટકીને મહા મુશ્કેલીએ મનુષ્યપણું પામે છે. તે પામતાં પણ ધર્મ, કર્મ કરવા સમર્થ શરીર બળ અને આયુષ્ય તો બહુ લાંબા વખતેજ મળે છે. [૧૩૬] એ પામીને પણ ભારે મિથ્યાત્વથી અતિ નિર્મળ વિવેક ખોઇને પાપ વધારી, ફરીને આ ભવમાં અનંત વાર અનંતા દુઃખની પીડાથી વિધુર થઇ, આ ઉતાવળીઓ જીવ ભટક્યા કરે છે. (૧૩૭)

(ગ્રં. ૯૦૦૦)

આ રીતે ભવસમુદ્રમાં નીચે બુડતો, અને ઉપર આવતો થકો નશીબયોગે ફરીને મનુષ્યપણું પામીને હે ભવ્ય લોકો ! તમે મજ્જુત ગુણગણથી બાંધેલી નાવ સમાન જૈનદીક્ષાને

रीव–च्छ्रयत भविकलोकाः क्लेशविच्छेददक्षां ॥ १३८ ॥

किंच—

अत्युत्कटभटकोटी–रथहरिकरिनिकरबलभरसमृद्धाः । यैर्जीयंतेरिपवः–परःशता जगति ते पुरुषाः ॥ १३९ ॥ येन पुनःस्वात्मा सा–वनल्प कुविकल्पकल्पनाकलितः । जीयेत तेन विजितं–त्रिजगदिदं, परमशूरो सौ ॥ १४० ॥

तथाचार्ष.

जो सहस्सं सहस्साणं–संगामे दुज्जए जिणे । एगं जिणिज्ज अप्पाणं–एस से परमो जओ ॥ १४१ ॥ एगे जिए जिया पंच–पंच जिए जिया दस । दसहाउ जिणित्ताणं–सव्वसत्तू जिणिज्ज तो ॥ १४२ ॥ इत्याकर्ण्य श्रीप्रभ–आनम्य गुरूनुवाच वः पार्श्वे । प्रव्रज्यामादास्ये–राज्यंन्यस्य प्रभाचंद्रे ॥१४३॥ देवानुप्रियमास्य व्यधाः प्रमादमिति सूरिणा गदिते ।

નાશ કરનારી જૈન દીક્ષાને અંગીકાર કરો. [૧૩૮] વળી અતિ ઉત્કટ ક્રોડો સુભટ, તથા રથ, ઘોડા, હાથીઓના લશ્કરવાળા દુશ્મનોને જેઓ જીતે, તેવા તો જગત્માં સેકડો માણસો મળે છે, પણ જે અનેક કુવિકલ્પની કલ્પના કરતા પોતાના આત્માને જીતે, તેણેજ આ ત્રણ જગત્ને જીત્યું છે, અને તેજ પરમ શૂર જાણવો. [૧૩૯–૧૪૦]

જે માટે આગમમાં કહેલું છે કેઃ—

જે સંગ્રામમાં લાખો દુર્જય દુશ્મનો જીતે, (તેના કરતાં) જે એક આત્માને જીતે, તેનો તે જય મોટો છે. [૧૪૧] એક જીતતાં પાંચ જીતાય છે, પાંચ જીતતાં દશ જીતાય છે, દશ જીત્યા, એટલે સર્વ શત્રુ જીતાયા જાણવા. (૧૪૨) એમ સાંભળીને શ્રીપ્રભ રાજા ગુરૂને નમીને બોલ્યો કે, હું પ્રભાચંદ્રને રાજ્ય સોંપી, તમારા પાસે દીક્ષા લઇશ. [૧૪૩] ત્યારે આચાર્યે કહ્યું કે, હે દેવાનુપ્રિય ! પ્રમાદ કરતો ના. એટલે રાજા

राजा सपरिवारो-निजधाम जगाम मुदितमनाः ॥ १४४ ॥ अथ सकलराजलोक-मत्यक्षं भ्रातरं प्रभाचंद्रं । संस्थाप्य राज्यभारे-प्रददाविति नरपतिः शिक्षां ॥ १४५ ॥

वत्सातरंगशत्रून्-सदा जये, रविजये यतस्तेषां । विजिता अप्यजिताः खलु बलवंतः शत्रवो बाह्याः ॥ १४६ ॥ परिपालयेः प्रजास्त्वं-मालिक इव सुमनसः प्रयत्नेन । सर्वत्राप्यौचित्यं-हृदये दध्या जिनेंद्रमिव ॥ १४७ ॥ इतरेतराविघातेन-वत्स धर्मार्थकामपुरुषार्थात् । प्रतिलेखनादिचेष्टाः-सुसाधुरिव साधयेः सततं ॥ १४८ ॥ सिचयमिवानलदूषित-मुज्झेर्निजमपि नयेन परिहीणं । दुर्दममिंद्रियवर्गं दमये-स्तुरगाहिनिवहमिव ॥ १४९ ॥ परिवर्जयेः कुसंगं-द्विदलान्ते घोलभोजनमिवोच्चैः । सेवेथा आर्यजनं-घनं यथा चातकसमूहः ॥ १५० ॥

बंधो बंधुरभक्त्या-बंधुमिव श्राद्धलोकमंचेथा । रक्षेर्नयेन वसुधां-

---

હર્ષિત થઇ, પરિવાર સાથે પોતાના મુકામે આવ્યો. (૧૪૪) હવે સઘળા રાજલોકની ગ્રમક્ષમાં પોતાના ભાઇ પ્રભાચંદ્રને રાજ્યમાં સ્થાપીને તે રાજા તેને આ રીતે શીખામણ દેવા લાગ્યો. (૧૪૫) હે વત્સ ! તું અંતરંગના શત્રુઓને હમેશ જીતજે. કેમકે તેઓ નહિ જીતાયા હશે તો, બહારના બળવાન્ શત્રુઓ જીતેલા છતાં વગર જીતેલાજ જાણવા. (૧૪૬) વળી તું માળી જેમ ફુલોને રાખે, તેમ તારી પ્રજાઓને મહેનત લઇ પાળજે, તથા હૃદયમાં જિનેંદ્રને ધારીએ, તેમ સઘળા સ્થળે ઔચિત્યપણું ધારજે. (૧૪૭) તેમજ સુસાધુ જેમ હમેશાં પડિલેહણા વગેરે ક્રિયાઓને સાથે સાથે સાધે છે, તેમ તું પણ ધર્મ, અર્થ, કામ, એ ત્રણ પુરૂષાર્થને પરસ્પર અવિરોધે સાધતો રહેજે. (૧૪૮) અગ્નિથી બગડેલાં કપડાંની માફક ન્યાયહીન પોતાનાં સગાંને દુર મુકજે, અને ઘોડાઓની માફક દુર્દમ ઇંદ્રિયોને દમતો રહેજે, દ્વિદળના અન્નમાં ગોરસના માફક કુસંગને વર્જજે, અને ચાતકો જેમ મેઘને સેવે, તેમ આર્યજનને સેવજે. [૧૪૯-૧૫૦]

હે બંધુ ! રૂડી ભક્તિથી શ્રદ્ધાવાન્ જનોને ભાઇ ગણીને પૂજજે, અને નાગ જેમ

सुधां यथा भोगिनां भर्त्ता ॥ १५१ ॥ आधारस्त्वमसि धुवो—नाधार स्तव समस्ति कश्चिदपि । आत्मानमात्मनैव हि—तत्सततं धारयेर्वत्स ॥ १५२ ॥ इत्युक्त्वा तूष्णीकी—भूते श्रीप्रभनृपे प्रभाचंद्रः । एवमिति प्रतिपेदे—सर्वं भक्त्या नमद्ग्रीवः ॥ १५३ ॥ अथ सुस्नातविलिप्तो—रत्नालंकारभूषितशरीरः । सदशांशुकसिचयधरो—ददर्थिभ्यो महादानं ॥ १५४ ॥ कृतसकलसंघपूजो—भ्रातृविधापितसहस्रनरवाह्यां । शिविकामध्यासामास—पुष्पकं यक्षराज इव ॥ १५५ ॥

चतुरंगचमूयुक्तेन—बंधुभूपेन विनयनम्रेण । अनुगम्यमान उच्चै—र्मागधकृतजयजयारावः ॥ १५६ ॥ पुर्यामध्यंमध्येन—निर्ययौनरपतिर्महाभूत्या । गुरुपदपावितमुद्यान—माप्य शिविकात उदतारीत् ॥ १५७ ॥ अथ भूषणसंभारं—विश्वं विश्वंभरापतिर्झगिति । उदतारयदंगाद्भुज—दंडादिव वसुमतीभारं ॥ १५८ ॥ सिद्धांतगदितविधिना—गुरुणाथ श्री-

---

અમૃતને સંભાળી રાખે છે, તેમ તું વસુધાને ન્યાયથી રાખજે. [૧૫૧] તું પૃથ્વીનો આધાર છે, તારો આધાર કોઇ નથી, માટે હે વત્સ ! તું પોતાવડેજ પોતાને હમેશ ધારી રાખજે. (૧૫૨) એમ કહીને શ્રીપ્રભ રાજા ચુપ થયો, એટલે પ્રભાચંદ્ર ભક્તિથી ગળું નમાવી, એ સઘળી શીખામણ કબુલ રાખવા લાગ્યો. (૧૫૩) બાદ શ્રીપ્રભરાજા ન્હાઇ ધોઇ રત્નાલંકારથી વિભૂષીત થઇ, છેડાવાળાં રેશમી વસ્ત્રો પહેરી યાચકોને મહા દાન દેતો થકો સકળ સંઘની પૂજા કરી, ભાઇએ કરાવેલ હજાર માણસોથી વહાતી પાલખીપર-પુષ્પક વિમાનપર કુબેર ચડે, તેમ ચડી બેઠો. [૧૫૪–૧૫૫]

બાદ ચતુરંગી સેનાવાળો વિનયનમ્ર ભાઇ તેની પાછળ ચાલવા લાગ્યો, અને માગધ જનો ઉંચા સ્વરે જયજય શબ્દ પુકારવા લાગ્યા. (૧૫૬) એ રીતે મોટા આડંબરથી રાજા નગરીની વચ્ચોવચ્ચથી પસાર થઇ, ગુરૂના ચરણથી પવિત્ર ઉદ્યાનમાં આવતાં પાલખીથી નીચે ઉતર્યો. (૧૫૭) હવે તે ભૂપતિએ પોતાના ભુજદંડથી જેમ જમીનનો ભાર ઉતાર્યો, તેમ પોતાના અંગથી સઘળાં આભૂષણો ઉતાર્યાં. [૧૫૮] બાદ ગુરૂએ સિદ્ધાંતમાં

प्रभः परिव्राज्य । परमांमुदंदधत्सा—भारत्या समनुशिष्ट इति ॥ १५९ ॥ कमठेंदुदर्शनमिव—प्राप्यदुरापां जिनाधिपतिदीक्षां । शयनासनादिचेष्टा—सकलापि हि यतनया कार्या ॥ १६० ॥

यतः

यतना सुधर्मजननी—यतना धर्मस्य पालनी नित्यं । तद्वृद्धिकरी यतना—सर्वत्र सुखावहा यतना ॥ १६१ ॥ एकामेवहि यतनां—संसेव्य विलीनकर्ममलपटलाः । प्रापुरनंताः सत्त्वाः शिवमक्षयमव्ययं स्थानं ॥ १६२ ॥ एवं शिक्षांदत्वा—प्रभासगुरवो विजहुरन्यत्र । शारदिकवारिदा इव—तिष्ठंत्येकत्र नहि मुनयः ॥ १६३ ॥ श्रीप्रभराजर्षिरपि—प्रतिसमयविशुध्यदमलपरिणामः । यूथपतिनेव कलभः—सततं विजहार सह गुरुणा ॥ १६४ ॥

जिनपरिवृढगदितागम—सूत्रार्थसुधां पिबन्नमर्त्य इव । पंचमहाव्रत-

---

કહેલી વિધિથી તેને દીક્ષા આપીને પરમ આનંદ આપનારી વાણીથી આ રીતે શીખામણ આપી. (૧૫૯) કાચબાને ચંદ્રનું દર્શન થયું, તે દૃષ્ટાંતે દુર્લભ જિનદીક્ષા પામીને શયન, આસન વગેરે સઘળી ચેષ્ટા યતનાપૂર્વક કરવી જોઇએ. [૧૬૦]

જે માટે યતના ધર્મની ઉત્પાદક છે, યતના ધર્મની નિત્ય રક્ષક છે, યતના તેની વૃદ્ધિ કરનાર છે, અને સર્વ સ્થળે યતનાજ સુખકારક છે. (૧૬૧) એક યતનાને સેવીને અનંતા જીવો કર્મમળ દૂર કરી, અક્ષય અવ્યય શિવપદ પામ્યા છે. [૧૬૨] એમ શિક્ષા આપીને પ્રભાસગુરૂ બીજા સ્થળે વિચરવા લાગ્યા. કેમકે શરદૃઋતુના વાદળાં માફક મુનિઓ એક ઠેકાણે રહેતા નથી. [૧૬૩] શ્રીપ્રભ રાજા પણ પ્રતિસમયે વિશુદ્ધ થતાં નિર્મળ પરિણામવાળો થઇને હાથીનું બચ્ચું જેમ યૂથપતિ [ટોળાના સરદાર] હાથી સાથે ફરે, તેમ ગુરૂની સંઘાતે હમેશ વિચરવા લાગ્યો. (૧૬૪)

હવે તે શ્રીપ્રભ મુનિ જિનેશ્વર કથિત આગમના સૂત્રાર્થરૂપ અમૃતને દેવની માફક

भारं-दधदवनीभारमिव शेषः ॥ १६५ ॥ पंच निशाताः समिती-र्हस्त-ग्रामानिव धनुर्धरो बिभ्रत् । तिस्रो गुप्तीः शक्ती-र्नरपतिरिव धारयन् शुद्धाः ॥ १६६ ॥ मार्गानुसारिणीमिह-कुर्वन् सकलां क्रियां सुपांथइव । श्रद्धां प्रवरां धर्मे-तन्वन् मकरंद इव भृंगः ॥ १६७ ॥ प्रज्ञापनीयभावेन-संयुतो भद्रवारण इवोच्चैः । साधक इव विद्यासु-प्रमादमुक्तः क्रियासु सदा ॥ १६८ ॥ आद्रियमाणः शक्या-नुष्ठाने योग्यमंद इव वैद्यः । हृष्यन् गुणाढ्यसंगे-सरउत्संगे मराल इव ॥ १६९ ॥

आराधयन् गुरुजनं-परमात्मानं यथा परमयोगी । सुचिरं निरति-चारं-चरणं परिपालयामास ॥ १७० ॥ अथ वर्गत्रयपालन-परायणस्य प्रभेंदुराजस्य । तनयावुभावभूतां-हरिषेणः पद्मसंज्ञश्च ॥ १७१ ॥ तौ सकलकलापूर्णौ-पूर्णेंदू इव समस्तजनसुखदौ । अपराविव भुजदंडौ—

પીતો થકો, પાંચ મહાવ્રતના ભારને શેષનાગ જેમ પૃથ્વીનો ભાર ઉપાડે, તેમ ઉપાડતો થકો,—[૧૬૫] પાંચ તીક્ષ્ણ સમિતિઓને ધનુર્ધારી જેમ હાથમાં પાંચ બાણ ધરે, તેમ ધારતો થકો, ત્રણ ગુપ્તિઓને રાજા જેમ ત્રણ શક્તિઓ ધારે, તેમ શુદ્ધ રીતે ધારતો થકો,—(૧૬૬) સારા વટેમાર્ગુની માફક સઘળી માર્ગાનુસારિણી ક્રિયા કરતો થકો, ફૂલોના રસમાં ભમરો જેમ પ્રીતિ રાખે, તેમ ધર્મમાં શ્રદ્ધા રાખતો થકો,—[૧૬૭] ભદ્ર હાથીની માફક પ્રજ્ઞાપનીયપણાથી યુક્ત થયો થકો, વિદ્યાસાધક જેમ વિદ્યાઓમાં અપ્રમાદી રહે, તેમ ક્રિયાઓમાં હમેશ પ્રમાદ રહિત રહેતો થકો,—[૧૬૮] વૈદ્ય જેમ યોગ્ય માંદાને સ્વીકારે, તેમ શક્યાનુષ્ઠાનને સ્વીકારતો થકો, તળાવના વચ્ચે રહી, હંસ જેમ રાજી થાય, તેમ ગુણવાનના સંગે રાજી થતો થકો,— (૧૬૯)

અને પરમ યોગી જેમ પરમાત્માને આરાધે, તેમ ગુરૂજનને આરાધતો થકો, ચિરંકાળ લગી નિરતીચાર ચારિત્ર પાળવા લાગ્યો. [૧૭૦] હવે આણીમેર ત્રિવર્ગ પાળતા પ્રભાચંદ્ર રાજાને હરિષેણ અને પદ્મનામે બે પુત્રો થયા. (૧૭૧) તે બે સકળ કળાઓથી પૂર્ણ થઇ, પૂનમના ચંદ્ર માફક સમસ્ત જનને સુખદાયી થયા થકા રાજાના

रेजाते तस्य भूपस्य ॥ १७२ ॥ अपरेद्युरवनिजाने–रजनिष्टारोचिरुत्व-मन्नादौ । मरूनिपतितहंस इव–प्रतिदिनमक्षीयते ततो सौ ॥ १७३ ॥ आहूता वरवैद्याः–क्रिया विचित्राश्च तैः समारब्धाः । न च जज्ञे कोपि गुणो–व्यचिंतयत्तत इति नरेंद्रः ॥ १७४ ॥

द्रव्यौषधैः किमेभि—र्ज्येष्ठं पुत्रं निवेश्य राज्यभरे । कौमारे च कनिष्ठं श्रयामि धर्मौषधमिदानीं ॥ १७५ ॥ अत्रांतरे च सहसा–संजात प्रबलशूलरोगेण । अपि वैद्यैः क्रियमाणो–पचार आपन्मृतिं पद्मः ॥ १७६ ॥ अथ तनयमरणमाकर्ण्य–नृपतिरस्तोकशोक संतप्तः । दंभोलिनिहत गिरिरिव–मूर्च्छाविवशः पपात भुवि ॥ १७७ ॥ पवनाद्युपचारवशा—दवाप्य चैतन्यमिति नृपोव्यलपत् । हा पुत्र क्वासि गतः ?–प्रतिवचनं किं न ममदत्से ? ॥ १७८ ॥ उदियाय पूर्णचंद्रो–हा ग्रस्यत मंक्षु सैंहि-केयेन । अहह फलेग्रहिरभवत् तरुरुदमूल्यत महाकरिणा ॥ १७९ ॥

જાણે બીજા બે ભુજદંડ હોય, તેમ શોભવા લાગ્યા. [૧૭૨] હવે એક વેળા રાજાને અન્ન વગેરેમાં અરોચકભાવ થયો, તેથી તે મરૂભૂમિમાં આવી પડેલા હંસના માફક પ્રતિ-દિન ઘસાતો ચાલ્યો. [૧૭૩) ત્યારે સારા વૈદ્યો બોલાવવામાં આવ્યા, તેમણે અનેક ક્રિયાઓ કરવા માંડી, પણ કંઈ ગુણ થયો નહિ, ત્યારે રાજા આ રીતે વિચારવા લાગ્યો. (૧૭૪)

આ દ્રવ્યૌષધોથી શું થવાનું છે ? હવે તો મોટા પુત્રને રાજ્યમાં સ્થાપી, અને નાનાને યુવરાજપદે સ્થાપી, હું ધર્મૌષધ કરું તો ઠીક. [૧૭૫] એવામાં ઓચિંતા થએલા સખ્ત શૂળથી વૈદ્યોએ ઉપચાર કર્યા છતાં પણ પદ્મકુમાર મરણ પામ્યો. [૧૭૬] ત્યારે પુત્રનું મરણ સાંભળીને રાજા ભારે શોકથી સંતપ્ત થઇ વજ્રથી હણાયલા પર્વતના માફક મૂર્છાવશ જમીનપર પડયો. [૧૭૭] બાદ પવનાદિકના ઉપચારથી તે ચૈતન્ય પામ્યો, ત્યારે આ રીતે વિલાપ કરવા લાગ્યો;—હે પુત્ર ! તું ક્યાં ગયો છે ? મને ઉત્તર કેમ નથી આપતો ? [૧૭૮] અરે ! પૂર્ણચંદ્ર ઉગ્યો કે, ઝટ દઇને રાહુએ ગ્રસ્ત કર્યો ! અરેરે ! ફળપર આવેલું ઝાડ મોટા હાથીએ ઉખેડી નાખ્યું ! (૧૭૯)

पोतः प्राप पयोनिधि-पारं तटशिखरिणा हहाभंजि ! । दृष्टो निधिर्विशालो—हा हा हा ह्रियत हतविधिना ! ॥ १८० ॥ उदनम दंभोवाहो-नभस्वता क्षिप्यत क्षणेनाहो ! । राज्योचितोजनि हहा—तनयः समहारि दैवेन ! ॥ १८१ ॥ एवं प्रलपन् सचिवै-र्व्यबोधि कथमपि नृपो करोत् सूनोः । मृतकृत्यमल्पशोकः-कालेनै वं मनसि दध्यौ ॥ १८२ ॥ ये दंडसात् सुमेरुं-पृथिवीं वा छत्रसात् क्षमाः कर्त्तुं । तेपि स्वमन्यमवितुं-नालं किं हंत पुनरितरे ! ॥ १८३ ॥ पीयूषपोषपुष्टः-पाविभीषणपाणिरमरकोटिवृतः । सुरपतिरपि सुरलोका-च्च्यवते पक्वंफल-मिवद्रोः ॥ १८४ ॥

षष्टिं पुत्रसहस्रान्-सगरश्चक्रयपि न रक्षितुमधीशः । ज्वलनप्रभा-यमादिव-ततोपि किं त्वं बलिष्टतरः ? ॥ १८५ ॥ कृत्वा पातकमपि यान्-पुष्येदुत्पश्यतामपि हि तेषां । रंक इव यमेन भवी-गतशरणोनीयते

હાય હાય ! દરિયાની કાંઠે આવેલાં વહાણ ખડકે ભાંગી નાખ્યાં, અરેરે ! મસ મોટો નિધાન દેખાયું કે, કમનશીબે હરી લીધું ! [૧૮૦] અરે વાદળું ઉંચે ચડયું કે, પવને ક્ષણમાં વિખેરી નાખ્યું, હાય હાય ! એમ આ કુમાર રાજ્યને ઉચિત થયો, એટલામાં દૈવે હરી લીધો. [૧૮૧] એ રીતે પ્રલાપ કરતા રાજાને મંત્રિઓએ જેમ તેમ કરી સમજાવ્યો, એટલે તેણે તે પુત્રનું નૃત્યકૃત્ય કર્યું. બાદ કાળે કરી અલ્પ શોક થયો થકો, તે મનમાં આવું વિચારવા લાગ્યો. (૧૮૨) જેઓ મેરૂને દંડ અને પૃથ્વીને છત્ર કરવા સમર્થ હતા, તેઓ પણ સ્વપરને બચાવી શકયા નથી, તો બીજાનો શું ગજું છે ? [૧૮૩] અમૃતથી પોષાતો, હાથમાં ભયાનક વજ્રને ધારણ કરતો, ક્રોડો દેવોથી પરિવરેલો ઇંદ્ર પણ ઝાડપરથી પાકેલું ફળ પડે, તેમ દેવલોકથી પડે છે. [૧૮૪]

સગર ચક્રવર્ત્તી પણ સાઠ હજાર છોકરાઓને યમ જેવા જ્વલન પ્રભથી બચાવી શકયો નહિ, તો શું તું તેનાથી પણ વધારે બળિષ્ટ છે કે ? (૧૮૫) પાપ કરીને જેમને પોષ્યા હોય, તેઓ દેખતાં છતાં રાંકની માફક બિચારા અશરણ સંસારી જીવને યમ

कृष्ट्वा ॥ १८६ ॥ नीतस्ततश्च नरके-सहते खलु वेदनाः परमघोराः । जन्मांतरानुधावीनि देहिनामहह कर्माणि ! ॥ १८७ ॥ जननी मे जनको मे-भ्राता मे सुतकलत्रवर्गो मे । मिथ्यैव बुद्धिरेषा-न देहमपि वस्तुतः स्वीयं ॥ १८८ ॥ पुत्रादीनामेषां-भिन्नस्थानात्समेयुषां स्थाने । एकत्र निवासः खलु-विहगानामिवतरौ सायं ॥ १८९ ॥

गच्छंति ततोपि पुनः-पृथक् पृथक् स्थानकेषु देहभृतः । एकत्र निशि सुषुप्ता-निशावसाने यथा पांथाः ॥ १९० ॥ अरघट्टघटीन्याया-दथैहिरेयाहिरां क्रियां सततं । इह कुर्वतां तनुभृतां-को हंत स्वः परः को वा ? ॥ १९१ ॥ एवं यावत् संवेग-संगतश्चिंतयत्यवनिनाथः । तावत् तत्रोद्याने-कुमारनंदी गुरुः प्राप ॥ १९२ ॥ गुर्वागमनं ज्ञात्वा-गत्वा तत्र प्रणम्य मुनिनाथं । उचितस्थाने निषसाद-देशनामथ गुरुर्वि-

---

ઘસડીને લઈ જાય છે. [૧૮૬] તેને તે નરકમાં લાવે છે, એટલે ત્યાં તે પરમ ઘોર વેદનાઓ સહે. છે. ક્રમકે પ્રાણિઓનાં કર્મ જન્માંતરે પણ દોડતાં આવે છે. (૧૮૭) મારી મા, મારો બાપ, મારો ભાઈ, મારા દીકરા, મારી સ્ત્રી, એ બુદ્ધિ મિથ્યા છે. પરમાર્થે દેહ પણ પોતાનો નથી. [૧૮૮] આ એ પુત્રાદિક જૂદાં જૂદાં સ્થાનથી આવીને એક સ્થાને આવી વસ્યાં છે. તે ખરેખર સંધ્યાકાળે ઝાડમાં પક્ષિઓ આવી વસે, તેના જેવું છે. [૧૮૯]

ત્યાંથી પાછા રાતે સૂઈને સવારે ઉઠેલા વટેમાર્ગુઓના માફક જીવો જૂદાં જૂદાં સ્થાને ચાલ્યા જાય છે. [૧૯૦] આ રીતે અરઘટ્ટની ઘડીઓના ન્યાયથી હમેશાં આવજાવની ક્રિયા કરતા જીવોને ઇહાં કોણ પોતાનો અને કોણ પારકો છે ? (૧૯૧) એ રીતે રાજા સંવેગે ચડીને ચિંતવતો હતો, એવામાં ત્યાં ઉદ્યાનમાં કુમારનંદી ગુરૂ પધાર્યા. [૧૯૨] ત્યારે ગુરૂનું આગમન જાણી ત્યાં જઇ તેમને નમીને રાજા ઉચિત સ્થળે બેઠો, એટલે ગુરૂ દેશના દેવા લાગ્યા. [૧૯૩] સઘળી બાજુએથી પોતાના જાતવાળાઓથી તથા

दधे ॥ १९३ ॥ दिग्भ्यः सर्वाभ्योपि-स्वतोन्यतश्चापतद्विपद्विवहाः । यम-मंदंतयंत्रसंस्थाः-कष्टं जीवंति तनुभाजः ॥ १९४ ॥

जीवातुभिरगदगणै-रायुर्वेदेन सप्रभेदेन । मृत्युंजयादिभिर्वर-मंत्रै-र्नहि रक्ष्यते मृत्योः ॥ १९५ ॥ अहह खलमार्यमधनं-महाधनं मंदमेधसं प्राज्ञं । कवलयति सततमशरण-मविशेषेणेव समवर्त्ती ॥ १९६ ॥ तापापहमजरामर—पदमंदश्रमणधर्ममामृतसमं । मुक्त्वा तदत्र भुवने-क्वचिदपिनान्यच्छरणमस्ति ॥ १९७ ॥ इत्याकर्ण्य नरेशो-विनम्ययतिपतिपदौ जगादेति । यतिधर्मेच्छोरनिशं-पालितगृहमेधि धर्मस्य ॥ १९८ ॥ पूर्वभवार्जितगुरुतर—रोगभरप्रसरविधुरदेहस्य । दीक्षां गृहीतुमनलंभूष्णो रुचितं किमधुना मे ? ॥ १९९ ॥

अल्पायुष्कत्वमथो—जानन्नृपतेर्गुरुर्वभाणेहं । स्वातीचारान् विकटय-यमांश्चपुनरुच्चर नरेश ॥ २०० ॥ क्षमयस्व प्राणिगणं-व्युत्सृज सर्वा-

---

પરજ્ઞત- વાળાઓથી આવી પડતી અનેક આપ્તો ભોગવતા થકા યમના દંતયંત્રમાં રહેલા પ્રાણિઓ મહા મુશ્કેલીએ જીવે છે. (૧૯૪)

જીવાડનાર અનેક ઔષધો તથા તમામ જાતના આયુર્વેદના ઉપચારો તથા મૃત્યુંજય વગેરે સરસ મંત્રો પણ મોતથી બચાવી શકતા નથી. [૧૯૫] અફસોસની વાત છે કે, ધૂર્ત તથા આર્યને, નિર્ધન તથા મહા ધનવાનને, મંદ બુદ્ધિ તથા પ્રાજ્ઞને, સમવર્ત્તી (મૃત્યુ) કોઇ પણ ફરક રાખ્યા વગર નિરંતર ખાતો રહે છે. [૧૯૬] માટે તાપને હરનાર અને અજરામર પદ દેનાર અમૃત સમાન શ્રમણધર્મને છોડીને, આ જગત્માં કયાં પણ બીજું કોઇ શરણ નથી. (૧૯૭) એમ સાંભળીને રાજા યતીશ્વરના પગે નમીને બોલ્યો કે, હું શ્રાવકનો ધર્મ પાળી ચૂકયો છું, અને યતિધર્મ કરવા નિરંતર ઇચ્છું છું. [૧૯૮] છતાં પૂર્વભવે ઉપાર્જેલા (કર્મથી થએલા) ભારે રોગના જોરથી શરીરે પીડાઉં છું, એટલે દીક્ષા લઇ નથી શકતો, માટે હવે મારૂં શું કરવું ઉચિત છે ? [૧૯૯]

ત્યારે ગુરૂ રાજાનું અલ્પાયુ જાણીને બોલ્યા કે, હે નરેશ્વર ! તારા અતિચાર

णि पातकपदानि । जिनसिद्धसाधुधर्मं-सम्यक् शरणं प्रपद्यस्व ॥ २०१ ॥ गर्हस्व दुःकृतभरं-कुरुष्व सुकृतानुमोदनं भूप । शुभभावनां च भावय-मुदितो नशनं प्रपद्यस्व ॥ २०२ ॥ पंच नमस्कारं स्मर-विमुंच ममतां च राज्यराष्ट्रादौ । इति गुरुगिरो निशम्य-प्रमुदितचित्तो महीभर्त्ता ॥ २०३ ॥ निजतनये हरिषेणे-हर्षेण निवेश्य वसुमतीभारं । संघं च क्षमयित्वा-विधाप्य पूजां जिनगृहेषु ॥ २०४ ॥

सुगुरोः समक्षमनशन-मुररीचक्रे समाहितमनस्कः । स्वाध्यायध्या-नपरो-वासरसप्तक्रमसीयाय ॥ २०५ ॥ विदलच्चरणावारक-कर्मचयो-ऽंतरे प्रभाचंद्रः । विहितांजलिर्गुरुमिति-विज्ञपयामासिवानेवं ॥ २०६ ॥ दीक्षा जगृहे न मया-प्रभोल्पसत्वेन पूर्वमधुना किं । सा समुचिता गृहीतुं-नवेति ? गुरुराह भो भूप ॥ २०७ ॥ एकाहमपि प्राणी-प्रव्र-ज्यां पालयेदनन्यमनाः । यदि नहि गच्छेन्मोक्षं-स भवेद्वैमानिकोवश्यं

અલેવ, અને ફરીને વ્રતનો ઉચ્ચાર કરે. [૨૦૦] પ્રાણીઓને ખમાવ, સઘળાં પાપસ્થાનને વોસરાવ, જિન-સિદ્ધ-સાધુ અને ધર્મનું રૂડી રીતે શરણ લે, (૨૦૧) દુઃકૃતની ગર્હા કર, સુકૃતની અનુમોદના કર, શુભ ભાવના ભાવ, અને આનંદથી અણસણું લે. [૨૦૨] પંચ નમસ્કાર મંત્ર સંભાર, અને રાજ્ય અને રાષ્ટ્રની મમતા છોડ; એમ ગુરૂની વાણી સાંભળીને રાજા હર્ષિત થયો. [૨૦૩] બાદ તેણે પોતાના પુત્ર હરિષેણને હર્ષથી પૃથ્વીનો ભાર સોંપ્યો, સંઘને ખમાવ્યું, અને જિનમંદિરોમાં પૂજા કરાવી. [૨૦૪]

બાદ તેણે સુગુરૂની સાંખે સમાહિત મનથી અણસણ લઈ, સ્વાધ્યાય ધ્યાનમાં તત્પર રહી, સાત દિવસ પસાર કર્યા; એવામાં તેનું ચારિત્રાવરણી કર્મ તૂટયું, એટલે તે અંજલિ જોડીને ગુરૂને આ રીતે વિનવવા લાગ્યો. [૨૦૫–૨૦૬] હે પ્રભુ ! મેં અલ્પ સત્ત્વવાન્ બની પૂર્વે દીક્ષા નથી લીધી, તો હવે તે લેવી ઉચિત છે કે નહિ ? ત્યારે ગુરૂ બોલ્યા કે, હે ભૂપતિ ! જે પ્રાણી એક મનથી એક દિવસ પણ પ્રવ્રજ્યા પાળે, તે જો મોક્ષે નહિ જાય, તો વૈમાનિક તો અવશ્ય થાય છે. [૨૦૭–૨૦૮] માટે હજુ પણ

॥ ૨૦૮ ॥ तत् संस्तारकदीक्षामधुनापि विधेहि मेहि समभावं। श्रुत्वैवं मुदितमनाः संस्तारकयत्यभून्नृपतिः ॥ २०९ ॥

अनिशं श्रुतिपत्रपुटे न पिबन् समयामृतं विगततृष्णः । अवगाढो हंस इव-स्फुर्जन्निरवधिसमाधिहृदे ॥ २१० ॥ पक्षं विहितानशनः-पंचनमस्कृतिमनुस्मरन् मनसि । मृत्वा स वैजयंते-महर्द्धिरमरः समुत्पेदे ॥ २११ ॥ ग्रामपुरकर्वटादिषु-सार्द्धं विहरन् प्रभासमुनिपतिना । श्रीप्रभमुनिररिदमन—क्षितिपतिजनपदमथायासीत् ॥ २१२ ॥ तत्र च निशम्य लोकात् प्रभेंदुराजस्य मरणवृत्तांतं । वैराग्योपगतमना-एवं स महामना दध्यौ ॥ २१३ ॥ धन्यः कृतकृत्यो यं-कृतार्थजन्मा नृपः प्रभाचंद्रः । पंडितमरणं लब्धं-भवकोटिसुदुर्लभं येन ॥ २१४ ॥

सुरगिरिधीरेणापि च-मर्त्तव्यं फेरुभीरुणापि तथा । उभयोर्नियते मरणे-धीरतया तद्वरं मरणं ॥ २१५ ॥ तद्वेधाकृतसंलेखनस्य चिरावि-

---

संस्तारक दीक्षा लइ ले, अने समभाव धारण कर; એમ સાંભળીને રાજા હર્ષે પામી संस्तारक यति थयो. [२०९]

તે નિરંતર કર્ણરૂપ પત્રપુટથી સિદ્ધાંતરૂપી અમૃત પીતો થકો, તૃષ્ણા રહિત થઇને ઉછળતા મહાન્ સમાધિરૂપ હ્રદયમાં હંસની માફક અવગાહના કરવા લાગ્યો. (૨૧૦) આ રીતે પંદર દિવસ અણસણ પાળી મનમાં પંચ નમસ્કાર સંભારતો થકો, મરીને વૈજયંત વિમાનમાં મોટી ઋદ્ધિવાળો દેવતા થયો. (૨૧૧) આણીમેર શ્રીપ્રભમુનિ પ્રભાસમુનીશ્વરના સાથે ગામ, પુર અને ખેડા ખણાડામાં વિચરતો થકો, અરિદમન રાજાના દેશમાં આવ્યો. [૨૧૨] ત્યાં લોકમુખે પ્રભાચંદ્ર રાજાનું મરણ-વૃત્તાંત સાંભળીને વૈરાગ્ય પામી, તે મહા મનસ્વી આવું ચિંતવવા લાગ્યો કે, એ પ્રભાચંદ્રરાજા ધન્ય અને કૃતકૃત્ય થયો, કે જેણે કોડો ભવમાં પણ અતિ દુર્લભ પંડિત-મરણ મેળવ્યું. [૨૧૩-૨૧૪]

મેરૂ જેવા ધીરને પણ મરવાનું છે, અને શિયાળ જેવા બીકણને પણ મરવાનું છે, એમ બંનેને મરવું તો નક્કી છે, તો પછી ધીર રહીનેજ મરવું સારૂં છે. (૨૧૫) માટે

हितविमलचरणस्य । अभ्युद्यतमरणं खलु—विधातुमुचितं ममाप्यधुना ॥ २१६ ॥ एवं विभाव्य स मुनि–र्गुरूननुज्ञाप्य पापरिपुमुक्तः । प्रति-समयशुध्यदध्यवसायो देहेपिच निरीहः ॥ २१७ ॥ समशत्रुमित्रभावो–निर्जंतुशिलातलं समनुसृत्य । विदधे विधिना सुमना–अनशनमथ पाद-पोपगमं ॥ २१८ ॥ अत्रांतरे चरमुखा –दरिदमननृपो निशम्य तद्वृत्तं । आगम्य तत्र हृष्टस्तस्य मुनेरिति नुतिं चक्रे ॥ २१९ ॥

जय जय मुनीश विकसितशतदलदलपटलविमलकीर्त्तिभर । निःशे-षसत्वसंहति–रक्षादक्षाशय सुधीर ॥ २२० ॥ शुचिसत्यवचनरचना–प्रपं-चपीयूषशमितभवदाह । दशनविशोधनमात्रेपि–परधने निःस्पृहमनस्क ॥ २२१ ॥ जितभुवनमदनमदकल–कुंभस्थलदलनकेसरिवरीष्ट । पदलग्नधू-लिलीला–परिमुक्तप्राज्यसाम्राज्य ॥ २२२ ॥ मैत्रीप्रमोदकरुणा–माध्यस्थ्य महार्णवावगाढाय । अतिदुःकरतरतपसे–नमोनमस्ते महाभाग ॥ २२३ ॥

એ પ્રકારે સંલેખના મેં કરી છે, અને ચિરકાળ ચારિત્ર પાળ્યું છે, તો હવે મારે મરણ સામે થઇ મરવું, એટલે અણસણ લઇ મરવું ઉચિત છે. (૨૧૬) એમ વિચારીને તે મુનિ ગુરૂની રજા લઇ પાપથી મુક્ત રહી, પ્રતિસમય ચડતા પરિણામથી દેહમાં પણ નિઃસ્પૃહ થયો થકો—શત્રુ મિત્રપર સમભાવ રાખી નિર્જિવ શિલાપર જઇને, નિર્મળ મનથી વિધિપૂર્વક પાદપોપગમ અણસણ લેતો હવો. [૨૧૭-૨૧૮] આ અવસરે ચરના મુખથી તે વૃત્તાંત સાંભળીને અરિદમનરાજા ત્યાં આવી હર્ષ પામી, તે મુનિની આ રીતે સ્તુતિ કરવા લાગ્યો. (૨૧૯)

હે મુનીશ્વર ! તું વિકસિત શત પત્રના દળપટલના જેવી વિમળ કીર્ત્તિવાળો છે, સઘળા જીવોની રક્ષામાં દક્ષ આશયવાળો છે, જબરદસ્ત ધૈર્યવાળો છે. (૨૨૦) પવિત્ર સત્ય વચનની રચનાના વિસ્તારરૂપ અમૃતથી સંસારની બળતરાને સમાવનાર છે, દાંત શોધવા જેટલી પરાઇ ચીજમાં પણ નિઃસ્પૃહ મન રાખનાર છે. (૨૨૧) જગતને જીતનાર કામરૂપ હાથીના કુંભસ્થળ વિદારવામાં મોટા કેસરીસિંહ સમાન છે, અને પગમાં લાગેલી

इति तेन नूयमानोपि सर्वथोत्कर्षवर्जितः स मुनिः। तत्कालं त्रुटितायुः-परमध्यानं समधिरुढः ॥ २२४ ॥

मुक्त्वा तनूमवक्रयकुटीपरीत्यागहेलयाचैव । सवार्थवरविमाने-त्रिदशवरिष्ठः समजनिष्ट ॥ २२५ ॥ हर्षप्रकर्षकलितै-रथ तस्य कलेवरस्य संनिहितैः । विबुधैर्विदधे महिमा-गंधोदककुसुमवर्षेण ॥ २२६ ॥ देवः स तत्र हस्तो-च्छ्रयो निशाकरकरप्रतिमरोचिः । त्रियुतत्रिंशज्जलधि-स्थिति रहमिंद्रो विगतमानः ॥ २२७ ॥ सुखशय्यामधिशयितो-निःप्रतिकर्मा सदा विमललेश्यः । मुक्तस्थानांतरगतिरकृतोत्तरवैक्रियविकारः॥ २२८ ॥ आयुःसागरसंख्यैः-पक्षैः कुर्वन् सुगंधिनिःश्वसितं । वर्षसहस्रै स्तावद्भि-रेष आहारयन् मनसा ॥ २२९ ॥

ધૂળ માફક ઝપાટાથી મહાન્ રાજ્યને મૂકનાર છે. [૨૨૨] [માટે જયવાન્ રહે જયવાન્ રહે.] મૈત્રી, પ્રમોદ, કરૂણા, અને માધ્યસ્થરૂપ મહાસાગરમાં અવગાહી રહેલા, અને અતિ દુઃકરતર તપ કરનાર હે મહાભાગ ! તુજને નમસ્કાર છે, નમસ્કાર છે. (૨૨૩) એ રીતે તેણે સ્તવ્યા છતાં પણ સર્વથા ઉત્કર્ષ રહિત રહીને તે મુનિ તે વખતે આયુ ત્રૂટતાં પરમ ધ્યાનપર ચડયા. [૨૨૪]

તે આ શરીરને ભાડાની ફોટડીને મૂકી આપીએ તેમ સપાટામાં ઇહાં પડતું મેલીને સવાર્થસિદ્ધ વિમાનમાં ઉત્તમ દેવતા થયો. (૨૨૫) હવે ત્યાં નજીકમાં રહેતા દેવોએ હર્ષિત થઇને તે ગંધોદક અને કુસુમની વૃષ્ટિ વરસાવીને તે મુનિના કલેવરનો મહિમા કર્યો. [૨૨૬] સવાર્થસિદ્ધ વિમાનમાં તે દેવ એક હાથ ઉંચો અને ચંદ્રનાં કિરણ જેવી કાંતિવાળો, તેત્રીશ સાગરોપમના આયુષ્યવાળો, અહમિંદ્ર, અહંકાર રહિત, સુખશય્યામાં સૂતો રહેનાર, નિઃપ્રતિકર્મ (શણગાર ઉતારવા, પહેરવાની ખટપટ વિનાનો) હમેશાં વિમળ લેશ્યાવાળો, સ્થાનાંતરે જવા આવવાની જંજાળથી મુક્ત રહેનાર, ઉત્તર વૈક્રિય વિકારને નહિ કરનાર, તેત્રીશ પક્ષે સુગંધિ નિઃશ્વાસ લેનાર, અને તેત્રીશ હજાર વર્ષે મનવડે આહાર લેનાર. (૨૨૭-૨૨૮-૨૨૯)

भिन्नां च लोकनालीं विलोकयन्नवधिसंपदा मुदितः । निर्वृति-सुखदेशीयं सुखमनुभूय प्रवरतेजाः ॥ २३० ॥ स्वस्वस्थानाच्च्युत्वा श्रीप्रभजीवः प्रभेंदुजीवश्च । अपरविदेहे मुक्तिं-लप्स्येते शुद्धचरणेन ॥ २३१ ॥

एवं संयुत एकविंशतिगुणैः स श्रीप्रभः क्ष्मापतिः—
साधुश्रावकधर्मभारधरणे धौरेयकोऽजायत ।
तद्भो भव्यजनाः सनातनसुखस्थानासिवद्धादरा—
एतान् मूलगुणानुपार्जितुमहो यत्नं विधत्तान्वहं ॥ २३२ ॥

(इति श्रीप्रभमहाराजकथा.)

(छ)

एवं च स्थिते विशेषतः पूर्वाचार्याणां श्लाघामाह.

તથા અવધિ જ્ઞાનથી લોકનાળને છુટી રહેલી જોતો થકો આનંદિત રહીને પ્રવર તેજસ્વી હોય મુક્તિ સરખું સુખ ભોગવતો રહ્યો. (૨૩૦) બાદ શ્રીપ્રભ અને પ્રભાચંદ્રના જીવ સ્વસ્થ સ્થાનથી ચવીને પશ્ચિમ મહા વિદેહમાં શુદ્ધ ચારિત્ર પાળી મુક્તિ પામશે. [૨૩૧] એ રીતે એકવીશ ગુણોથી યુક્ત તે શ્રીપ્રભ રાજા સાધુ શ્રાવકના ધર્મનો ભાર ધરવામાં ધોરી થયો. માટે હે. ભવ્ય જનો ! તમે પણ શાશ્વત સુખસ્થાન મેળવવામાં આદર બાંધીને એ મૂળ ગુણોને ઉપાર્જન કરવા દરરોજ યત્ન કરતા રહો. (૨૩૨)

એ રીતે શ્રીપ્રભ મહારાજની કથા છે.

એમ હોવાથી વિશેષે કરીને પૂર્વાચાર્યોની પ્રશંસા કરે છેઃ—

॥ मूलं ॥

ता सुट्ठु इमं भणियं—पुव्वायरिएहि परहियरएहिं।
इगवीसगुणोवेओ—जोगो सइ धंमरयणस्स ॥ १४१ ॥

(टीका.)

यत एभिर्गुणैर्युक्तो धर्म्मं कर्त्तुं शक्नोति, ततः सुष्ठु शोभनमिदं भणितमुक्तं पूर्वाचार्यैः पूर्वकालसंभवसूरिभिः परहितरतैरन्यजनोपकारकरणलालसैः किं तादित्याह—एकविंशतिगुणैरुपेतो युक्तो योग्य उचितः सइ त्ति सदा धर्मरत्नस्य पूर्वव्यावर्णितस्वरूपस्येति.

अथ प्रकृतशास्त्रार्थमनुवदन्नुपसंहारगाथायुगलमाह.

મૂળનો અર્થ.

તે માટે પરહિત પરાયણ પૂર્વાચાર્યોએ એ ઠીક કહ્યું છે કે, એકવીશ ગુણોએ કરીને જે યુક્ત હોય, તેજ હમેશાં ધર્મરત્નને યોગ્ય થાય છે. [૧૪૧]

ટીકાનો અર્થ.

જે માટે એ ગુણોથી યુક્ત હોય, તે ધર્મ કરી શકે છે, તે માટે પૂર્વાચાર્યોએ એટલે પૂર્વ કાળમાં થએલા સૂરિઓએ પરહિતરત એટલે અન્ય જનનો ઉપકાર કરવામાં લાલસ થઇને આ એ સુષ્ઠુ કહ્યું છે, એટલે કે શોભન—સારૂં—ઠીક કહ્યું છે કે, એકવીશ ગુણોએ કરીને ઉપેત એટલે યુક્ત હોય, તે સદા પૂર્વે વર્ણવેલા સ્વરૂપવાળા ધર્મરત્નને યોગ્ય થાય છે.

હવે પ્રકૃત શાસ્ત્રાર્થનો અનુવાદ કરતા થકા ઉપસંહારની બે ગાથા કહે છેઃ—

(मूलं)

धम्मरयणत्थियाणं-देसचरित्तीण तह चरित्तीणं ।
लिंगाइं जाइं समए-भणियाइं मुणियतत्तेहिं ॥ १४२ ॥

तेसि इमो भावत्थो-नियमइविहवाणुसारओ भणिओ ।
सपराणुग्गहहेउं-समासओ संतिसूरीहिं ॥ १४३ ॥

(टीका)

धर्मरत्नोचितानामुक्तस्वरूपाणां देशचारित्रिणां श्रमणोपासकानां तथा चारित्रिणां साधूनां लिंगानि चिन्हानि यानि समये सिद्धांते भणितान्यभिहितानि मुणिततत्वैरवबुद्धसिद्धांततत्वै,-रिति प्रथमगाथार्थः-तेषामयमुक्तस्वरूपो भावार्थस्तात्पर्यं निजमतिविभवानुसारतः स्वबुद्धिसंपदनुरूपं

મૂળનો અર્થ,

ધર્મરત્નના અર્થી, દેશ ચારિત્રી તથા (સર્વ) ચારિત્રીનાં જે ચિન્હો તત્વના જાણ પુરૂષોએ સિદ્ધાંતમાં કહ્યાં છે, તેમનો આ ભાવાર્થ પોતાની મતિની સંપદાના અનુસારે સ્વપરના અનુગ્રહ માટે શાંતિસૂરિએ સંક્ષેપથી કહ્યો છે. [૧૪૨-૧૪૩]

ટીકાનો અર્થ.

ધર્મરત્નને ઉચિત દેશ ચારિત્રિયા એટલે શ્રમણોપાસકો અને ચારિત્રિયા એટલે સાધુઓ, તેમનાં લિંગો એટલે ચિન્હો જે સમયમાં એટલે સિદ્ધાંતમાં ભણ્યા છે, એટલે કહ્યાં છે. મુણિત તત્વ પુરૂષોએ એટલે સિદ્ધાંતના તત્વને સમજનાર પુરૂષોએ એ પહેલી ગાથાનો અર્થ છે, તેઓનો આ પૂર્વે કહેલા સ્વરૂપવાળો ભાવાર્થ એટલે તાત્પર્ય નિજમતિ

भणितः—सिद्धांतमहांभोधेः पारस्य लब्धुमशक्यत्वाद्यावदवबुद्धं तावन्नणितमितिभावः

किमर्थं पुनरियान् प्रयासःकृत इत्याह—स्वपरयोरनुग्रह उपकारः सएव हेतुः कारणं यस्य भणनस्य तत् स्वपरानुग्रहहेतु क्रियाविशेषणमेतत्.

स्वपरानुग्रहोप्यागमादेव भविष्यतीति चे—न—तत्रागमे कोप्यर्थः क्वापि भणितस्तमल्पायुषोल्पमेधसश्चैदंयुगीना नावगंतुमीशा इति समासतोल्पग्रंथेन भणितः

कैरित्याह—शांतिसूरिभिर्जिनप्रवचनावदातमतिभिः परोपकारैकरसिकमानसैश्चंद्रकुलविमलनभस्तलनिशीथिनीनाथैरिति द्वितीयगाथार्थः

अथ शिष्याणामर्थित्वोत्पादनायोक्तशास्त्रार्थपरिज्ञानस्यफलमुपदर्शयन्नाह.

વિભવના અનુસારે, એટલે પોતાની બુદ્ધિ સંપત્તના પ્રમાણે કહ્યો છે. મતલબ કે સિદ્ધાંતરૂપ મહા સમુદ્રનો પાર પામવો અશક્ય હોવાથી જેટલું જાણ્યું તેટલું કહ્યું છે.

શા માટે આવડો પ્રયાસ કરેલો છે ? એટલા માટે કહે છે કે, સ્વપરનો અનુગ્રહ એટલે ઉપકાર તેજ હેતુ એટલે કારણ છે. જે કહેવાનું તે સ્વપરાનુગ્રહ હેતુ, એ ક્રિયા વિશેષણ છે.

સ્વપરાનુગ્રહ તો આગમથીજ થશે, એમ કોઇ કહે, તો એમ નથી. કેમકે આગમમાં તો કોઇ અર્થ ક્યાં અને કોઇ ક્યાં કહેલ છે, તેને હાલના અલ્પાયુ અને અલ્પ બુદ્ધિવાળા જીવો સમજી શકે નહિ, તેટલા ખાતર સમાસથી એટલે સ્વલ્પ ગ્રંથથી આ કહ્યો છે.

કોણે કહ્યો ? તો કહે છે કે, શાંતિસૂરિએ. એટલે કે જિન પ્રવચનથી નિર્મળ થએલ બુદ્ધિવાળા, પરોપકારના રસિક મનવાળા, ચંદ્રકુળરૂપ વિમળ નભસ્તળમાં ચંદ્રમા સમાન શાંતિસૂરિ નામના આચાર્યે. એ બીજી ગાથાનો અર્થ છે.

હવે શિષ્યોને અર્થિપણું ઉપજાવવા ખાતર કહેલા શાસ્ત્રાર્થના પરિજ્ઞાનનું ફળ બતાવે છે.

॥ मूलं ॥

जो परिभावइ एयं-संमं सिद्धंतगब्भजुत्तीहिं ।
सो मुत्तिमग्गलग्गो-कुग्गहखत्तेसु नहु पडइ ॥ १४४ ॥

(टीका)

यःकश्चिल्लघुकर्मा परिभावयति सम्यगालोचयत्येनं पूर्वोक्तं धर्मलिंगभावार्थं सम्यग् मध्यस्थभावेन सिद्धांतगर्भाभिरागम सारार्भियुक्तिभि रुपपत्तिभिः, स प्राणी मुक्तिमार्गे निर्वाणनगराध्वनि लग्नो गंतुंप्रवृत्तः कुग्रहादुःषमाभाविनो मतिमोहविशेषास्तएव गर्त्ता अवटा-गतिविघातहेतुत्वादनर्थजनकत्वाच्च-तेषु नैव पतति-हु शब्दस्यावधारणार्थत्वा—दतएव सुखेन सन्मार्गेण गच्छती ति.

उक्तं प्रकरणार्थपरिभावनस्यानंतरं फल-मधुना परंपरफलमाह.

મૂળનો અર્થ.

જે કોઇ એને સમ્યક્ રીતે સિદ્ધાંતની યુક્તિઓથી વિચારે, તે મુક્તિ માર્ગમાં લાગ્યો રહી કુગ્રહરૂપ ખાડામાં નહિ પડે. [૧૪૪]

ટીકાનો અર્થ.

જે કોઇ લઘુકર્મી પુરૂષ એ પૂર્વોક્ત ધર્મલિંગોના ભાવાર્થને સમ્યક્ રીતે એટલે મધ્યસ્થપણે સિદ્ધાંત ગર્ભ યુક્તિઓથી એટલે આગમના પુરાવાવાળી યુક્તિઓથી બરોબર વિચારે, તે પ્રાણી મુક્તિ માર્ગમાં એટલે નિર્વાણ નગરના રસ્તામાં લાગ્યો થકો એટલે ચાલવા માંડયો થકો કુગ્રહ એટલે દુઃષમા કાળમાં થનાર મતિમોહ વિશેષ તે રૂપ ગર્ત્ત એટલે કૂવાઓ કે ખાડાઓ, કેમકે તે ગતિમાં અટકાવ કરે છે, તથા અનર્થ પણ ઉત્પન્ન કરે છે, તે ખાડાઓમાં નજ પડે. હુ શબ્દ અવધારણાર્થે છે, અને તેથીજ તે સુખે કરીને સન્માર્ગે ચાલ્યો જાય છે.

પ્રકરણના અર્થને વિચારવાનું અનંતર ફળ કહ્યું, હવે પરંપર ફળ કહે છે.

॥ मूलं ॥

इय धम्मरयणपगरण-मणुदियहं जे मणंमि भावंति ।
ते गलियकलिलपंका-निव्वाणसुहाइं पावंति ॥ १४५ ॥

[टीका]

इत्यनंतरोक्तं धर्मरत्नमुक्तशब्दार्थं तत्प्रतिपादकंप्रकरणं शास्त्रशेषो धर्मरत्नप्रकरणमनुदिवसं प्रतिदिन-मुपलक्षणत्वात् प्रतिप्रहरमित्याद्यपि-द्रष्टव्यं ये केचिदासन्नमुक्तिगमना मनसि हृदये भावयंति विवेकसारं चिंतयंति, ते शुभशुभतराध्यवसायभाजो-गलितोऽपेतः कलिलपंकः पात-कमलोत्करो येभ्यस्ते गलितकलिलपंका-निव्वाणसुहाइं ति-निर्वाणं सिद्धिस्तत आधारे आधेयोपचारादिह निर्वाणशब्देन निर्वाणगता जीवा उच्यंते सिद्धा इत्यर्थः

મૂળનો અર્થ.

આ રીતે ધર્મરત્ન પ્રકરણને દરરોજ જે મનમાં વિચારે છે, તેઓ પાપપંકથી રહિત થઇ નિર્વાણ સુખોને પામે છે. [૧૪૫]

ટીકાનો અર્થ.

આ અનંતર કહેલ ધર્મરત્નનું પ્રતિપાદક પ્રકરણ એટલે શાસ્ત્રશેષ તે ધર્મરત્ન પ્રકરણ. તેને અનુદિવસ એટલે પ્રતિદિન—ઉપલક્ષણથી પ્રતિપ્રહર વગેરે પણ જાણી લેવું. જે કોઇ આસન્નમુક્તિગામિ જીવો મનમાં ભાવે છે, એટલે વિવેકપૂર્વક ચિંતવે છે, તેઓ શુભ શુભતર અધ્યવસાયવાળા થઇ પાપપંકથી રહિત થઇને નિર્વાણનાં સુખોને પામે છે. નિર્વાણ એટલે સિદ્ધિ જાણવી, તેથી આધારમાં આધેયનો ઉપચાર કરતાં અહીં નિર્વાણ શબ્દે નિર્વાણમાં રહેલા જીવો એટલે કે સિદ્ધો જાણવા.

तेच गतिस्थानावगाहनाभिरेवं सूत्रे चिंत्यंते—तत्र गतिः

लाउयएरंडफले–अग्गी धूमेय इसुधणुविप्पुक्के ।
गइपुव्वापओगेणं–एवं सिद्धाणगई ओ ॥ १ ॥
अलोए पडिहया सिद्धा–लोयग्गेय पइट्ठिया ।
इहं बोंदिं चइत्ताणं–तत्थ गंतूण सिज्झइ ॥ २ ॥

स्थानंतु—

ईसीपब्भाराए–सीयाए जोयणंमि लोगंतो ।
बारसहिं जोयणेहिं–सिद्धी सव्वट्ठसिद्धाओ ॥ ३ ॥
निम्मलदगरयवन्ना–नुसारगोखीरहारसारिवन्ना ।
उत्ताणयछत्तयसंठिया य भणिया जिणवरेहिं ॥ ४ ॥
एगा जोयणकोडी–लक्खा बायालतीसयसहस्सा ।
दोय सय अउणवन्ना–सिद्धिसिलाए इमा परिही ॥ ५ ॥

તે સિદ્ધો ગતિ, સ્થાન, અને અવગાહનાથી, આ રીતે સૂત્રમાં વિચારેલા છે.

ત્યાં ગતિ આ રીતે છે.

તુંબડું, એરંડિયાનું ફળ, અગ્નિ, ધૂમ, ધનુષ્યથી છૂટેલ બાણ, એમના માફક પૂર્વ-પ્રયોગથી સિદ્ધોની ગતિ છે. [૧] અલોકથી પ્રતિહત થઇને સિદ્ધના જીવો લોકાગ્રમાં રહે છે. તેઓ અહીં શરીર છોડીને ત્યાં જઇ સિદ્ધ થાય છે. (૨)

સ્થાન આ રીતે છેઃ—

ઇષત્ પ્રાગ્ભાર શિલાથી યોજનપર લોકનો અંત છે, અને સર્વાર્થસિદ્ધ વિમાનથી બાર યોજનપર સિદ્ધિ છે. (૩)

નિર્મળ પાણીના બિંદુ, ઘરસ, ગોક્ષીર અને હારના સરખા વર્ણવાની અર્થાત્ ધોળી, અને ઉંધા છત્રના આકારે રહેલી સિદ્ધિશિલા જિનેશ્વરે કહેલી છે. [૪] સિદ્ધિ-શિલાની પરિધિ એક ક્રોડ બેતાળીશ લાખ ત્રીશ હજાર બે'સો અને ઓગણુપચાશ યોજન

बहुमज्झदेसभाए-अट्ठेव य जोयणाइं बाहल्लं ।
चरिमंतेसुय तणुई-अंगुलसंखिज्जइ भाग ॥ ६ ॥ (इति)

अवगाहना पुनः शरीराभावात्सिद्धजीवप्रदेशावगाढाकाशप्रदेशरूपेह गृह्यते—

तत्र—

ईसीपब्भाराए उवरिं खलु जोयणस्स जो कोसो ।
कोसस्सय छब्भाए सिद्धाणो गाहणा भणिया ॥ १ ॥
तिन्निसया तित्तीसा-धणुत्तिभागोय होइ उक्कोसा ।
चत्तारि य रयणीओ-रयणितिभागूणिया मज्झा ॥ २ ॥
ओगाहणा जहन्ना-समहियअट्ठंगुला य इगरयणी ।
सेलेसिसंट्ठियतणु-त्तिभागहीणा तदाकारा ॥ ३ ॥ (इति)
ततो निर्वाणगतानि सौख्यानि सिद्धशर्माणि प्राप्नुवंति लभंते.

છે. (૫) તે બહુ મધ્યદેશ ભાગમાં એટલે પૂરા વચ્ચમાં આઠ યોજન જાડી છે, અને છેડાઓમાં ઝીણી એટલે આંગળના સંખ્યાતા ભાગ જેટલી છે. [૬] અવગાહના તે સિદ્ધોનું શરીર નહિ હોવાથી સિદ્ધ જીવોના જીવપ્રદેશથી અવગાઢ થએલા (વ્યાપ્ત થએલા) આકાશ પ્રદેશરૂપે ગ્રહાં લેવી.

ત્યાં ઇષત્ પ્રાગ્ભારાની ઉપરના યોજનનો જે છેલ્લો કોશ (ગાઉ), તે કોશના છઠ્ઠા ભાગમાં સિદ્ધોની અવગાહના છે. [૧] ત્રણસો તેત્રીશ ધનુષ્ અને એક તૃતીયાંશ ધનુષ્ એ ઉત્કૃષ્ટી અવગાહના, અને ચાર હાથમાં એક તૃતીયાંશ કમતી એ મધ્યમ અવગાહના છે. [૨] જઘન્ય અવગાહના એક હાથ ને આઠ આંગળ છે. એ બધી અવગાહના શૈલેષીકરણ વખતે રહેલા શરીર કરતાં તેના એક તૃતીયાંશ ઉણી અને તેના જેવા આકારવાળી હોય છે. [૩]

તે માટે નિર્વાણગત સુખોને એટલે સિદ્ધ જીવોનાં સુખોને પામે છે, એમ સમજવું.

तानि पुनरेवमागमे वर्ण्यंते:—

नवि अत्थि माणुसाणं–तं सुक्खं नविय सव्वदेवाणं।
जं सिद्धाणं सुक्खं–अव्वाबाहं उवगयाणं ॥ १ ॥
जह नाम कोइ मिच्छो–नगरगुणे बहुविहे वियाणंतो।
न चएइ परिकहेउं–उवमाइ तहिं असंतीए ॥ २ ॥

म्लेच्छज्ञातं त्वेवं.

कोइ नरिंदो निय पट्टणाउ विवरीयसिक्खतुरएण। अडवीए पक्खित्तो–खुहापिवासाहिं परिभूओ ॥ १ ॥ पायवतलंमि पडिओ–केणावि पुलिंदएण करुणाए। विहिओ पउणसरीरो–वरसलिलप्फलफलप्पयाणेणं ॥ २ ॥ पिल्लियंमि यनियसिन्ने–नेइ कयन्नुत्तितं निवो नयरे। ठावइ वर पासाए–परिहावइ पवरचीराइं ॥ ३ ॥ चरमोयगपमुहेहिं–दि-

---

સિદ્ધનાં સુખો આગમમાં આ રીતે વર્ણવ્યાં છે :—

માણસોને તે સુખ નથી, તેમજ સર્વ દેવોને પણ તે સુખ નથી, કે જે સુખ અવ્યાબાધ પદને પામેલા સિદ્ધોને છે. (૧) જેમ કોઇ મ્લેચ્છ નગરના અનેક પ્રકારના ગુણો જાણતો થકો પણ કહેવાને સમર્થ નહિ થાય, કેમકે તેને ત્યાં કોઇ તેવી ઉપમા મળી શકતી નથી. [તેમ સિદ્ધના સુખો માટે પણ જાણવું.] [૨]

મ્લેચ્છનું ઉદાહરણ આ રીતે છે.

કોઇક રાજા પોતાના નગરથી ઉંધી રીતે શીખવેલા ઘોડાવડે અટવીમાં આવી પડ્યો. ત્યાં તે ભૂખ તરસથી પીડાયો. (૧) એટલે તે ઝાડની નીચે જઇ પડ્યો. તેવામાં કોઇ પુલિંદે [મ્લેચ્છે] કરૂણા લાવીને તેને સારૂં પાણી તથા ફળો આપીને હુશિયાર કર્યો. (૨)

હવે તેનું સૈન્ય આવી પહોંચતાં તે કૃતજ્ઞરાજા તે પુલિંદને નગરમાં તેડી લાવ્યો, અને ત્યાં સારા મહેલમાં તેને રાખ્યો, તથા સારાં વસ્ત્રો તેને પહેરાવ્યાં. [૩] તથા સારા

વ્વાહારેહિં પીણઇ પુલિંદં । અહ સો કયાઇ સુમરઇ–નિયજંમભુવં પુલિંદનરો ॥ ૪ ॥ મુણિઊણ ઇમં રન્ના–વિસજ્જિઓ સો ગઓ નિયં અડવિં। મિલિઓ સયણાણ ઇમેહિ પુચ્છિઓ કત્થ પત્તો સિ ॥ ૫ ॥ સો કહઇ નરવેરણં–નયરે નીઓમ્હિ, તં પયંપંતિ । કેરિસયં તં નયરં–સો જંપઇ પલ્લિતુલ્લંતિ ॥ ૬ ॥ તે બિંતિ કત્થ વસિઓ–સો ભાસઇ મણિમયંમિ પાસાए । તે બિંતિ કેરિસો સો–સો સાહઇ ઉડપસારિત્થો ॥ ૭ ॥

તે બિંતિ કિં પરિહિયં–તુમए ? સો ભણઇ પટ્ટવત્થાઇં । તે બિંતિ કેરિસાઇં ? સો સંસઇ વક્કલસમાઇં ॥ ૮ ॥ તે બિંતિ કિં ચ ભુત્તં ? વજ્જરઇ સ, મોયગા, ભણંતિ ઇમે । તે કેરિસા ? પુલિંદો–બુલ્લઇ, તે પક્કબિલ્લસમા ॥ ૯ ॥ ઇય અડવિપસિદ્ધેહિં–દિટ્ઠંતેહિં અદિટ્ઠનયરાણ । જહ સો સયણાણ પુરો–નયરસરૂવં પરૂવેઇ ॥ ૧૦ ॥ તહ કેવલીહિં સુમુણિ-

---

મોદક વગેરે દિવ્ય આહારોથી તે પુલિંદને ખુશી કર્યો. હવે કોઇ વેળાએ તે પુલિંદ પોતાની જન્મભૂમિને સંભારવા લાગ્યો. [૪] તે જાણીને રાજાએ તેને રત્ન આપી, એટલે તે પોતાની અટવીમાં ગયો, અને સગાંઓને મળ્યો, એટલે તેમણે પૂછ્યું કે, તું કયાં પહોંચ્યો હતો ? (૫) તે બોલ્યો કે, એક રાજા મને નગરમાં લઇ ગયો હતો. તેઓ બોલ્યા કે, નગર તે વળી કેવું હશે ? પુલિંદ બોલ્યો કે, આ પલ્લિના જેવું. [૬] તેઓ બોલ્યા કે, ત્યાં તું કયાં ઉતર્યો હતો ? પુલિંદ બોલ્યો કે, મણિમય મહેલમાં. તેઓ બોલ્યા કે, મહેલ તે કેવો હશે ? પુલિંદ બોલ્યો કે, ઝૂંપડા જેવો. [૭]

તેઓ બોલ્યા કે, તેં શું પહેર્યું ? પુલિંદ બોલ્યો કે, રેશમી કપડાં. તેઓ બોલ્યા કે, તે કેવાં હતાં ? પુલિંદ બોલ્યો કે, વલ્કલ જેવાં. [૮] તેઓ બોલ્યા કે, શું ખાધું ? પુલિંદ બોલ્યો કે, મોદકો. તેઓ બોલ્યા તે કેવા હોય ? પુલિંદ બોલ્યો કે, પાકેલા બિલ્વ જેવા. (૯) એમ અટવી પ્રસિદ્ધ દૃષ્ટાંતોથી તે જેમણે નગર નહિ જોયેલું તેવાં સગાંઓના આગળ નગરનું સ્વરૂપ પ્રરૂપવા લાગ્યો. (૧૦) તેમ સિદ્ધિસુખને બરોબર જાણતા કેવળ

यसिद्धिसुहेहिंपि अणुवमत्तेण । तं वुत्तु मसकक्कं तहवि-किंचि उवमाइ साहेमि ॥ ११ ॥ सयलाहिवाहिरहिओ-महुराहारेहिं पीणियसरीरो । तरुणो कलासु कुसलो-वियड्ढमित्तेहिं परियरिओ ॥ १२ ॥

सुणमाणो संपीणिय-कन्नं किंनरकयं सरसगेयं । पिच्छंतो बहुविहहाव-भावरम्मं रमणिनट्ठं ॥ १३ ॥ कुसुममयनाहिधणसार-चंदणामोयगाइवग्घाणो । कप्पूरपूरपरिगय-पमिट्ठतंबोलसुरहिमुहो ॥ १४ ॥ पट्टंसुयपच्छाइयमहल्लपल्लंकहंसतूलिगओ । पेसलपसन्नसंनिहिय—कामिणी विहियचहुकम्मो ॥ १५ ॥ इय अणुकूले विसए-सेवंतो जं सुहं इमो लहइ । तं इक्कसिद्धसुक्खस्स—होइ नाणंतभागेवि ॥ १६ ॥

तथाचार्ष.

जह सव्व कामगुणियं-पुरिसो भुत्तूण भोयणं कोइ । तण्हा छुहा-

ज्ञानिओ तेवी उपमाना अभावे तेने कही शकता नथी, छतां कांइक उपमावडे हुं ते कहुं छुं. (११) जेम कोइक सकळ आधि व्याधिथी रहित, मधुर आहारथी तृप्त थएल शरीरवाळो, कळा कुशळ, चतुर मित्रोथी परिवरेलो तरुण पुरुष. [१२]

कानने आनंद आपनार किन्नरोए गाएलुं सरस गान सांभळतो थको, अने बहु हावभावथी रमणीय एवुं स्त्रीओनुं नृत्य जोतो थको. [१३] तथा फूल, कस्तूरी, कपूर, अने चंदनना खुशबोथी नाकने खुश करतो थको, तेमज कपूरथी भरेलां उमदा तंबोळथी मुखने सुवासित करतो थको, [१४] अने रेशमी कपडांथी ढांकेला मोटा पलंगमां रहेला हंसतूलिक (सुंवाळा गादला) पर सूतो थको, अने कोमळ अने हसमुखी कामिनीओना हाथे चंपी करावतो थको. [१५] एम (सधळा) अनुकूळ विषयो सेवतो थको जे सुख पामे छे, ते सुख एक सिद्ध जीवना सुखना अनंतमां भाग जेटलुं पण नथी. [१६]

जे माटे आगममां कहेलुं छे के—

जेम कोइ पुरुष सर्व काम गुणयुक्त भोजन करीने भूख, तरसथी विमुक्त

વિમુક્કો–અક્ખિવ્વજ્જ જહા અવિયત્તિત્તો ॥ ૧૭ ॥ ઇય સવ્વકાલતિત્તા–અતુલં નિવ્વાણ મુવગયા સિદ્ધા । સાસય મવ્વાબાહં–ચિટ્ઠંતિસુહી સુહં પત્તા ॥ ૧૮ ॥

ઇત્યાદિ.

ઇદમુક્તં ભવતિ–સમ્યક્ સિદ્ધાંતાર્થપરિભાવનપરાણાં તદુક્તાનુષ્ઠાનકરણ–પ્રવૃત્તાનાં પ્રતિક્ષણપ્રવર્દ્ધમાનોત્તરોત્તરશુભાધ્યવસાયનીરપૂરપ્રક્ષાલિતસકલઘનઘાતિકર્મકાલુષ્યાણામવિકલસકલવિમલકેવલસલાવલોકિતલોકાલોકાનાંજઘન્યતોંતર્મુહૂર્ત્તમુત્કૃષ્ટતો દેશોનપૂર્વકોટિં યાવત્ કૃતવસુમતીતલપાવિત્र્યાણાં શૈલેશીકરણવશક્ષપિતનિઃશેષભવોપગ્રાહિકર્મ્મપ્રકૃતિસંહતીનાં ભવ્યસત્વાનાં સંભાવ્યતએવ ક્ષેત્રકાલસંહનનાદિસમગ્રોદગ્રસામગ્રીવશાત્ પારંપર્યેણ નિર્વાણસુખપ્રાપ્તિરિતિ.

[ઇતિ શ્રીધર્મરત્નવૃત્તિઃ સમાપ્તા]

થાય, એટલે ખુબ તૃપ્ત થયો કહેવાય છે, તેમ અનુપમ નિર્વાણને પામેલા સિદ્ધો સર્વ કાળ તૃપ્ત રહી શાશ્વત અને અવ્યાબાધ સુખને પામી સુખી બન્યા રહે છે. [૧૭–૧૮] ઇત્યાદિ.

ભાવાર્થ એ છે કે ઇડી રીતે સિદ્ધાંતના અર્થની વિચારણા કરતાં, તેમાં કહેલી ક્રિયામાં પ્રવર્ત્તેલા પ્રતિક્ષણ વધતા ઉત્તરોત્તર શુભ અધ્યવસાયરૂપ નીરના પૂરથી સકળ ઘાતિકર્મની કલુષતાને ધોઇ નાખનાર સંપૂર્ણ કળાવાળા કેવળજ્ઞાનના બળે કરી લોકાલોકને જોનારા, જઘન્યથી અંતર્મુહૂર્ત લગી, અને ઉત્કૃષ્ટપણે દેશે ઉણી પૂર્વકોટિ સુધી પૃથ્વીતળને પાવન કરતા, અને શૈલેશી કરણથી સઘળો ભવોપગ્રાહિ કર્મની પ્રકૃતિઓને ખપાવનાર ભવ્ય જીવોને ક્ષેત્રકાળ—સંઘેણ વગેરે સમગ્ર ભારે સામગ્રીના વશથી પરંપરાએ નિર્વાણ સુખની પ્રાપ્તિ થાય છે. એ બરાબર સંભવે છે.

॥ શ્રી ધર્મરત્નની વૃત્તિ સમાપ્ત થઇ ॥

विष्णोरिव त्रयस्य विभोः-पदत्रयीव्याप्तशे जगत्त्रिखिलं । सद्धर्मरत्न-जलधिः-स श्रीवीरो जिनो जयतात् ॥ १ ॥ कुंदोज्वलकीर्त्तिभरैः-सुर-भीकृतसकलविष्टपाभोगः । शतमखशतविनतपदः-श्रीगौतमगणधरः पातु ॥ २ ॥ तदनु सुधर्मस्वामि-जंबूप्रभवादयो मुनिवरिष्ठाः । श्रुतजलनिधि-पारीणा-भूयांसः श्रेयसे संतु ॥ ३ ॥ क्रमशश्चित्रावालक-गच्छे कविरा-जराजिनभसीव । श्रीभुवनचंद्रसूरि-र्गुरुरुदियाय प्रवरतेजाः ॥ ४ ॥

तस्य विनेयः प्रशमैक—मंदिरं देवभद्रगणिपूज्यः । शुचिसमयकन-कनिकषो बभूव भुवि विदितभूरिगुणः ॥ ५ ॥ तत्पादपद्मभृंगा-निस्संगाश्चंगतुंगसंवेगाः । संजनितशुद्धबोधा जयंति जगच्चंद्रसूरिवराः ॥ ६ ॥ तेषामुभौविनेयौ-श्रीमानदेवेंद्रसूरिरित्याद्यः । श्रीविजयचंद्रसूरि—र्द्वितीय-

---

વિષ્ણુની માફક જે પ્રભુનાં ત્રણ પદ [ઉત્પાદ, વ્યય અને ધ્રૌવ્ય] આખા જગતમાં વ્યાપી રહેલ છે, તે સદ્ધર્મરત્નના સાગર શ્રી વીરજિન જયવાન્ રહો. [૧] કુંદના ફૂલ જેવી ઉજ્વળ કીર્તિથી સકળ ભુવનના આ ભોગને (વિસ્તારવાળા પ્રદેશને) સુગંધિત કરનાર, અને સેકડો ઇંદ્રોએ નમેલ પગવાળા શ્રી ગૌતમ ગણધર (અમારૂં) રક્ષણ કરો. [૨] ત્યાર બાદ સુધર્મ સ્વામી તથા જંબુ અને પ્રભવ વગેરે શ્રુતસાગરના પારગામી ઘણા મુનીશ્વરો [અમારા] કલ્યાણ ભણી થાઓ. [૩] એમ પરંપરાએ ચિત્રાવાલક [ચિત્રવાળ નામના] ગચ્છમાં કવીશ્વરોની શ્રેણિરૂપ આકાશમાં શ્રી ભુવનચંદ્ર નામે ભારે તેજવાન્ ગુરૂ ઉદય પામ્યા. [૪]

તેમના શિષ્ય પ્રશમ ગુણના મંદિર પૂજ્ય દેવભદ્ર ગણિ થયા, તેઓ પવિત્ર સિદ્ધાંતરૂપ સોનાની કસોટી સમાન અને જગદ્વિખ્યાત ઘણા ગુણવાળા હતા. [૫] તેના પાદપદ્મમાં ભમરા સમાન, નિઃસંગ, સરસ ઉંચા સંવેગવાળા, જગત્માં શુદ્ધ બોધ ફેલાવનાર, એવા જગચ્ચંદ્રસૂરીશ્વર થયા. [૬] તેમના બે શિષ્ય થયા—પહેલા શ્રીમાન્ દેવેંદ્રસૂરિ અને બીજા શ્રી વિજયચંદ્રસૂરિ, કે જે અનુપમ કીર્તિવાન્ હતા. (૭) તેમાંના

यद्बोऽद्वैतकीर्त्तिभरः ॥ ७ ॥ स्वान्ययोरुपकाराय—श्रीमद्देवेंद्रसूरिणा । धर्मरत्नस्य टीकेयं—सुखबोधाविनिर्ममे ॥ ८ ॥

प्रथमं प्रतिमप्रतिमै- बिभ्राणो गुरुजनेषु भक्तिभरं । विद्वान् विद्यानंदः—सानंदमना लिलेखास्याः ॥ ९ ॥ श्रीहेमकलशवाचक-पंडितवर धर्मकीर्त्तिमुख्यबुधैः । स्वपरसमयैककुशलैस्तदैव संशोधिता चेयं ॥ १० ॥ यद्गदितमल्पमतिना- सिद्धांतविरुद्धमिहकिमपिशास्त्रे । विद्वद्भिस्तच्चद्भैः-प्रसादमाधाय शुद्धयेयं ॥ ११ ॥ बहुमर्थमल्पशब्दं-शास्त्रमिदं रचयता मया कुशलं । यदवापि, धर्मरत्न-प्राप्तिर्जगतोऽपि तेनास्तु ॥ १२ ॥

(ग्रंथाग्रं. ९७००)

॥ इति श्री धर्मरत्न टीका समाप्ता ॥

શ્રીમાન્ દેવેંદ્રસૂરિએ સ્વપરના ઉપકાર માટે ધર્મરત્ન નામના ગ્રંથની સુખબોધા [સુખે સમજાય એવી અથવા એવા નામવાળી] આ ટીકા બનાવી છે. [૮]

આ ટીકાની પહેલી પ્રત ગુરૂજનમાં અનુપમ ભક્તિભર ધરતા વિદ્વાન્ વિદ્યાનંદે આનંદિત મનથી લખી છે. [૯] તેમજ એને તેજ વખતે શ્રી હેમકળશ ઉપાધ્યાય તથા પંડિતવર્ય ધર્મકીર્ત્તિ પ્રમુખ વિદ્વાનોએ શોધી છે. (૧૦) (છતાં) અલ્પ મતિથી આ શાસ્ત્રમાં જે કંઈ સિદ્ધાંત વિરૂદ્ધ કહેવામાં આવ્યું હોય, તે તત્વજ્ઞ વિદ્વાનોએ પ્રસાદ કરીને સુધારી લેવું. [૧૧] બહુ અર્થવાળા અને અલ્પ શબ્દવાળાં આ શાસ્ત્રને રચતાં મેં જે કુશળ મેળવ્યું છે, તેનાવડે જગતને પણ ધર્મરત્નની પ્રાપ્તિ થાઓ. (૧૨)

(કુળ ગ્રંથ સંખ્યા શ્લોક ૯૭૦૦)

આ રીતે શ્રી ધર્મરત્ન ગ્રંથની ટીકા સમાપ્ત થઈ છે.

शुद्धिपत्रकम्.

अशुद्धम्.	शुद्धम्	पृष्ठ.	पंक्ति.
मोक्षा	मोक्षा	३	४
त्यनुरुपे	त्यनुरूपे	३	८
मार्यो	मार्गो	६	७
दट्ठवा	दट्ठव्वा	३०	७
भाववतित्वं	भावयतित्वं	३३	२
तेषारस	तेषां रस	३७	६
श्रद्धचरण	शुद्धचरण	३९	२
मेतातैवे	मेतावतैवे	४८	५
रदुषित	रदूषित	८२	२
चरित्रवतो	चारित्रवतो	१०४	१०
मययस्य	मयमस्य	१०८	५
क्रियामां	क्रियायां	१४०	९
पुष्पिका	मुष्मिका	१४२	११
मस्खीलतं	मस्खलितं	१८१	६
लिंगषटक	लिंगषट्क	१८४	५
जयायसी	ज्यायसी	१९९	८
मिथ्याद्युक्तं	मित्याद्युक्तं	२००	४
त्तिभुवन	त्रिभुवन	२००	८
यथार्थ	यथार्थः	२१२	१
तूण	त्तूण	२२१	१२
द्विद्वधा	द्विद्विधा	२४४	३
जपय	जय	२५४	९
बंघु	बंधु	२६५	१
द्यीप	द्यपि	२८४	६
मिंदं	मिदं	२९२	८

॥ शुद्धिपत्रं समाप्तम् ॥

શ્રી ધર્મ રત્ન પ્રકરણ ભાગ પહેલા માટે જુદા જુદા સદગૃહસ્થો તથા ન્યુસ પેપરો અને માસિકો તરફથી મળેલા અભિપ્રાયો.

પુસ્તક ૨ જું. જૈન શ્વેતાંબર કોન્ફરન્સ હરૈલ્ડ અંક ૩ જો.

શ્રી ધર્મરત્ન પ્રકરણ— શ્રી પાલીતાણા જૈન ધર્મ વિદ્યા પ્રસારક વર્ગ તરફથી અભિપ્રાય માટે આવેલ " શ્રી ધર્મ સંગ્રહ " માટે અભિપ્રાય અમે ડીસેંબરમાં આપી ગયા છીએ. તેજ વર્ગ તરફથી પ્રસિદ્ધ થએલ આ પુસ્તક શ્રીમાન્ દેવેંદ્રસૂરિનું રચેલું છે. આ પુસ્તકમાં પણ મૂળ અને ગુજરાતી ભાષાંતર બન્ને આપવામાં આવ્યાં છે. આ પુસ્તક પણ પ્રથમ ભાગ છે, તેથી સંભવ અને આશા રહે છે કે, પાછળના ભાગો એજ વર્ગ તરફથી છપાશે. કાગળ, છપાઇ અને ટાઇપ ઉત્તમ છે. શુદ્ધિપત્રક બહુ મોટું થયું છે, માટે એક વખત વિશેષ પ્રુફ તપાસવા અમારી નમ્ર સુચના છે. લગભગ ૬૦૦ પાનાંના આ પુસ્તકની કીંમત રૂા. ૨) બીલકુલ વધારે નથી. શુભ સંસ્કારો રોપનાર પિતાના પાંચ સુપુત્રોએ પોતાના પિતા શેઠ બીઅસી કરમણના સ્મર્ણાર્થે આ પુસ્તક પ્રસિદ્ધ કરાવ્યું છે. એ પાંચે ભાઇઓમાં શેઠ બેતસી બીઅસી સારી રીતે આગળ પડતા છે; અને જૈન કોમમાં તેમનું નામ જાણીતું છે. અર્પણપત્રિકા બતાવે છે કે, પુત્રરૂણ તથા પિતૃરૂણ એ કેવી મોટી જવાબદારી છે, અને એ સમજનાર પોતે કેવા સુખી થય છે, અને બીજાને કેવી સુખી કરે છે ? આ ગ્રંથ અસલ માગધી અને સંસ્કૃત ભાષામાં લખાએલો છે. કેવા ગ્રંથો લાંબો વખત ટકી શકે છે, તેને માટે પ્રસ્તાવનામાં યોગ્ય કહેવાયું છે. આ ગ્રંથમાં શ્રાવકના ૨૧ ગુણોપર ૨૧ કથાઓ કહેવાયેલી છે, એટલે કે ગ્રંથ કથાનુયોગનો છે. બહુ ઉંડા વિષયોમાં ઉતરતાં મનને ગુંચવણ આવે, એવા સામાન્ય વાચકો માટે પણ ગ્રંથ ઉત્તમ છે. બીજી જ્ઞાતિઓ અને પ્રજાઓ કરતાં સખાવત, દાન, ધર્મ વિગેરેમાં જૈન કોઇથી ઉતરે તેમ તો નથીજ, પરંતુ જ્ઞાનદ્વારા પુસ્તકો છપાવીને વડીલ સ્મરણ રાખવું, એ સ્મરણ ચિરસ્થાયી છે, સખાવતનો ખરો પ્રકાર છે, અનુકરણીય છે. પિતાના સ્મર્ણાર્થે રૂા. ૧૦૦૦) આપી પુસ્તક છપાવવામાં પાંચે ભાઇઓએ શુભ કર્મ બાંધી બીજાઓને ઉત્તમ બોધ બેસાડયો છે. પુસ્તક ઉત્તેજન અને મદદને દરેક રીતે પાત્ર છે.

શ્રી જૈન ધર્મ વિદ્યા પ્રસારક વર્ગના ઓનરરી સેક્રેટરી શા. શિવજી દેવશીની પ્રેરણાથી એ વર્ગ તરફથી પ્રસિદ્ધ થયેલા કેટલાએક ગ્રંથો અભિપ્રાય માટે મારી તરફ મોકલવામાં આવ્યા છે, તેનો પ્રેમ સહિત સ્વીકાર કરતાં અતિ આનંદ ઉપજે

છે. એ ગ્રંથ શ્રેણીમાંથી " **શ્રી ધર્મરત્ન પ્રકરણ** " નામના ગ્રંથનું અવલોકન પ્રથમ સાદ્યંત કરતાં અતિ હર્ષ ઉત્પન્ન થાય છે. આ ગ્રંથના લેખક શ્રીમાન્ દેવેંદ્રસૂરી જૈન ગ્રંથકારોમાં પ્રખ્યાત છે, તેમના ઘણા ગ્રંથો ભારતના જૈન વર્ગમાં પ્રખ્યાત રીતે વંચાય છે. એ મહાશયે આર્હત ગ્રંથની સમૃદ્ધિ ઘણી વધારી છે. જૈનતત્વ ગ્રંથોની ઉપર તેઓએ સારી વૃત્તિઓ અને ટીકાઓ રચેલી છે. કર્મગ્રંથ જેવા ગહન વિષયમાં તેમની લેખનીએ સારૂં નૃત્ય કર્યું છે. જેમ વેદ ધર્મમાં શંકરાચાર્ય ભાષ્યકાર કહેવાય છે, તેમ જૈન ધર્મમાં એ સૂરિરાજ ભાષ્યકાર કહેવાય છે. તેમણે **દેવવંદન ભાષ્ય, ગુરૂવંદન ભાષ્ય, પ્રત્યાખ્યાન ભાષ્ય,** વિગેરે ભાષ્યો લખેલાં છે, તે સિવાય કર્મગ્રંથોની ઉપર સારી ટીકા કરેલી છે. આ વિદ્વાન્ મુનિરત્ને ગુજરાતના મંત્રી વસ્તુપાળને સારો પ્રતિબોધ આપ્યો હતો, એ મંત્રીની આગેવાની નીચેજ એ મહામુનિને સૂરિપદ આપવામાં આવ્યું હતું. તેમના ગુરૂ જગચ્ચંદ્રસૂરી હતા, જેઓએ **તપગચ્છ**ની સ્થાપના કરી હતી. તે ગુરૂએ પોતાના આ પ્રભાવિક શિષ્યને સૂચના આપેલી હતી કે, શિષ્ય ! તારી બુદ્ધિ જોઇ મને સંતોષ થાય છે, તારા જેવા વિદ્વાન્ મુનિને ધર્મની યોગ્યતા પ્રાપ્ત કરાવનારા ગુણોને માટે કોઇ પણ ગ્રંથ લખવાની જરૂર છે. ગુરૂની આવી સૂચના ઉપરથી તેણે આ **ધર્મરત્ન** ગ્રંથ લખી તે ઉપર વૃત્તિ કરેલી છે.

આ સુબોધક અને શિક્ષણ લેવા લાયક ગ્રંથ ખરેખરો જૈન વર્ગને ઉપયોગી છે. આ ગ્રંથના લખનાર સૂરિવર્યની ધારણા સર્વ અંશે સફળ થઇ છે. ગ્રંથકારે જે ઉત્કૃષ્ટ ઉદ્દેશથી, અને ઉદાર વૃત્તિથી આ લેખ લખ્યો છે, તે ઉદ્દેશ અને તે વૃત્તિ તેમાં બેશક ક્ષણે ક્ષણે જણાઇ આવે છે. લેખકોના જુદા જુદા વર્ગ પાડીએ, તો એક રીતે એ લેખકોના બે પ્રકાર હોઇ શકે છે. (૧) પોતાને માટે લખનારા અને (૨) લોકોને માટે લખનારા લેખકો સ્વાર્થી છતાં ઘણીવાર લોકપ્રિય થઇ પડે છે. પણ જો તેમાં સ્વાર્થબુદ્ધિ બેટલીજ હોય કે, બીજા લોકોને મારા લેખથી લાભ થશે, અને તે લાભનું ધર્મરૂપ ફળ જો તેઓ પ્રાપ્ત કરે, તો મને પુણ્ય થશે. બીજાઓ ધર્મ પામે, તેના લાભનો હું ભાગીદાર થઇશ, આવી તેની ઉત્તમ પ્રકારની ધારણા પણ ખરેખર પ્રશંસનીય હોય છે; કારણકે તેઓને તેમાં કાંઇ પણ સાંસારિક લાભ પ્રાપ્ત કરવાનો અધમ સ્વાર્થ હોતો નથી.

આજકાલ વ્યાપાર દ્રષ્ટિથી લખી લખાવી પુસ્તકો પ્રસિદ્ધ કરનારા પેહેલા પ્રકારના સ્વાર્થી લેખકો વ્યાપારની સફળતાને અર્થે સામાન્ય લોકરૂચિને અનુસરી લેખ લખે છે, અને લખનારાઓ તો લોકોની વૃત્તિને તૃપ્ત કરવામાંજ લાભ રહેલો હોવાથી એવાં પુસ્તકો બાહેર પાડી સાંસારિક લાભની પ્રાપ્તિની સાથે લોકોના મોટા ભાગમાં લોકપ્રિયતા પણ મેળવી શકે છે.

બીજા પ્રકારના લેખકો પારમાર્થિક દ્રષ્ટિએ લખે છે, તેઓ પોતાના ઉપર કહેલા ઉત્તમ સ્વાર્થને ગર્ભિત રાખી લોકોના પરોપકારને માટે લખે છે. તે લોકોની ઇચ્છા અથવા રૂચિ પ્રમાણે નહિ. પણ ધર્મ ન્યાય, અને નીતિના ધોરણે જે રીતિએ લોકોએ વર્ત્તવું જોઇએ, તે ધોરણને લક્ષમાં રાખી લખે છે.

આ ગ્રંથ પરોપકારી શ્રીદેવેંદ્રસૂરિએ તેવી ધારણાથી લખ્યો છે. ગ્રંથકાર આદિમાં અવતરણની અંદર લખે છે કે, " આ જગતમાં સામાન્ય, અને ગ્રાહ્ય પદાર્થની સમજ ધરનારા લોકો ઘણા હોય છે, તે છતાં તેઓ જન્મ; જરા મૃત્યુ; રોગ, અને શોકાદિ વિષય પંચાતીથી પીડાય છે, માટે તેમણે સ્વર્ગ તથા મોક્ષાદિ સુખનું કારણભૂત ધર્મરૂપી રત્ન ગ્રહણ કરવું જોઈએ. " આવું અવતરણ લખી, ગ્રંથકાર પોતાના લેખનો ઉદ્દેશ જણાવે છે, અને તે સાથે ગ્રંથમાં મંગળ, અભિધેય, પ્રયોજન, અને સંબંધનું સ્પષ્ટિકરણ કરે છે, તે પછી ગ્રંથનો ઉપોદ્ઘાત શરૂ કરે છે. ઉપોદ્ઘાતમાં ગ્રંથના પ્રયોજનને માટે સારૂં વિવેચન કરી ઉપદેશ ઉપદેશકના ગુણનું વર્ણન કરતાં ગ્રંથકાર પોતાનું પાંડિત્ય સારૂં દર્શાવે છે. ઉપદેશકને માટે તેણે જે વાકયો લખેલાં છે; તે ખરેખર મનન કરવા યોગ્ય છે, તે માહેલું એક પદ્ય આ પ્રમાણે છે—

शुद्धमार्गोपदेशेन यः सत्वानामनुग्रहम् ।
करोति नितरां तेन कृतः स्वस्याप्यसौ महान् ॥ १ ॥

" જે પુરૂષ શુદ્ધ માર્ગનો ઉપદેશ કરી, બીજા પ્રાણીઓપર અનુગ્રહ કરે છે, તે પોતાના આત્મા ઉપર પણ અતિશે મહાન્ અનુગ્રહ કરે છે. "

કારણ કે, હિતોપદેશ સાંભળવાથી કદિ સર્વ શ્રોતાઓને કાંઇ એકાંતે ધર્મ પ્રાપ્તિ થતી નથી, પણ અનુગ્રહ બુદ્ધિથી ઉપદેશ આપનારને તો એકાંતે અવશ્ય ધર્મની પ્રાપ્તિ થાય છે.

ઉપદેશકના ધર્મ માટે આ અસરકારક પદ્ય છે, આવા પદ્યના ઉદ્ગાર જૈનોના પ્રાચિન ઉપદેશકોના હૃદયમાંથી નીકળતા હતા, ત્યારેજ જૈન ધર્મની ભાવનાએ આ આર્યાવર્ત્ત ઉપર વિજય મેળવ્યો છે. તે પછી ગ્રંથકાર ધર્મરૂપ રત્નની દુર્લભતા વિષે સારૂં જ્યાન આપે છે. " આ અપાર સંસારરૂપ સમુદ્ર, કે જેમાં જન્મ, જરા, મરણાદિરૂપ અનંત જળ ભરેલું છે, તે અગાધ સમુદ્ર આદિ અને અંત વગરનો છે, તેવી અંદર પ્રાણીઓ કર્મને વશ થઇ નારકી, તિર્યંચ, નર તથા દેવરૂપે ઉત્પન્ન થાય છે, અને તેમાં ભમ્યા કરે છે, તેવાં પ્રાણીઓને મનુષ્યપણું પ્રાપ્ત થવું દુર્લભ છે. કદિ તે પ્રાપ્ત થયું, તો પછી સધર્મરૂપ રત્નની પ્રાપ્તિ દુર્લભ છે. " ઇત્યાદિ વર્ણન કરી ગ્રંથકાર પોતાના ગ્રંથનું નામ **ધર્મરત્ન પ્રકરણ** એવું સાર્થક કરે છે, અને આ ગ્રંથ ધર્મરૂપ રત્નની પ્રાપ્તિનું સાધન છે, એવો લક્ષ્યાર્થ જણાવે છે, તે ધર્મરૂપ રત્નની સારી રીતે પ્રશંસા કરી, ગ્રંથકાર માનુષ્ય ભવનું માહાત્મ્ય ઘણી છટાથી વર્ણવે છે. માનવજીવનની મહત્તા દર્શાવવાને તેના વિચારો એટલા બધા ઉત્તમ છે કે, વાંચનારના હૃદયમાં તે અસરકારક રીતે ઠસી જાય છે. તે વિષે મૂળમાં અલ્પ લેખ છતાં તેને વૃત્તિમાં એવો પલ્લવિત કરે છે કે, જે વાંચવાથી સહૃદય વિદ્વાનને ઘણો આનંદ આવે છે.

માનવ જીવનનો એક ક્ષણ પણ કેવો ઉપયોગી છે ? તેને માટે ગ્રંથકારે યુક્તિ પૂર્વક સિદ્ધ કરવાને બીજું પ્રમાણ વાક્યો સારાં આપ્યાં છે, જેમાંનું એક પદ્ય સર્વ જૈન બંધુઓને મનન કરવા યોગ્ય છે.

अनर्घ्याण्यपि रत्नानि लभ्यंते विभवैः सुखम् ।
दुर्लभो रत्नकोट्यापि क्षणोऽपि मनुजायुषः ॥ १ ॥

" અમૂલ્ય એવાં રત્નો પણ વૈભવવડે સુખે મેળવી શકાય છે, અને મનુષ્યની આયુષ્યનો એક ક્ષણ પણ કોટી રત્નોથી મેળવી શકાતો નથી. " ૧

આ પ્રમાણે માનુષ્ય જન્મની દુર્લભતા જણાવી, ગ્રંથકાર ધર્મ રત્નની દુર્લભતાને માટે વિવેચન કરે છે. અને તેને ચિંતામણિની સાથે સરખાવે છે, તે પ્રસંગે એક મૂર્ખ પશુપાળનું સુબોધક દૃષ્ટાંત આપે છે, જે ઘણું અસરકારક દૃષ્ટાંત છે, જેનો સાર નીચે પ્રમાણે છે.

હસ્તિનાપુર નગરમાં **નાગદેવ** નામે એક શેઠ હતો, તેને **વસુંધરા** નામે સ્ત્રી હતી, અને **જયદેવ** નામે એક પુત્ર થયો હતો. જયદેવ ઘણો ચતુર હોવાથી રત્નોની પરીક્ષા કરવાનું કામ શીખવા લાગ્યો. એક વખતે તેના મનમાં વિચાર થયો કે, બીજા મણિઓ પથ્થર જેવા છે, ખરેખર રત્ન તો ચિંતામણિજ છે, માટે કોઇ પણ ઠેકાણેથી તેની શોધ કરવી. આવા ઇરાદાથી જયદેવ, નગરમાં ઘેર ઘેર, અને દુકાને દુકાને ફરી વળ્યો, પણ તેને કોઇ ઠેકાણેથી ચિંતામણિ રત્ન મળ્યું નહિ. છેવટે તેણે પોતાનાં માતાપિતાને જણાવ્યું કે, આ નગરમાં ચિંતામણિ રત્ન મળતું નથી, માટે તે મેળવવા હું બીજે સ્થળે જાઉં છું. માતાપિતાએ કહ્યું, પુત્ર ! ચિંતામણિ ક્યાંઇ હોયજ નહિ, તે તો માત્ર કલ્પના છે; તે વિષેની વાત છોડી દે. જે બીજાં રત્નો મળે છે, તેનાથી વેપાર કર, જેથી તને અપાર લક્ષ્મી પ્રાપ્ત થશે. માતાપિતાનાં આ વચન જયદેવે માન્યાં નહિ. તે હસ્તિનાપુર છોડી બાહેર નીકળી પડ્યો. અનેક સ્થળે તેણે ચિંતામણિની શોધ કરી, પણ કોઇ સ્થળે તેને પત્તો મળ્યો નહિ. ફરતાં ફરતાં તેને એક વૃદ્ધ માણસ મળ્યો, તેણે જયદેવને કહ્યું કે, આ સ્થળે **મણિવતી** નામે એક મણિની ખાણ છે, તેમાં ઉત્તમ અને પવિત્ર મણિઓ મળી શકે છે. તે સાંભળી જયદેવ તે સ્થળે ગયો. ત્યાં એક પશુપાળ જોવામાં આવ્યો. પશુપાળના હાથમાં એક પથ્થર હતો, તે જયદેવના જોવામાં આવ્યો. ચિંતામણિને જાણનાર ચતુર જયદેવે તે પથ્થરને જોયો, ત્યાં તેને તે લક્ષણોથી ચિંતામણિ માલુમ પડ્યો. હર્ષ પામેલા જયદેવે પશુપાળ પાસેથી તે પથ્થરો માગ્યો, એટલે પશુપાળે કહ્યું, ભાઇ ! તારે આ પથ્થરનું શું કામ છે ? જયદેવે કહ્યું, આ પથ્થરો મારે ઘેર લઇ જઇશ, અને નાનાં બાળકોને રમવા આપીશ. પશુપાળે કહ્યું, અહીં આવા બીજા પથ્થરા ઘણા છે, તે લઇ લે. આ પથ્થરાની શી જરૂર છે ? ઘણું સમજાવ્યો, પણ સમજ્યો નહિ, અને ઉપકાર કરવાની તેને ટેવ ન હોવાથી, તેણે તે પથ્થરો જયદેવને આપ્યો

નહિ, પછી ચતુર જયદેવે વિચાર્યું કે, આ મૂર્ખ પશુપાળને ' આ ચિંતામણિ છે, ' એની ખબર નથી, તેમ એનું શું મહાત્મ્ય છે? તે પણ જાણતો નથી, તો આ ચિંતામણિ તેનું ભલે શુભ કરે, માટે તેને એના મહાત્મ્યની ખબર પાડવી જોઇએ. આવું વિચારી જયદેવે કહ્યું, અરે ભલા માણસ ! જેને તું એક પથ્થરો ગણે છે, તે ચિંતામણિ રત્ન છે, તે મણિની આરાધના કરવાથી તારા સર્વ વાંચ્છિત પુરા થશે, મારે તે રત્નની જરૂર નથી, તેનો લાભ તું પોતેજ મેળવ. મૂર્ખ પશુપાળે કહ્યું, વાહ, જો આ ચિંતામણિ છે. એ વાત ખરી હોય તો, હું ચિંતવું છું કે, એ મણિથી ઘણાં બોર, કેર તથા કાબાડો વિગેરે મને પ્રાપ્ત થાઓ. મૂર્ખ પશુપાળનાં એ વચન સાંભળી જયદેવ હસી પડયો તેણે કહ્યું, ભોળા માણસ ! એમ કહેવાથી કાંઇ વાંચ્છિતનો લાભ થાય નહિ પ્રથમ ત્રણ ઉપવાસ કરી, તે મણિને બાજોઠ ઉપર સ્થાપન કર, પછી તેની વિધિથી પૂજા કરી, અને પ્રણામ કરી, જે માગવું હોય તે માગી લે. પશુપાળે તે વાત માન્ય કરી, પછી તે મણિને લઇ પોતાના ગામ તરફ ગયો. જયદેવે જાણ્યું કે, આ પુણ્યહીન છે, માટે તેની પાસે મણિ રહેશે નહિ, તેથી તેની પાછળ જવું જોઇએ.

આવું વિચારી જયદેવ તેની પાછળ ચાલ્યો. માર્ગમાં ચાલતાં પશુપાળે તે મણિને સંબોધીને કહ્યું, અરે મણિ ! આ બકરીઓ વેચી, તેના દ્રવ્યથી ચંદન, કેશર, કપુર વિગેરે લઇને તારી પૂજા કરીશ. પછી તું મારા મનોરથ પુરા કરજે. વળી ક્ષણવાર રહીને પાછું મણિને પુછ્યું, મણિ ! હજુ ગામ દુર છે, માટે રસ્તો ખુટે તેવી કાંઇક વાર્તા કહે. જો તું વાર્તા કહી જાણતો ન હો તો સાંભળ, હું તને એક વાર્તા કહું. કોઈ હાથના દેરામાં ચાર હાથનો દેવ રહે છે, આ વાતમાં કોઇને શંકા કરવી નહીં. કારણ કે, એક હાથના દેરામાં ચાર હાથવાળો દેવ રહી શકે છે. આમ પશુપાળે વાર્તા કહેવા માંડી, પણ મણિ તો કાંઇજ બોલ્યો નહિ, એટલે પશુપાળે ગુસ્સો કરીને કહ્યું, અરે મણિ ! તું હુંકારો પણ આપતો નથી, તો તારી આગળ શું વાત કહેવી ? આ ઉપરથી તારામાં વાંછિત પૂર્ણ કરવાની આશા શી રીતે રાખી શકાય ? તારૂં ચિંતામણિ નામ ખોટું જ છે, તેથી તારે માટે ત્રણ ઉપવાસ કરી, કષ્ટ ભોગવવું નકામું છે, અને હું તો રાબ અને છાશ વગર એક ક્ષણ પણ રહી શકું તેમ નથી, અને મને ભુખ્યો મારવાને માટેજ તે વાણીયાએ તને વખાણ્યો હશે. અહીંથી દુર ચાલ્યો જા. આ પ્રમાણે કહી, તે પશુપાળે મણિને દુર ફેંકી દીધો. પાછળ ચાલ્યા આવતા જયદેવે તે મણિને લઇ લીધો, અને તેની વિધિ પ્રમાણે આરાધના કરી, તેથી જયદેવ મોટો ધનાઢય થયો. ધનના પ્રભાવથી માર્ગમાં આવતા મહાપુર નામના નગરને વિષે આવી, ત્યાંના **સુબુદ્ધિ** નામના શેઠની **રત્નવતી** નામે પુત્રીને પરણ્યો. દાસ દાસીના મોટા પરિવાર સાથે તે પોતાને વતન આવ્યો, અને માતાપિતાને પ્રીતિથી મળ્યો.

આ દૃષ્ટાંત આપી ગ્રંથકારે માનુષ્ય ભવની અંદર ધર્મ એ ચિંતામણી રત્ન સમાન છે, એ સિદ્ધ કરી આપ્યું છે. દેવ, નારકી અને તિર્યંચની ગતિ, એ સામાન્ય મણિઓની બાબુરૂપ છે, તેનો શોધ કરવા ભમતો એવો પ્રાણી આ મનુષ્ય ગતિરૂપ ઉત્તમ મણિવાળી

ખાણ મેળવી શકે છે. ત્યાં પણ ચિંતામણીની માફક જિનભાષિત ધર્મરૂપ ચિંતામણી પ્રાપ્ત થવો દુર્લભ છે. પણ તેવા મણિને પુણ્યરૂપ ધનવાન્ જયદેવ સમાન પ્રાણી મેળવી શકે છે, અને પુણ્ય વગરનો પશુપાળ સમાન પ્રાણી તેને મેળવી શકતો નથી, અને કદિ મેળવી શકે, તો તે તેને ગુમાવી દે છે.

આવું મનોરંજક દૃષ્ટાંત આપી ગ્રંથકાર ઉપોદ્ઘાત પૂર્ણ કરે છે, અને તે ધર્મ રત્નને કેવા ગુણવાળો મનુષ્ય યોગ્ય થાય, તેવો આક્ષેપ કરી ગ્રંથનો આરંભ કરે છે. ધર્મની યોગ્યતા ધરાવનારા પુરૂષમાં કેવા ગુણ જોઇએ ? તે ગુણને નામવાર દર્શાવે છે, જે ગુણોની સંખ્યા એકવીશની છે. તે પ્રત્યેક ગુણને માટે ઉત્તમ વિવેચન કરી, તે વિષે ઉત્તમ દૃષ્ટાંતરૂપ કથાઓ આપે છે. કથાઓમાં ગ્રંથકારે પોતાની બુદ્ધિનું સામર્થ્ય સારૂં દર્શાવ્યું છે. અન્વય અને વ્યતિરેકથી કથા દૃષ્ટાંતો દર્શાવી, વાચકોનાં અંતઃકરણ શુભ સંસ્કારથી રસભરિત અને તે તે ગુણના રાગી કરવાને તેમાં સારૂં મથન કરવામાં આવ્યું છે. દરેક કથા આદ્યંત વાંચ્યા પછી તે તે ગુણ ઉપર હૃદય સ્વેચ્છાવશ વર્ત્તી તથા સ્વરસે કરી પ્રવૃત્ત એવું રસિક થઇ જાય છે.

આવા ગુણદર્શક ગ્રંથો જૈન પ્રજાની આગળ અવશ્ય મુકવાની જરૂર છે. કારણ કે જૈન પ્રજાના જ્ઞાનોદયનો યુગ હજુ આરંભાય છે. સારાસારની પરીક્ષા કરવા ઉપર અધિક લક્ષ રાખી તથા યથાશક્તિ વિવેકી થવાના પવિત્ર પાઠો હજુ તેમને શીખવાના છે, તેવા યુગના આરંભ કાળે આવાં આવાં ઉત્તમ પુસ્તકો દેશી ભાષામાં ઉતારી તેમની આગળ ધરવાથી ઉભયને મહાન્ લાભ પ્રાપ્ત થાય છે. જૈન ગ્રંથકારોની પદ્ધતિનો મને આજ સુધીમાં જે કાંઇ અનુભવ થયો છે, તે ઉપરથી એટલું કહેવાની મને હિમ્મત આવે છે કે, જૈન ગ્રંથકારો પ્રાયે કરીને સંયમધારી હોય છે, અને તેથી તેઓનાં હૃદય હમેશાં ઉચ્ચ ચારિત્રથી વાસિત હોય છે. આથી કરીને જ્યારે તેઓ ગ્રંથ લખવા તત્પર થાય છે, ત્યારે તે પોતાના હૃદયનો આનંદ બીજા અધિકારી મનુષ્યના હૃદયોમાં રેડી તૃપ્તિ પમાડી સંતોષ સાથે આનંદનો અનુભવ આપે, તેવી ગ્રંથ રચના રચે છે. પ્રાચીન સાહિત્યકારોનો એવો સિદ્ધાંત છે કે, કવિ કે ગ્રંથકાર પોતાને મળેલો ઉંચો અને શુદ્ધ આનંદ અન્ય હૃદયોમાં રેડવાની ચંચળતાથી તેમનામાં લેખનકળા જન્મ પામે છે, તે વસ્તુ આ ગ્રંથના લેખમાં જણાય છે.

આ ગ્રંથમાં દરેક ગુણ ઉપર આવેલી કથાઓ ધાર્મીક અને કાંઇક સાંસારિક વસ્તુઓથી ભરેલી છે. કથાના પ્રસંગમાં સંક્ષિપ્ત વર્ણનો, બોધક વાકયો, અને ધાર્મીક સત્ય વચનો વાચકને વાંચનના રસમાં ઝુલાવતાં કથાને આદિથી અંત સુધી વાંચવાની જીજ્ઞાસા કરાવે છે. ભાષાંતરની ભાષા સરળ છે, કોઇ કોઇ સ્થળે અલ્પ રસનો આભાસ થાય છે, તથાપિ એકંદર મૂળનો અર્થ સમજી શકાય તેવી પદ્ધતિ રાખેલી છે. જે કાંઈ અલ્પ રસાભાસ દેખાય છે, તે ભાષા લેખકના દેશની પદ્ધતિને લઇને થયેલ હોય તેમ લાગે છે. મૂળ સાથે રાખી બરાબર અર્થ કરી અભ્યાસ કરવા ધારે, તોપણ તે બની શકે તેમ છે.

તેમાં ખુશીની વાત એ છે કે, ભાષાંતરકારે માગધી ભાગનું ભાષાંતર ઘણું સારૂં કરેલું છે. મૂળ સંસ્કૃત અને માગધીની શુદ્ધિને માટે પણ સારો પ્રયત્ન કરેલો છે.

આ અતિ ઉપયોગી ગ્રંથ દરેક જૈન ગૃહસ્થને વાંચવા લાયક છે. જ્યારે આવા આવા ગ્રંથો બહાર પડશે, ત્યારે જૈનોની જ્ઞાન સમૃદ્ધિનો પ્રભાવ જગત્માં સર્વ સ્થળે જણાઇ આવશે, જૈન વિદ્વાનોએ પોતાના સાધર્મિ બંધુઓની કેવી સેવા કરી છે ? તે આવા ગ્રંથો જોવાથી સિદ્ધ થઇ જાય છે. વિશેષ લખવાનો આનંદ આવે છે કે, પાલીતાણાના શ્રી જૈન ધર્મ વિદ્યા પ્રસારક વર્ગે જે કામ હાથ ધાર્યું છે, તે સર્વ જૈન વર્ગને આદરણીય છે. જૈન પ્રજામાં પોતાના પ્રાચીન ગ્રંથોના વાંચનની અભિવૃદ્ધિ થાય, તેવા ઉત્તમ હેતુથી એ વર્ગ જે કાર્ય કરે છે, તે ખરેખર પ્રશંસનીય છે. વર્ગે જે સદિચ્છાથી અને કોમળ ભાવથી આ પુસ્તકને ઉદ્ધાર કરી જૈન વર્ગ સન્મુખ રજુ કર્યું છે, તે તેમનો હેતુ અને શ્રમ સફળ થશે એવી હું આશા રાખું છું. પુસ્તકની છપાઇ, બંધાઇ અને સફાઇ જોતાં તેની અલ્પ કિંમત રાખવામાં આવી છે, તે પણ તે વર્ગની ઉદારતાનું શુભ ચિન્હ છે.

આવા આવા ગ્રંથોનો ઉદ્ધાર કરવાની ઇચ્છા રાખનારા કચ્છી જૈન ગૃહસ્થોનાં નામ ઘણી વાર સાંભળવામાં આવે છે, એથી એ ગ્રહસ્થોની ઉદારતાને ખરેખરો ધન્યવાદ ઘટે છે. આ સુંદર ગ્રંથના અગ્ર ભાગ ઉપર પણ એક સ્વર્ગવાસી કચ્છી ગૃહસ્થ મૂર્તિનું નિરીક્ષણ કરી, અને તેની નીચે " **સ્વર્ગીય શેઠ ખીઅસી કરમણ** " એવું નામ વાંચી દરેક જૈન ધનાઢ્ય ગૃહસ્થે વિચારવું, અને નીચેનું નીતિ વાક્ય સ્મરણમાં રાખવું.

" **धर्मः कीर्त्तिर्द्वयं स्थिरम् ।** "

આ પ્રસંગે વળી વિશેષમાં જણાવવાનું કે, આ જૈન ધર્મ વિદ્યા પ્રસારક વર્ગની પ્રમાણિક, ઉત્સાહ, અને શુદ્ધ હૃદયથી સેવા કરનાર તથા **આનંદ** અને **મધુકર** [માસિક] માં " **સંત ચરણોપાસક શિવ** " આવી વર્ણમાળાથી **પ્રખ્યાત શા. શિવજી દેવશીને** સંપૂર્ણ અભિનંદન ઘટે છે. જૈન સાહિત્યની સેવા કરવામાં આનંદ અનુભવતા જૈનોના ધાર્મિક અને સાંસારિક ઉદય માટે સ્થપાએલા મંડળોમાં અગ્રેસર કાર્ય કરનારા તેમના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને માટે મોટું માન ધરાવતા જોવાની ઇચ્છા દર્શાવી તેમનું અને તેમના વર્ગનું હું સતત કલ્યાણ ચાહું છું.

ભાવનગર,
તા. ૮-૨-૦૬ માઘ શુકલ ૧૫ સં. ૧૯૬૨.

શાસ્ત્રી નર્મદાશંકર દામોદર,
ભાવનગર હાઇસ્કુલના સંસ્કૃત શિક્ષક.

પુસ્તક ૧ લું. જૈનોદય. ચૈત્ર અંક ૬ ઠ્ઠો.

શ્રી ધર્મ રત્ન પ્રકરણ—પ્રથમ ભાગ. આ પુસ્તક તેના પ્રસિદ્ધ કર્તા પાલીતાણાવાળા " શ્રી જૈન ધર્મ વિદ્યા પ્રસારક વર્ગ " તરફથી અમને અભિપ્રાયાર્થે ભેટ મળ્યું છે. આ પુસ્તકનું કદ મોટાં ૬૦૦ પૃષ્ટનું છે, અને તે શેઠ ખીઅસી કરમણના સ્મર્ણાર્થે છપાવવામાં આવ્યું છે. આ પુસ્તક મુળ માગધી ભાષામાં લખાએલું હતું, તેનું ગુજરાતી વિવરણ કરાવી, મૂળ સાથે ગુજરાતી ટીકા આ પુસ્તકમાં આપવામાં આવી છે. વળી વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસ કરનારને સુગમતા પડે તે માટે પુસ્તકના થોડા ભાગ સુધી માગધી સાથે તેની સંસ્કૃત છાયા પણ આપવામાં આવી છે, જે શૈલી અભ્યાસ કરનારાઓને અતિ સુગમતાવાળી થઇ પડવા સંભવ છે.

આ વિભાગમાં શ્રાવકના એકવીશ ગુણ વિષે વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે, અને તે દરેક ગુણના વર્ણન પછી તેનેજ લગતી એકેક રસીક કથા આપવામાં આવી છે, જેથી વાચકના હૃદયમાં શ્રાવક ગુણ ઠસાવવાનો આશય પરિપૂર્ણ થાય છે. કથાઓ વિગેરે રસીક છે. પરંતુ મૂર્ત્તિપૂજક જૈન બંધુઓને વધારે ઉપયુકત છે. શરૂઆતનાં ચાલીશેક પૃષ્ટમાં આપવામાં આવેલ ઉપોદ્ઘાતમાં ' ધર્મ તે શું '-? અને તેની જરૂર શા માટે છે ? એ વિષયોપર તો બહુ સારૂં વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. તેમાં ધર્મની વ્યાખ્યા નીચે પ્રમાણે આપવામાં આવી છે.

दुर्गति प्रसृतान् जंतून् यस्माद्धार यते ततः ।
धत्ते चैतान् शुभास्थाने तस्माद्धर्म इति स्मृतः ॥

દુર્ગતિમાં પડનાર પ્રાણીઓને [પડતાં] ધરી રાખે, અને સુગતિએ પહોંચાડે, તે ધર્મ કહેવાય છે.

શ્રી જૈન ધર્મ વિદ્યા પ્રસારક વર્ગ તરફથી જે પુસ્તકો પડતર કિંમતે વેચાય છે, તેમાં આ પુસ્તક પણ છે. તેની યોગ્યતા અને કદના પ્રમાણમાં તેની કિંમત રૂા. ૨–૦–૦ રાખવામાં આવી છે. તે કાંઇ વધારે ગણાય નહિં. તેમાં શેઠ ખીઅસી કરમણનો ફોટો પણ આપવામાં આવ્યો છે. આ વર્ગ આવાં પુસ્તકોદ્વારા સ્વબંધુઓની સારી સેવા બજાવતો રહે, એમ અમે ઇચ્છીએ છીએ.

મુંબઇ સમાચાર શનીવાર તારીખ ૨૪ મી માર્ચ ૧૯૦૬

" શ્રી ધર્મરત્ન પ્રકરણ. "

શ્રીમાન્ દેવેંદ્રસૂરિ વિરચીત " શ્રી ધર્મરત્ન પ્રકરણ" નામના પુસ્તકનો પ્રથમ ભાગ (મૂળ અને ગુજરાતી ભાષાંતર સાથે) પાલીતાણા ખાતેના શ્રી જૈન ધર્મ વિદ્યા પ્રસા-

૨ક વર્ગ તરફથી છપાવી, પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવ્યો છે, જેની એક નકલ અમારી ઉપર અવલોકનાર્થે મોકલવામાં આવી છે, તેની પહોંચ માન સહિત સ્વીકારીએ છીએ. આ પુસ્તક કચ્છ-સુથરીના રહીશ સ્વર્ગસ્થ શેઠ ખીઅસી કરમણના સ્મર્ણાર્થે તેમના પુત્રોએ પોતાના ખર્ચે પ્રગટ કરાવ્યું છે, અને આવી રીતે જ્ઞાન દાન કરવામાં, બાહેર પડવા માટે તેઓને મુબારકબાદી આપવામાં આવે છે. ઉન્મણા વિગેરે પ્રસંગે શ્રીમંત જૈનો આ પ્રમાણે પ્રાચીન સાહિત્યના ઉત્તમ ગ્રંથો ગુજરાતી ભાષાંતર સાથે બાહેર પાડવામાં ધ્યાન આપે, તો જૈન ધર્મના અનુપમ ગ્રંથોનો સારો ફેલાવો થયા વગર રહે નહીં. " શ્રી ધર્મ રત્ન પ્રકરણ ગ્રંથ " ના મૂળ રચનાર શ્રીમાન્ દેવેંદ્રસૂરી નામના જૈન ધર્મના એક સમર્થ વિદ્વાન થઇ ગયા છે, જેમણે તે ગ્રંથ માગધી તથા સંસ્કૃત ભાષામાં લખેલો હતો. આ અનુપમ ગ્રંથનો લાભ સામાન્ય શિક્ષણ પામેલા માણસો લઇ શકે, એવા હેતુથી તે ગુજરાતી ભાષાંતર સાથે પ્રગટ કરવામાં આવ્યો છે. જો જૈનશૈલીવાળા મુનિ માહારાજના હાથમાંથી આવા ગ્રંથો પસાર કરવાની તજવીજ કરવામાં આવે, તો જૈન ભાઇઓ પોતાના ધર્મના આવા રસીક ગ્રંથો પ્રત્યે વધારે શ્રદ્ધાળુ બને છે, અને તે પ્રત્યે વધારે માનની નજરથી જુએ છે. પાલીતાણા જેવા મહાન્ તીર્થ સ્થાને વિદ્યા પ્રસારક વર્ગને પંડિત મુનિમાહારાજોના સમાગમમાં આવવાની સારી રીતે તક મળતી હોવી જોઇએ, અને તેનો તેઓને સારી રીતે લાભ લેવાની આવશ્યકતા છે. આ ગ્રંથમાં શ્રાવકના એકવીશ ગુણો ઉપર એકવીશ કથાઓ વર્ણવેલી છે, જે જૈનોને બોધક તથા રસીક લાગ્યા વગર રહે નહીં.

" તરંગ " પુસ્તક ૧ લું અંક ૧૦ પોશ ૧૯૬૨.

ધર્મ રત્ન પ્રકરણ—પાલીતાણા જૈન ધર્મ વિદ્યા પ્રસારક વર્ગ તરફથી આ નામનો વિશાળ ગ્રંથ અમોને અભિપ્રાયાર્થે ભેટ મળ્યો છે. તેનો સ્વીકાર કરતાં અમો હર્ષ પ્રદર્શીત કર્યા વગર રહી શકતા નથી. આ વર્ગ જૈન ધર્મનાં જુનાં મહાન્ આચાર્યોનાં લિખિત પુસ્તકો છપાવવા માટે ઘણોજ ઉત્તમ પ્રકારનો પ્રયાસ કરે છે, અને ભાષાંતર કરવાનું કામ એટલી વિશેષ કાળજી પૂર્વક કરવામાં આવે છે કે, વાંચનારને મૂળની સાથે ભાષાંતર મેળવતાં ભાગ્યેજ શંકાનું કારણ રહે છે. આવા ઉત્તમ પ્રતિના ગ્રંથો બહાર પાડવાને આ વર્ગ શ્રીમાન્ ગૃહસ્થોની મદદથી જે પ્રયાસ કરે છે, તેથી તે સમસ્ત જૈન કોમને મોટો ઉપકાર કરે છે, એમ કહ્યા વગર ચાલતું નથી. આ ઉત્તમ ગ્રંથમાં શ્રાવકના એકવીશ ગુણપર એકવીશ કથા શ્રેષ્ટ રીતે વર્ણવેલી છે. સામાન્ય વાંચનારને પણ તે સહજ સમજી શકાય તેવી છે. વળી લગભગ ૬૦૦ પૃષ્ટનો મોટો ગ્રંથ હોવા છતાં તેની કિમ્મત અતિશે જુજ એટલે બે રૂપીઆ રાખી છે. અમો આશા રાખીએ છીએ કે, શ્રીમાન્ જૈન ગૃહસ્થ જો આ વર્ગને આવી રીતે મદદ કરતા રહેશે, તો આ વર્ગ જૈન સાહિત્યને આગળ વધારવાને પોતાનો ઉત્સાહ વૃદ્ધિગત કરશે.

શ્રી ધર્મ રત્ન પ્રકરણ નામનો—એક ગ્રંથ પાલીતાણા જૈન ધર્મ વિદ્યા પ્રસારક વર્ગ તરફથી ભેટ દાખલ મળ્યો છે. એ ઉપકાર સાથે સ્વીકારીએ છીએ, તેમાં શ્રાવકના એકવીશ ગુણનું વર્ણન આપ્યું છે, અને તે સાથે તે તે ગુણની ૨૧ કથાઓ આપવામાં આવી છે. આખો ગ્રંથ એ કથાઓ ને ગુણોના વર્ણનથી ભરેલો છે, તે વાંચવા લાયક છે.

પાનગઢ ફાગણ શુદી ૧૩ને ગુરૂવાર.

લી. મુનિ મોહનવિજયજી.

પંડિત શ્રી માનવિજયજીસુરિ રચિત **" શ્રી ધર્મ સંગ્રહ "** તથા શ્રી દેવેંદ્રસુરિ રચિત **" શ્રી ધર્મરત્ન પ્રકરણ "** નામના બે અતિ ઉત્તમ ગ્રંથો ભેટ તરીકે અભિપ્રાય જણાવવા અર્થે આપણા વર્ગ તરફથી મોકલવામાં આવ્યા છે, તે અમને પોહોંચ્યા છે. વાંચતાં એટલો બધો આલ્હાદ ઉત્પન્ન થાય છે કે, એ બે ગ્રંથો શ્રાવકોને બોધ લેવા માટે અવશ્ય ઉપયોગી થઇ પડવા જોઇએ. હમણાંના વખતમાં ઘણા ગ્રંથો બહાર પડ્યા છે, પણ આ ગ્રંથો તેના કરતાં પણ વિશેષ ચઢીઆતા થઇ પડે, એવો આશય સમજવામાં આવે છે. ભાષાંતર ઘણુંજ સરસ, શુદ્ધ, અને સરળ રીતે કરવામાં આવ્યું છે મૂળ સાથે માગધી તેમજ સંસ્કૃત શ્લોકો અને ટીકા ભાષાંતર સાથે આ ગ્રંથ કરવામાં આ વર્ગે અતિ પ્રયાસ કર્યો છે. શેઠીઆઓએ ગ્રંથ છપાવવા માટે જે રકમો આપી છે, તે સ્તુતિપાત્ર છે. આ પ્રમાણે સત્કાર્યો કરનાર શેઠીઆઓ ભવિષ્યને વિષે આવાં કાર્યો કરવા, કરાવવામાં વિશેષ ઉદ્યમવંત થઇ પુણ્ય ઉપાર્જન કરશે, એવી આશા છે. દરેક જૈને આ ગ્રંથમાંની એકેક નકલ પોતના સંગ્રહ માટેક પોતપોતાના ઘરમાં બોધાર્થે ખરીદ કરવી જોઇએ છીએ, એવી અમારી ખાસ ભલામણ છે. આ ગ્રંથોના જેવા જો બીજા ગ્રંથો આવીજ ઢબમાં પ્રગટ કરવામાં આવે તો, તે સાધુ તેમજ શ્રાવક આદિને મનન કરવા માટે ઘણાજ પ્રિય થઇ પડશે. બાઇન્ડીંગ તેમજ પુંઠાં ઘણાંજ સારાં છે. કાગળ જો કઇ વધારે જાડા વાપરવામાં આવશે તો ભવિષ્યમાં ફાટવાની દહેશત રહેશે નહીં, માટે કાગળ જાડા વાપરવા મારી છેવટની ભલામણ છે. શ્રાવકના એકવીશ ગુણો ઉપર જે કથાઓ આપવામાં આવી છે, તે ઘણીજ બોધદાયક, અને રસીક છે. મનુષ્ય જન્મ, અને ધર્મરૂપ રત્નનું વિવેચન ધાર્મિક જનને પુષ્ટિ કરવા માટે શ્રેય છે. જેવી રીતે ગુજરાતી ભાષા સમજવાવાળા માટે આ ગ્રંથમાં ગુજરાતી ભાષાંતર વપરાયેલું છે, તેવીજ રીતે હિંદુસ્તાનીઓને હીંદી ભાષા વાપરીને ગ્રંથ પ્રગટ કરવામાં આવે, તો તે ઘણુંજ શ્રેય ગણાશે.

जैन विवेक प्रकाश पुस्तक ४ थुं. अंक ६ छट्ठो.

श्रीमान् देवेंद्रसूरि विरचित, धर्म रत्न प्रकरण मूल और गुजराति भाषांतर सहित, प्रथम भाग, शेठ खीअसी करमणके स्मरणार्थ पालीताणा जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्ग तरफसें छपको हमको उनके अभिप्रायार्थ भेट मिला है, सो प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कीया जाता हे.

उक्त ग्रंथमें श्रावकोंके एकीस गुणोको अत्यंत अल्हादजनक बोध दिया गया हे, जिसमें एकेक गुणका यथावस्थित स्वरूप ओर उनको दृढ करनेके लिए तदपयोगी एकेक दृष्टांत लिखा गया हे. जिसके वांचने ओर मनन करनेसें आत्माको तत् तत् गुणानुयायी प्रवृत्ति के स्वादानुभवका ओर तत् तत् गुणोकि उपादेयताकी आवश्यकता समजी जाति हे. ग्रंथ कर्त्ताने उपादेय गुणोकी आवश्यकताके लिए स्पष्टाक्षर और प्रमिताक्षरमे आबेहुब चित्रविचित्र दृष्टांत दार्ष्टांतिकोंसे मनोरंजनतापूर्वक प्रबोधक अच्छा विस्तार किया हे. मूल और भाषांतरकी भाषा विचक्षणोंकों अत्यंत चित्ताकर्षक और अभिरुचि प्रवर्धक देखी जाती हे. यह ग्रंथ देवेंद्राचार्य विरचित होनेसे उनको प्रशंसा जीतनी कहे, इतनी कमी हे, क्योंकी कर्त्ताने जैन न्यायके और नय निक्षेपोके एसे एसे ग्रंथ रचे हे की, जिनको प्रशंसा महान् विचक्षण जनोनेभी उच्चकर्ण करकेभी जेसी सुनीथी, वेसीही वदनद्वारा सहस्र जिव्हासे प्रसंगानुसार प्रकाशित करनेकी आवश्यकता कही हे.

यह ग्रंथ रोयल अष्ट पेजी अदांज ६०० पृष्टको और ग्लेज कागजपर छपके पकी जिल्दसें बांधा हे, तथापि प्रकाशकने सार्वजनिक हितार्थे मात्र रुप्या दोहि कींमत रखी हे. सो अत्यंत हितचित हितार्थीता प्रकाशीत करता हे. हम यह कहनेकी और लिखनेकी आवश्यकता

समत हे की, एसे ग्रंथोके भाषांतर होनेकी अत्यंत आवश्यकता थी, सो उक्त वर्गने पूर्ण करी हे. इसमें उक्त महोदय मंडलकी जैन कोम आभारी हे. और स्वल्प मुल्यसें समर्पण करनेसे अपने कृत्यमें अधिक अभिरुचिता प्रकाशित करी हे. धन्य हे एसे मंडळोको. एसे हितार्थी कार्योपर दत्त चित्त रहते हे. जिसके उपरोक्त ग्रंथकी आवश्यकता होय, उनोने निच लिखे पत्तेसें मंगवाय लेनां.

श्री जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्ग—

पालीताणा.

ફાગણ વદી ૮ વાર શની.

લી. મુનિ ગુણચંદજી.

(કુશળચંદજી મહારાજના શિષ્ય)

શ્રી જૈન ધર્મ વિદ્યા પ્રસારક વર્ગ તરફથી શિવજીભાઇએ આપેલ પુસ્તકો ધર્મ સંગ્રહ અને ધર્મ રત્ન પ્રકરણ, એ નામનાં પુસ્તકો અપૂર્વ જોઇ મને આનંદ થાય છે કે, એવાં પુસ્તકો જો મૂળ સહિત ભાષાંતરવાળાં બહાર પડે, તો ઘણા જીવોને લાભ મળે, અને મૂળ ગ્રંથ કાયમ રહે. હાલના સમયમાં ઘણાં પુસ્તકો બહાર પડે છે, પણ મૂળને ઉડાડી નાંખે છે, તેથી મૂળ કર્ત્તાનો આશય સમજાય નહિ. જો મૂળ સાથે રહે તો મૂળ ગ્રંથ રહે અને સમજણ પણ પડે, માટે મૂળ સાથે રાખવો, એ ઉત્તમ છે. વિશેષ એ ખુશી કે પ્રાકૃત ઉપર સંસ્કૃત શબ્દો આપેલ છે, તેથી મારા જેવા અલ્પ મતિવાળાને સાથે સંસ્કૃત તેમજ પ્રાકૃતનું પણ જ્ઞાન વધે છે. પ્રાચીન વા અર્વાચિન ગ્રંથો છપાવવા વિચાર હોય તો, મૂળ સાથે રાખવા, જેથી જૈન ધર્મના મૂળ વિચારો જાણવામાં આવે, અને પૂર્વાચાર્યોના આપણે આભારી થઇએ. અરે શીવજીભાઇ ! તમને કેટલા ધન્યવાદ આપું ? જે આટલો બધો શ્રમ પરને માટે ઉપાડો છો. પણ પરોપકાર કરનાર પુરૂષ પોતાને માટે શ્રમ માનેજ નહીં, અને માને તો તેનાથી મોટાં કાર્ય પણ બની શકેજ નહીં. હાલના જમાનામાં પૈસા આપનાર તો મળે, પણ પરાર્થ સાધનાર ન મળે, તો ઉત્તમ કામમાં તમને પરમાત્મા વીર્ય આપો, એ અમારી ભાવના છે. લોકોનો જેમ સુધારો વધારો જલદીથી થાય, તેવાં કાર્ય કરો. અપાર સંસારમાં જે સુકૃત્ય આ દેહથી થાય, તેજ કરવાનાં છે. તમારા જેવા

નરરત્નો આ પૃથ્વી ઉપર ઘણા થાઓ. તેથી ઘણા જીવોને લાભ મળે. એક હાથની એક આંગુલીથી જેમ થોડું કાર્ય થાય છે, અને પાંચ જ્યારે ભેગી થાય છે, ત્યારે ધારેલ કામ બને છે, તેમજ તમારા જેવા બીજા થાય તો ઘણાં કાર્ય પાર પડે. આ જગતમાં તમ જેવા પુરૂષોની ખામી છે, પણ કાંઇ દ્રવ્યની ખામી નથી. માટે ઘણા નરરત્નો થાઓ. તમારા શુભ વિચારોમાં મારા જે સુવિચારો હોય, તે તમને મદદ કરો. રે ભવ્ય પુરૂષો ! આવા ઉત્તમ પુરૂષના કાર્યમાં તમારાથી બનતી સહાય આપો, અને તેથી પુણ્યના ભાગી થાઓ. વધારે શું કહેવું ? પરાર્થ પુરૂષને તો પોતાનો દેહ અર્પણ કરવો, એ પણ થોડું જ છે.

" આત્માનંદ પ્રકાશ " પુસ્તક ૩ જું સં. ૧૯૬૨ માહા અંક ૭.

શ્રી ધર્મરત્ન પ્રકરણ ભાગ ૧ લો—આ પુસ્તક પાલીતાણાના શ્રી જૈન ધર્મ વિદ્યા પ્રસારક વર્ગ તરફથી અમને ઉપહાર તરીકે મળેલું છે, તેને પ્રેમ સહિત સ્વીકારીએ છીએ. આ ગ્રંથ જૈન ધર્મના ગ્રંથકાર તરીકે પ્રખ્યાત થયેલા શ્રી **દેવેંદ્રસૂરિએ** રચેલો છે. ગ્રંથ કર્ત્તાના નામ ઉપરથીજ તેની કૃતિ માટે જેટલી પ્રશંસા કરીએ તેટલી થોડી છે. ઉક્ત ગ્રંથકારની કલમ સર્વ સ્થળે કીર્તિવાળી છે. આ ગ્રંથની શૈલી એવી ઉંચી છે કે, જે સહૃદય વાચકોને ઉત્તરોત્તર વિશેષ લાભ આપે છે, અને ધાર્મિક શ્રદ્ધાને ક્ષણે ક્ષણે પ્રબળ કરે છે. ગ્રંથનો લેખ સંસ્કૃત અને માગધી બન્ને ભાષામાં છે, તેથી આવા ગ્રંથનો લાભ સામાન્ય શિક્ષણ પામેલા મનુષ્યો લઇ શકતા નથી, માટે તેવા ગ્રંથના ભાષાંતરની અવશ્ય જરૂર હતી, તે આ વર્ગે પૂરી પાડી છે. વિશેષ સંતોષની વાત એ છે કે, તેનું મૂળ સાથે ભાષાંતર કરેલું છે. આ ગ્રંથના પ્રથમ ભાગમાં શ્રાવકના એકવીશ ગુણો ઉપર એકવીશ કથાઓ વર્ણવેલી છે, તે કથાઓ ઘણી બોધક, રસિક, અને વાચકને આનંદદાયક છે. ગ્રંથના ઉપોદ્ઘાતમાં મનુષ્ય જન્મ, અને ધર્મરૂપ રત્ન વિષે સારૂં વિવેચન કરેલું છે; જે ધાર્મિક હૃદયને પૂર્ણ પુષ્ટિ આપનારૂં છે. ભાષાંતરની ભાષા સરલ છે, તથાપિ કોઇ કોઇ સ્થળે ભાષાની રસિકતામાં ખામી આવે છે, તે માત્ર ભાષાંતરકારની દેશ ભાષાની શૈલીને લઇને લાગે છે; તથાપિ મૂળનો આશય યથાર્થ લાવવાને સારો પ્રયત્ન કરવામાં આવ્યો છે. ગ્રંથની શુદ્ધ છપાઇ, સફાઇ, અને બંધામણી સારી કરી, ગ્રંથના સ્વરૂપને સુંદર બનાવવામાં આવ્યું છે, તે છતાં મૂલ્ય સ્વલ્પ છે.

આવા ગ્રંથનો ઉદ્ધાર કરી એ વર્ગે ખરેખરૂં પોતાનું કર્ત્તવ્ય કર્યું છે, તેને પૂર્ણ ધન્યવાદ આપતાં તેવાં સ્તુત્ય કાર્યને સંપૂર્ણ સહાય કરનાર સ્વર્ગસ્થ શેઠ **ખીમસી કરમણ** ના આજ્ઞાંકિત પુત્રોને પણ અમે પૂર્ણ ધન્યવાદ આપીએ છીએ, અને આવાં કાર્યમાં બીજા ગ્રહસ્થોને અનુકરણ કરવાની પ્રાર્થના કરી, તે વર્ગનો સર્વદા અભ્યુદય ઇચ્છીએ છીએ.

લેખક—મુનિ બુદ્ધિસાગર—મુ. વિજાપુર.

શ્રી જૈન ધર્મ વિદ્યા પ્રસારક વર્ગના અધિપતિ યોગ્ય—મુ. પાલીતાણા.

વિશેષ ધર્મ લાભ પૂર્વક માલુમ થાય કે, તમારી તરફથી અભિપ્રાયાર્થે અર્પણ કરેલા ગ્રંથો જેવા કે, (ધર્મ સંગ્રહ ભાગ ૧ લો ભાષાંતર સાથે, ધર્મ રત્ન પ્રકરણ ભાગ ૧ લો ભાષાંતર સાથે તથા પ્રદ્યુમ્ન ચરિત્ર ભાષાંતર સાથે ભાગ ૧—૨) એ ગ્રંથો આવ્યા, તે વાંચતાં અતિ આનંદ સાથે અભિપ્રાય છે કે, ઉપરના ગ્રંથો ચેકી તથા ધર્મ રત્ન ભાગ ૧ લામાં શ્રાવકોના એકવીશ ગુણોનું સવિસ્તર [સ્પષ્ટ] વિવેચન કીધેલું છે તે વાંચનારને અતિ બોધદાયક ને લાભદાયક છે. તેમ છાપ પણ સારી ને શુદ્ધ છે. પ્રદ્યુમ્ન ચરિત્ર પણ સારૂં રસીક ને શુદ્ધ ભાષાંતર સાથે છપાવી બહાર પાડેલું છે, તે અતિ ઉત્તમ છે, ને તે કથા શ્રવણ કરતાં ગમે તેવાને ધર્મની દૃઢ શ્રદ્ધા થાય તેમ છે. પૂર્વોકત ગ્રંથ બહુ સારા, ધર્મનો સંપૂર્ણ બોધ કરનારા, ને રમણીય છે, માટે તમામ શ્રાવક ભાઇઓએ તે ગ્રંથો અવશ્ય રાખવા યોગ્ય છે. આવો મળેલો વખત જ્ઞાનને માટે ઉત્તમ છે દરેક જૈન બંધુઓએ આવા ભાષાંતરની એક એક પ્રત ગ્રહણ કરવી જોઇએ. ગ્રંથોના ભાષાંતરથી જૈનોમાં ઘણો લાભ થાય છે. ભાષાંતર જેવી ઢબથી તથા સુધારાથી કરવુ જોઇએ, તે પ્રમાણે થયું છે. ધર્મ રત્ન પ્રકરણ અને ધર્મ સંગ્રહને કદી સાંભળવાનો વખત પણ શ્રાવકને મળી શકે નહિ, તેના બદલે ગુર્જર ભાષામાં ઘેર બેઠાં ગંગાના જેવો સમય મળ્યો છે, તેનું સાર્થક કરવું જોઇએ. મારવાડ, માળવા, પંજાબી તથા બંગાળી જૈનોને માટે કે જે ગુર્જર ભાષાનું જ્ઞાન નહિ ધરાવતા હોય, તેને માટે હિંદુસ્થાની ભાષામાં ભાષાંતર થવાની આવશ્યકતા છે. **इत्येवं शांतिः शांतिः**

શ્રીચંદ્ર કુમાર.

યાને

આનંદ મંદીર.

શ્રાવક ધર્મનું રહસ્ય દર્શાવનાર ઉત્તમ નોવેલ.

ઉપરના નામનું નોવેલ અમારા તરફથી છપાઇ પ્રસિદ્ધ થયેલું છે. આ ગ્રંથની વસ્તુ સંકળનામાં " શ્રીચંદ્ર કુમાર " ના ચરિત્રનો વિષય છે, જે અતિ મનોહર અને બોધક છે, એટલુંજ નહિ, પણ તે વિષય એટલો તો રસિક છે કે, તે વાંચવામાં ઘણો આનંદ થાય છે સિવાય શ્રી જૈન ધર્મ તત્વનો બોધ થાય, એવી યોજના આ ગ્રંથમાં પ્રત્યેક સ્થળે કરેલી છે; જેથી વાચક વર્ગને આનંદની સાથે ધર્મ જ્ઞાનનો અમૂલ્ય લાભ પ્રાપ્ત થઇ શકે તેવું છે. આ ગ્રંથ રોયલ ૮ પેજી ૪૫૦ પૃષ્ટનો સુંદર કાગળમાં અને સુંદર અક્ષરોથી છપાઇ પ્રસિદ્ધ થયો છે, અને બાઇન્ડીંગ સુશોભિત કરાવ્યું છે. વાંચનારને સુગમતાથી લાભ લેવા બની શકે, માટે તેની કિંમત માત્ર રૂા૦ ૧) રાખી છે. નીચેને શીરનામે લખો. પુસ્તક વી. પી. થી મોકલશું. પોસ્ટેજ જુદું પડશે.

શ્રાવિકા ભૂષણ.

શ્રાવક સંસારના ઉત્તમ ચારિત્ર રૂપ બોધક નોવેલ.

ઉપરના નામનું પુસ્તક અમારા તરફથી છપાઇ પ્રસિદ્ધ થયું છે. આ ગ્રંથમાંનો ચારિત્રનો વિષય ઘણો રસિક, બોધક અને મનોહર છે. વળી નીતિ અને ઉચ્ચ સદ્ગુણના વર્ણનથી ભરપૂર છે. કથાનો પ્રસંગ અતિ અદ્ભૂત ને રસિક હોવાથી વાંચનારને બહુજ પ્રિય થઇ પડે તેવો છે, ઉપરાંત સ્થળે સ્થળે કથાના પ્રસંગમાં શ્રાવક ધર્મનું રહસ્ય ઉત્તમ રીતે દર્શાવ્યું છે. ભાષા ઘણી સરલ છે. શ્રાવિકાઓને ખાસ વાંચવા યોગ્ય પુસ્તક છે. પુસ્તક વાંચવાથીજ તેની રસિકતા અને ઉત્તમતાની ખાત્રી થશે. પુસ્તકનું કદ રોયલ બાર પેજી ફા. ૩૪ પૃષ્ટ ૪૦૮નું છે. તેનું બાઇડીંગ કાપડનું પાકું અને છાપવાળું ઘણું સુંદર કરાવ્યું છે. છતાં સર્વેને લાભ લેવા બની શકે તે માટે તેની કિમ્મત ફક્ત ૧૨ આના જેટલી જુજ રાખવામાં આવી છે. પોસ્ટેજ જુદું પડશે. પુસ્તક વી. પી. થી મોકલીશું. નીચેને શીરનામે લખો.

શ્રી જૈન ધર્મ વિદ્યા પ્રસારક વર્ગ પાલીતાણા.

જાહેરખબર.

શ્રી પાલીતાણા જૈન ધર્મ વિદ્યા પ્રસારક વર્ગ તરફથી પ્રસિદ્ધ થએલાં પુસ્તકો.

૧ શ્રી ધર્મરત્ન પ્રકરણ ભાગ ૧ લો રોયલ ફારમ ૭૫ પાનાં ૬૦૦ ... ...૨-૦-૦
૨ શ્રી ધર્મ રત્ન પ્રકરણ ભાગ ૨ જો રોયલ ફારમ ૬૭ પાનાં ૫૩૬... ... ...૧-૮-૦
૩ શ્રી ધર્મ રત્ન પ્રકરણ ભાગ ૩ જો (છપાય છે) ૧-૦-૦
૪ શ્રી ધર્મ સંગ્રહ ભાગ ૧ લો રોયલ ફારમ ૩૩ પાનાં ૨૬૪... ... ...૧-૦-૦
૫ શ્રી જૈન તત્વાદર્શ ભાગ ૧ લો રોયલ ફારમ ૫૦ પાનાં ૪૦૦... ... ...૧-૦-૦
૬ શ્રી જૈન તત્વાદર્શ ભાગ ૨ જો રોયલ ફારમ ૫૦ પાનાં ૪૦૦... ... ...૧-૦-૦
૭ શ્રીચંદ્રકુમાર (આનંદ મંદીર નોવેલ) રોયલ ફારમ ૫૪ પાનાં ૪૩૨ ...૧-૦-૦
૮ શ્રી શ્રાવિકા ભૂષણ પ્રથમ અલંકાર રોયલ ફારમ ૩૪ પાનાં ૨૩૫ ... ૦-૧૨-૦
૯ શ્રી શ્રેણિક ચરિત્ર ભાગ ૧ લો રોયલ ફારમ ૩૨ પાનાં ૨૫૬... ... ...૦-૯-૦
૧૦ શ્રી પ્રદ્યુમ્ન ચરિત્ર ભાગ ૧ લો ડેમી ફારમ ૩૦ પાનાં ૨૪૦... ... ...૦-૮-૦
૧૧ શ્રી પ્રદ્યુમ્ન ચરિત્ર ભાગ ૨ જો ડેમી ફારમ ૩૮ પાનાં ૩૦૪ ... ...૦-૯-૦
૧૨ શ્રી દુનિયાનો સૌથી પ્રાચીન ધર્મ ડેમી ફારમ ૨૫ પાનાં ૨૦૦ ... ...૦-૧૨-૦
૧૩ શ્રી ધના ચરિત્ર રોયલ ફારમ ૧૦ પાનાં ૧૬૦... ... ...૦-૩-૦
૧૪ શ્રી પુરૂષાર્થસિદ્ધિ ડેમી ફારમ ૭ પાનાં ૧૧૨... ... ...૦-૨-૦
૧૫ શ્રી આનંદ વ્યાખ્યાનમાળા ડેમી ફારમ ૭ પાનાં ૧૧૨... ... ...૦-૨-૦
૧૬ શ્રી સુખ પ્રાપ્તિનાં સાધનો ડેમી ફારમ ૧૦ પાનાં ૧૬૦... ... ...૦-૩-૦
૧૭ શ્રી આનંદ રત્નાવળી પ્રથમ રત્ન ડેમી ફારમ ૫ પાનાં ૮૦... ... ...૦-૧-૬
૧૮ શ્રી આનંદ મંગળ સ્તવનાવળી ડેમી ફારમ ૨૫ પાનાં ૪૦... ... ...૦-૧-૦
૧૯ શ્રી આચાર પ્રદીપ ગ્રંથનું ભાષાંતર ભાગ ૧-૨... ... ...૧-૪-૦
૨૦ શ્રી ગુણવર્મા રાસ ડેમી ફારમ ૫૧ પાનાં ૪૦૮ ... ...૧-૦-૦
૨૧ શ્રી શ્રાવિકા શિક્ષણ રહસ્ય ડેમી ફારમ ૫૫ પાનાં ૮૮ ... ...૦-૨-૦
૨૨ શ્રી જૈન ધર્મની પહેલી ચોપડી ડેમી ફારમ ૨૦ પાનાં ૧૬૦ ... ...૦-૬-૦
૨૩ શ્રી ગુંહલી સંગ્રહ ડેમી ફારમ ૫ પાનાં ૪૦ ... ...૦-૧-૬
૨૪ શ્રી જૈન ધર્મ પ્રવેશ પોથી ભાગ ૧-૨-૩-૪ (છપાય છે)

આ પુસ્તકો પડતર કીમતે કાંઇ પણ નફાની આશા રાખ્યા વગર વેચવામાં આવે છે, માટે દરેક ગૃહસ્થ પોતાના શ્રેય સારૂ તેની નકલો ખરીદ કરશે, એવી આશા છે. એ પુસ્તકોના આવકના પૈસા જ્ઞાનમાં ખરચાશે, માટે એક પંથ ને દો કાજ થવા જેવું છે. દરેક પુસ્તકનું ટપાલ ખરચ જુદું પડશે. નીચેને શીરનામે લખવું.

શ્રી જૈન ધર્મ વિદ્યા પ્રસારક વર્ગ—પાલીતાણા.